5.2

महावीर हनुमान



श्री रामजी व्यास



महावीर हनुमान

लेखक

स्व० श्रीरामजी व्यास

महन्थ, भोंसला [redacted]

रामघाट, वाराणसी

श्री हनुमान मन्दिर साहित्यानुसन्धान संस्थान

कलकत्ता

प्रकाशक :

श्री हनुमान मन्दिर साहित्यानुसन्धान संस्थान

१, हनुमानजी लेन,

कलकत्ता-७

वितरक :

ज्ञान भारती

१७१ ए, महात्मा गांधी रोड,

कलकत्ता-७

मुद्रक :

सिंह प्रेस

१६२/ए-१३२, लेक गार्डेन्स,

कलकत्ता-४५

प्रथम संस्करण :

१९८१ ई०

मूल्य : ५०.०० रुपया

अनुक्रम

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

— ❋ —

आमुख

कलकत्तावस्थित श्री हनुमान मन्दिर न्यास के न्यासीगण ने धर्मोन्मुख और राष्ट्रोन्मुख साहित्य के पोषण तथा सन्वर्धन करने का व्रत लेकर तीन विद्या-वृत्तियों का प्रवर्त्तन किया। इनके द्वारा निम्नलिखित प्रकार के साहित्य को प्रेरणा देने का संकल्प किया गया :—

(१) हिन्दी भाषा में लिखित सर्जनात्मक अथवा अनुसन्धानात्मक सत्साहित्य।

(२) हिन्दी भाषा में लिखित प्राच्यविद्या के प्रसार द्वारा प्राचीन भारत की गरिमा का उद्घाटन।

(३) संस्कृत भाषा में लिखित सर्जनात्मक साहित्य।

उपरिलिखित तीनों में से प्रथम तथा द्वितीय प्रकार के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों पर पाँच-पाँच हजार की दो विद्यावृत्तियाँ तथा तृतीय प्रकार के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ पर ढाई हजार की एक विद्यावृत्ति प्रति वर्ष प्रदान की जाने लगी।

साहित्य की दिशा में न्यास-रक्षकों ने दो प्रकार का प्रयास किया। प्रथम प्रयास है साहित्य अनुसन्धान संस्थान की स्थापना तथा द्वितीय प्रयास है साहित्य महाकक्ष की स्थापना।

श्री हनुमान मन्दिर साहित्य-महाकक्ष के विभिन्न कार्यों में प्रमुख ये हैं :—

(१) **अनुसंधान विभाग :** इस विभाग के द्वारा साहित्य के महत्वपूर्ण अङ्गों पर अनुसन्धान कराने की व्यवस्था की गई। पी-एच० डी० के निमित्त शोध-कार्य में संलग्न अनेक व्यक्ति इससे लाभान्वित हुए और हो रहे हैं।

(२) निःशुल्क शिक्षालय : इस विभाग के द्वारा यहाँ बी० ए० प्रतिष्ठा तथा एम० ए० के हिन्दी के विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जा रही है।

(३) निःशुल्क पुस्तकालय : इसके द्वारा छात्र-छात्राओं को पाठ्यग्रन्थ तथा सन्दर्भ-ग्रन्थों से सहायता दी जा रही है। प्रायः १०० विद्यार्थी इससे प्रतिवर्ष लाभान्वित हो रहे हैं।

(४) प्रकाशन और चित्र-संचय : इसके द्वारा सत्साहित्य के सर्जन तथा प्रकाशन की प्रेरणा दी जाती है और साहित्य महारथियों के चित्रों का संग्रह किया जाता है।

(५) कवि-सत्र : इसके द्वारा राष्ट्रोन्मुख तथा धर्मोन्मुख काव्य-प्रतिभा का चयन एवं सम्वर्द्धन किया जाता है।

(६) निबन्ध-पाठ : इस विभाग के द्वारा समय-समय पर विशिष्ट विद्वान द्वारा लिखित निबन्ध का पाठ होता है और इस प्रकार पठित निबन्धों का ग्रन्थाकार प्रकाशन होता है।

(७) सुधी-वन्दना : इसके द्वारा प्रख्यात साहित्यकारों की अभ्यर्थना तथा प्रवचन की व्यवस्था की जाती है।

(८) विद्यार्थी-सत्र : इसमें साहित्यिक रुचि-निर्माण के लिए छात्र-छात्राओं को चार पुरस्कार दिये जाते हैं।

(९) महिला-सत्र : समय-समय पर यहाँ महिला-सत्र की बैठक होती है। इसमें केवल महिलाएँ भाग लेती हैं। अन्त्याक्षरी, वाद-विवाद भाषण-प्रतियोगितादि के माध्यम से इसके द्वारा साहित्य-सर्जना की क्षमताओं के विकास का प्रयास किया जाता है।

इस ३०० वर्ष के प्राचीन मन्दिर में नियमित रूप से अनेक धार्मिक तथा साहित्यिक अनुष्ठान होते रहे हैं। इन सभी के मूल-प्रेरणा-स्त्रोत के रूप में कार्य कर रहे हैं संस्थान के सुधी सदस्यवृन्द और मन्दिर के न्यास-रक्षकगण। श्री हनुमान मन्दिर के प्रयासों से आकृष्ट होकर कई विद्वानों ने राम-साहित्य के सर्जन में अपने को प्रवृत्त

किया। संयोजकों ने देश के भिन्न-भिन्न विद्वानों और विश्वविद्यालयों के पदाधिकारियों से इस विषय में परामर्श भी किया। इसी प्रसंग में पता चला कि काशी के भोंसला मन्दिर के महन्थ पण्डित श्री रामजी व्यास श्री हनुमानजी के विषय में बहुत दिनों से अनुसन्धान कर रहे हैं। वैसे कई महात्माओं ने हनुमानजी के चरित्रों का वर्णन किया है, किन्तु संस्था को इस बात की अपेक्षा थी कि हनुमच्चरित्र का वर्णन हिन्दी में इस प्रकार उपलब्ध कराया जाय, जिसमें उनके उदात्त चरित्र का सर्वांगीण वर्णन हो। वैदिक साहित्य से लेकर उनके चरित्र के सभी पक्षों पर प्रकाश डालनेवाला ग्रन्थ इस प्रकार का हो कि पाठकों को एक ही पुस्तक में वांछित सामग्री मिल सके। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति के उन्नयन के लिए हनुमानजी की साधना की जाती है। हनुमान जी को ज्ञानियों में अग्रगन्य, विद्या-वारिधि और बुद्धि-विधाता कहा गया है। इन्हें सेवा, त्याग, भक्ति, ज्ञान तथा ब्रह्मचर्य का अनुपम आदर्श माना जाता है। इनका चरित्र युवा-पीढ़ी के लिए अजस्र प्रेरणा का संघटक है"। ऐसे उपास्यके चरित्र के प्रचार और प्रसार के लिए अनुकूल ग्रन्थ की खोज थी। समर्पित व्यक्तित्ववाले तथा श्रद्धा-भक्ति समन्वित लेखक को पा सकना भाग्य की बात है, किन्तु इन सबका संयोग-संघटन भी भगवान स्वयं कर देते हैं।

भाई प्रबोधनारायण सिंहजी संस्थान के कार्य से जब काशी आते हैं वे काशी के विद्वानों, महात्माओं और साहित्यिकों से मिलने की उत्सुकता प्रकट करते हैं। इसी प्रसंग में यह विचार उठा कि कोई योग्य विद्वान रामचरित मानस के संबंध में मौलिक ग्रन्थ का प्रणयन करे तो उससे पुरस्कार सार्थक होगा। हम लोग इसी ऊहापोह में थे कि एक दिन अनायास ही भाई रामजी व्यास के यश से आकृष्ट होकर उनके यहाँ सत्संग के लिए पहुंच गये। पिछले एक वर्ष से वे हनुमच्चरित पर लिख रहे थे। हम लोगों ने उनके हस्तलेख के कतिपय अंश सुने और लगा कि ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है। उनसे प्रार्थना की गयी कि वे ग्रन्थ को शीघ्र समाप्त करने का प्रयत्न करें। चार-पाँच महीनों के बाद जब डा० प्रबोध नारायणजी पुनः काशी आयें तो ग्रन्थ समाप्त हो गया था और व्यासजी विषय-सूची तैयार कर रहे थे। श्री मारुति के दिव्य

चरित्र और उनसे संबद्ध विभिन्न पुराणों में वर्णित कथाओं का ललित चित्रण ग्रन्थ में किया गया। श्री रामजी व्यास निस्पृह व्यक्ति थे। रामचरित मानस पर उनका असीम अनुराग था। गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों का उन्होंने परंपरा से गंभीर अध्ययन किया था। आचार्य विश्वनाथ प्रसादजी मिश्र के वे शिष्य थे। भौंसला घाट स्थित रामानन्द पीठ के महन्त होने से उन्हें जन्म से ही रामायण संबंधी प्रेम विरासत में मिला था! हनुमत् चरित का यथार्थ वर्णन करना उनके लिए स्वाभाविक था। 'रामायण मिशन' के प्रचार के लिए उन्होने अफ्रीका, अरबदेश, स्याम, बर्मा, थाइलैंड हांगकांग, फीजी और जापान की यात्रा की थी। जापान में १९६३ ई० में 'मानव के आत्मिक विकाश के लिए आयोजित महासंघ' में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया था। सिन्ध, पश्चिमोत्तर भारत, पंजाब, मध्यप्रदेश और गुजरात में वे प्राय: रामायण की कथा के लिए जाया करते थे। बालकोपयोगी और स्त्रियोंपयोगी सदाचार पुस्तिकाएँ वे रामायण के दृष्टान्तों के साथ तैयार करते थे और श्रोताओं को निःशुल्क बाँटते थे।

रामानन्द संप्रदाय से संबद्ध होने के कारण श्री रामायण पाठ और नाम संकीर्तन में बहुत रस लेते थे। उनके निवास पर आये दिन अखन्ड कीर्तन और साधुओं के भंडारे होते रहते थे। श्री अयोध्या नथा अन्य स्थानों के महात्माओं, कथावाचकों ओर विद्वानों का उन्हें आशीर्वाद प्राप्त था। वे जिस प्रान्त में जाते वहीं की भाषा में कथा कहते थे। आडम्बर का उनमें सर्वथा अभाव था। दैनिक कार्यक्रम एकरस बँधा हुआ था। प्रातः गंगा-स्नान के उपरान्त दिन में ११ बजे तक नित्य भजन-पूजन और मध्याह्नोत्तर से रात ११ बजे तक ग्रंथों का अध्ययन या लेखन का कार्य चलता था। अवस्था में मुझसे बड़े होने पर भी वे मुझसे मित्रता का व्यवहार रखते थे। मैं भी यदाकदा अपने कार्य से निवृत होने के बाद सायंकाल सत्संग या संदेह-निवृत्ति के लिए उनके पास जाया करता था और बहुधा ये बैठकें रात १० बजे तक चलती रहती थीं। रामायण और गोस्वामीजी के संबंध में भी उनका दृष्टिकोण उदार था।

गोस्वामी तुलसीदास का प्रामाणिक दुर्लभ चित्र उनके परिवार में आज भी सुरक्षित है। मानस रामायण की प्रति जो गोस्वामीजी के साकेतवास के २०० बर्ष वाद की है उनके यहाँ उपलब्ध है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के स्व० श्री शंभुनाथ चौबे ने उनके यहाँ की संगृहीत प्रति को आधार मानकर पाठ-भेद पर बहुत कार्य किया था।

श्री रामजी व्यास गौड़ ब्राह्मण थे। ४ जुलाई, १९१० ई० को काशी में उनका जन्म हुआ था। उनका बाल्यकाल कीर्तन, भजन, नवाह्न पारायण और साधु-भण्डारे के वातावरण में बीता था। उन्होंने यजुर्वेद में शाखाध्ययन वैदिक-प्रवर श्री गणेश दीक्षित रावजी भट्ट से सांगवेद विद्यालय में किया था। कर्मकाण्ड की शिक्षा भी सांगवेद विद्यालय में सम्पन्न हुई थी। अपने पितृचरण स्व० महन्त श्री राधावल्लभ शरणजी से उन्होंने मानस तथा गोस्वामीजी के अन्यान्य ग्रंथों का अध्ययन किया था। २२ वर्ष की अवस्था में ही रामायण के प्रचारार्थ वे निकल पड़े थे। स्व० श्री विन्दुजी गोस्वामी, श्री राधेश्यामजी, कपीन्द्रजी आदि के संपर्क में उन्होंने देश के विभिन्न भागों में मानस-रामायण का प्रचार किया था। सुमधुर कण्ठ और आधुनिक ढग से शंका-समाधान की शैली उनकी विशेषता थी। विदेशों में मानस के व्यापक प्रचलन के उद्देश्य से वे वहाँ के बसे भारतीयों से मिलते और उनके बीच रहकर उन्हें उत्साहित करते रहते थे। अत्यन्त व्यस्त रहने पर भी वे अध्ययन और लेखन के लिए दिन के ६-७ घन्टे अवश्य निकालते थे। १९७१ में सिंगापुर में नव निर्मित लक्ष्मीनारायण मंदिर की प्राणप्रतिष्ठा उनके आचार्यत्व में सम्पन्न हुई थी।

उन्होंने अपने ग्रंथ का नाम "मानस हंस-हनुमान" रखा था। उनका मत था कि हनुमच्चरित के अवगाहन से श्रीरामजी की भक्ति उपलब्ध होती है और रामचरित के ज्ञाता श्री हनुमान ही हैं। चर्चा के प्रसंग में वे मुझसे कहा करते कि ग्रन्थ तो किसी तरह पूर्ण हुआ अब उसकी उपादेयता समझें तो उसे प्रकाशित करें। मैंने आत्म तोष के लिए ही यह कार्य किया है। पांडुलिपि का अवलोकन स्व० आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तथा अन्यान्य विद्वानों ने भी किया था।

सबने यह एकस्वर से कहा कि प्रकाशित होने पर ग्रन्थ उपादेय होगा । अतएव श्री प्रबोध नारायण सिंह ने प्रकाशन की व्यवस्था की चर्चा मन्दिर के तत्कालीन न्यास-रक्षक स्व० दामोदरदास खन्ना तथा बाबू महेश प्रसाद खत्री से की, जिन्होंने सोत्साह इसे सम्पन्न करने का आश्वासन दिया । न्यास-रक्षकों के निर्णयानुसार ग्रन्थ छपने लगा और उसके कई फर्मे प्रकाशित भी हुए कि इसी बीच श्री रामजी व्यास का दिनांक ४ अक्टूबर, १९७७ को सामान्य अस्वस्थता के बाद काशीवास हो गया। मृत्यु शय्या पर उन्होंने मुझसे कहा कि पुस्तक के संबंध में जो योग्य समझें करें। इसी दायित्व का निर्वाह करते हुए भगवत् कृपा से इस ग्रन्थ के प्रकाशनोद्घाटन का अवसर आया है। आशा है कि सहृदय पाठकगण इसका रसास्वादन करेंगे ।

—उदयकृष्ण नागर



महावीर हनुमान

* श्री जानकीवल्लभो विजयते *

बालार्क युततेजसं त्रिभुवन प्रक्षोभकं सुन्दरम्
सुग्रीवादि समस्त वानरगणैः संसेव्यपादांबुजम् ॥
नादेनैव समस्त राक्षस गणान् संत्रासयन्
तंप्रभुं श्रीमद्रामपदांबुज-स्मृतिरतं ध्यायामि वातात्मजम् ॥

मानव-दृष्टि भेद :

यह मानव समाज के भावनात्मक चित्तवृत्ति-ज्ञान पर आधृत है। धनुषयज्ञ में संशोभित भगवान श्रीराम एवं इसी प्रकार श्रीकृष्ण के प्रति—

जिनके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥

समाज का दृष्टि-भेद प्रसिद्ध है। इसमें प्रधान कारण-भूत त्रिगुणात्मक-सत्त्व-रज-तम जनित विभिन्नतारूप मानव की चित्त-मन-बुद्धि-जनित ज्ञान वृत्तियां हैं। मानव ही नहीं, अपितु समस्त देव-दानव-राक्षस आदि में भी सर्वथा एक-सा ज्ञान होना असिद्ध है। यदि ऐसा हो जाय तो ईश्वर का वास्तविक भेद ही दूर हो जाय :—

जौं सब के रह ज्ञान एक रस।
ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥

भगवान श्रीराम राघवेन्द्र की भाँति रामदूत हनुमान युग-काल धर्मानुसार, संप्रति अनंत लोकस्वार्थ भावना से ही क्यों न हो, सुजान-अजान, राजा-रंक, आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुषों के अतिशय प्राण-प्रिय, सद्यःसफल, सहाय, सुलभ देव हैं। इनकी समता में अन्यान्य सभी देवी देवादि दूसरे ही स्तर में पूज्य-प्रिय हैं। संक्षेप में इसका मूल रहस्य यह है कि ये १—सर्व व्यापी भगवान की भाँति आत्याकस्मिक समस्त आपत्ति से तत्क्षण बचा लेनेवाले इस युग के एकमात्र सखा• स्वामीरूप से अनाथों के 'देव' हैं। २—इसके अतिरिक्त आज चाहे कोई माने या न माने—तथापि समस्त चारो ओर

को -कोने में, नगर-गावों के प्रधान पालक रूप से मूर्तरूप में व्याप्त हैं—नगर-ग्राम-पालक शुद्धो निरंतरः। इनके लिए कहा गया है—प्रतिग्रामस्थिताय नमः।

अतः ऐसे सर्वव्यापी, निरुपचार, सर्वसुलभ, प्रेम-स्वरूप प्रकट देव के प्रति कौन आकर्षित न होगा ? सर्व साधारण भावुक जनों के हृदय में 'प्रेमहि न प्रबोधू' भावना से कोई दृष्टिभेद-जनित विचार की बात ही नहीं उठती। किन्तु अनेक शताब्दियों के प्रवाह संत-महापुरुषों की दिव्यांतर भावनाओं से प्रेरित मारुति – हनुमान के प्रति जो विभिन्न सद्विचारात्मक स्वरूप प्रकट किये गये हैं वे संक्षेप में ज्ञान-सद्भाव प्रेरणात्मक होंगे। १ —कतिपय स्वानुभवी संतभक्त महापुरुषों ने कुछ तो हनुमान को वानर रूप में महान् श्रीराम भक्त रूप देव जानकर, और कुछ सगुण-निर्गुणात्मक एकत्व स्वरूप में ज्ञान-भक्ति-प्रदाता मान मारुति की अभेद अनन्योपासना से परमानन्द सागर में लीन, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों का एक साथ अभीष्ट संपादन किया है, और अपने प्रेमानुयायियों को भी अपने आनन्द के ज्ञान-दान भी दियें हैं। अब आधुनिक विशिष्ट विद्वानों के विभिन्न मतों पर भी स्वल्प दृष्टि-निक्षेप कर लें :— २—कोई इन्हें अप्राकृत वानर समझते हैं, ३—कोई बहुत बड़ा चतुर योद्धा रूप में आर्य महापुरुष देखते हैं, ४—कोई सत्यासत्य की भ्रमात्मक भावना दृष्टि वशात् अधिक महत्व नहीं देते। ५—कोई सूर्य-रूप कल्पना करते हैं, ६—कोई चन्द्ररूप ही मानते हैं, ७—कोई वैदिक प्रवर्ग्य यज्ञों का यज्ञपुरुष महावीर पात्र स्वरूप कहते हैं। ८—कोई ४९ मरुद्गण वायुरूप ही मानते हैं, ९—कोई उपासना भाव से अनेकमुखी और १०—कोई वेद पूर्वकाल के माहात्म्य रूप समझते हैं, ११—कोई विवेक या अज्ञान या आश्चर्य भाव से देखते हैं। ये सारे विचार आधुनिक विशिष्ट महानुभावों के हैं। इसके अतिरिक्त शास्त्रों में भी आधिभौतिक, आधियाज्ञिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक भावों से ऐसे प्राचीन ऋषि-महर्षियों के कथा-सम्बन्ध से विभिन्न वैयक्तिक यौगिक अनुभव, आध्यात्मिक गुण विशेष एवं तत्त्वज्ञान के आधार पर दृष्टि-भेद मिलते हैं।

वास्तव में मङ्गल मूर्ति भगवान रुद्र-मारुति का लीला स्वरूप, सुयश चरित्रादि इसी भाँति अगाध, अनन्त और अपार है। इसी भाँति इनके परमाराध्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम रघुकुल मणि का—

राम अनन्त अनन्तगुण, अमित कथा विस्तार।
मुनि आचरज न मानिये, जिनके विमल विचार॥

फिर विचारी लेखनी में इतनी शक्ति कहाँ कि अपार सागर के एक सीकराणु को भी अभिव्यक्त कर सके ?

असित-गिरि समं स्याद् कज्जलं सिन्धु पात्रे।
सुरतरु वर शाखा - लेखनी पत्र मूर्वी॥
लिखति यदि गृहीत्वा - शारदा सर्वकालं।
तदपि तव गुणानां पारं न याति ॥१॥

वेदाभिमानी रावण जैसे दीन-हीन कुबुद्धि को प्रत्युत्तर में अंगद द्वारा कथित ये शब्द—

रे ! रे ! रावण हीन दीन कुमते - रामो किं मानुषः !
त्रैलोक्य प्रकट प्रताप विभवः किं रे हनुमान् कपिः !

त्रैलोक्यप्रकट प्रताप विभव रूप भगवान श्रीराम भी क्या मानुष हैं और हनुमान क्या वानर हैं ? इसमें स्वामी सेवक दोंनों ही के अतीव धार्मिक सर्वोत्कृष्ट सत्यस्वरूप का सर्व साधारण जनों के लिए प्रारंभिक सूर्य-चन्द्र जैसा किरण प्रकाश प्राप्त होता है। अतः इसी भावना के आधार से आत्म चिन्तनार्थ सर्वप्रथन 'कल्याणकारी-हंस हनुमान' का सहस्र नाम स्तोत्र दिया जा रहा है :—

महर्षि वाल्मीकि ने ऋषियों की प्रार्थना पर (ब्रह्मांड पुराणे उत्तरखंडे श्रीराम कृत) 'हनुमत्सहस्रनाम स्तोत्र' का महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है। हनुमत्स्वरूप—

श्री राम हृदयानन्दं भक्त कल्प महीरुहम्।
अभयं वरदं दोर्भ्यां कलये मारुतात्मजम्॥ (ब्रह्मांड पुराण)

अथ हनुमत् सहस्रनाम-स्तोत्रम्

श्री गणेशाय नमः। श्री हनुमते नमः।

ऋषय ऊचुः।

ऋषे लोहगिरिं प्राप्तः सीता विरह कातरः।
भगवन् किं विधाद् राम स्तत्सर्वं ब्रूहि सत्वरम्॥

वाल्मीकि उवाच

माया मानुष देहोऽयं ददर्शाग्रे कपीश्वरम् ।
हनुमंतं जगत् स्वामी बालार्क सम तेजसम् ॥
स सत्वरं समागम्य साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ।
कृतांजलि पुरो भूत्वा हनुमान् राम मब्रवीत ॥

श्री हनुमान उवाच

धन्योऽस्मि कृत कृत्योऽस्मि दृष्ट्वा त्वत्पाद पंकजम् ।
योगिना मप्य गम्यं च संसार भय नाशनम् ॥
पुरुषोत्तम देव देवेश कर्तव्यं तन्निवेद्यताम् ।

श्री राम उवाच

'जन स्थानं कपिश्रेष्ठ कोऽप्या गत्य विदेहजाम् ॥
हृतवान विप्र संवेषो मारीचानु गते मयि ।
गवेष्य सांप्रतं वीर जानकी हरणे चर ॥
त्वया गम्यो न को देशस्त्वं च ज्ञानवतां वरः ।
सप्त कोटि महामंत्रः मंत्रितावयवः प्रभुः ॥

ऋषय ऊचुः

को मंत्रः किंच तद् ध्यानं तन्नो ब्रूहि यथार्थतः ।
कथा सुधारसं पीत्वा न तृष्यामः परंतप ॥

वाल्मीकि उवाच

मंत्रं हनुमतो विद्धि भुक्ति-मुक्ति प्रदायकम् ।
महारिष्ट महापाप महादुःख निवारणम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं हनुमते रामदूताय लंका विध्वंसनायांजनी गर्भ संभूताय डाकिनी शाकिनी विध्वंसनाय किलि-किलि बुबुकारेण विभीषणाय हनुमद् देवाय—ॐ ह्रीं श्रीं ह्रौं ह्रां फट् स्वाहा ।

अन्यं हनुमतो मंत्रं सहस्रनाम संज्ञितम् ।
जानन्ति ऋषय: सर्वे महादुरित नाशनम् ॥
यस्य संस्मरणात् सीता लब्ध्वा राज्यमकष्ट दम् ।
विभीषणाय च ददावात्मानं लब्धवान्मया ॥

ऋषय: ऊचु:

सहस्रनाम सन्मंत्रं दु:खाद्यौघ निवारणम् ।
वाल्मीके ब्रूहि नस्तूर्णं शुश्रूषाम: कथां पराम् ॥

वाल्मीकि उवाच

शृण्वन्तु ऋषय: सर्वे सहस्र नामकं स्तवं ।
स्तवानामुत्तमं दिव्यं सदर्थस्य प्रदायकम् ।

ॐ अस्य श्री हनुमत् सहस्र नाम स्तोत्र मंत्रस्य श्री रामचन्द्र ऋषि: अनुष्टुप छन्द: — हनुमान महारुद्रो देवता ह्रीं श्रीं ह्रां बीजम् श्रीं इति शक्ति: किलि-किलि बुबुकारेणेति कीलकम्-सनेति कवचम् । मम सर्वोपद्रव शांत्यर्थे सर्वकाम सिद्ध्यर्थे जपे विनियोग: ।

ऋष्यादिकं विन्यस्य । ॐ हनुमते रामदूताय अंगुष्ठाभ्यां नम: । ॐ लंकाविध्वंसनायतर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ अंजनी गर्भ संभूताय - मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ शाकिनी डाकिनी विध्वंसनाय -अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ किलि-किलि बुबुकारेण विभीषणाय हनुमद् देवाय - कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ॐ ह्रीं श्रीं ह्रौं ह्रां फट् स्वाहा । करतलकर पृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादि ।

अथ ध्यानम्

प्रतप्त स्वर्ण वर्णाभं संरक्तारुण लोचनम् ।
सुग्रीवादियुतं ध्यायेत्पीतांबर समावृतम् ॥
गोष्पदी कृत वारीशं पुच्छ मस्तक मीश्वरम् ।
ज्ञानमुद्रां च बिभ्राणं सर्वालंकार भूषितम् ॥
इति ध्यायेत ।

श्री रामचन्द्र उवाच

हनुमान् श्री पदो वायुपुत्रो रुद्रोऽनघोऽज्वरः।
अमृत्युर्वीर वीरश्च ग्रामवासो जनाश्रयः॥
धनदो निर्गुणः कायो वीरो निधिपतिर्मुनिः।
पिंगाक्षो वरदो वाग्मी सीता शोक विनाशनः॥
शिवः सर्वः परोऽव्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो रसाधरः।
पिंगरोमः पिंगकेशः श्रुतिगम्यः सनातनः॥
अनादि भगवान् देवो विश्वहेतुर्निरामयः।
आरोग्य कर्त्ता विश्वेशो विश्वनाथो हरीश्वरः॥
भर्गो रामो रामभक्तः कल्याण प्रकृतिः स्थिरः।
विश्वंभरो विश्वमूर्ति विश्वाकारोऽथ विश्वदः॥
विश्वात्मा विश्वसेव्योऽथ विश्वो विश्वहरो रविः।
विश्वचेष्टो विश्वगम्यो विश्वध्येयः कलाधरः॥
प्लवंगमः कपि श्रेष्ठो ज्येष्ठो विद्या वनेचरः।
बालो वृद्धो युवा तत्वं तत्वगम्यः सखा-ह्यजः॥
अंजनीसूनुरव्यग्रो ग्रामख्यातो धराधरः।
भूर्भुवः स्वर्महर्लोको जनलोक स्तपोऽव्ययः॥
सत्यमोंकार गम्यश्च प्रणवो व्यापकोऽमलः।
शिवधर्म-प्रतिष्ठाता रामेष्टः फाल्गुनप्रियः॥
गोष्पदी कृत वारीशः पूर्णकामो धरापतिः।
रक्षोघ्नः पुण्डरीकाक्षः शरणागत वत्सलः॥
जानकी प्राणदाता च रक्षः प्राणापहारकः।
पूर्णः सत्यः पीतवासा दिवाकर समप्रभः॥
देवोद्यान बिहारी च देवता भय भंजनः।
भक्तोदयो भक्त लब्धो भक्त पालन तत्परः॥
द्रोणहर्ता शक्तिनेता शक्ति राक्षस मारकः।

रक्षोघ्नो रामदूतश्च शाकिनी जीवहारकः ॥
बुबुकार हतारातिर्गर्व पर्वत मर्दनः ।
हेतुस्त्वहेतुः प्रांशुश्च विश्वभर्त्ता जगद्गुरुः ॥
जगन्नेता जगन्नाथो जगदीशो जनेश्वरः ।
जगद्धितो हरिः श्रीशो गरुड़स्मय भंजनः ॥
पार्थध्वजो वायुपुत्रोऽमित पुच्छो ऽमितप्रभः ।
ब्रह्म पुच्छः परंब्रह्मपुच्छो रामेष्ट एव च ॥
सुग्रीवादि युतो ज्ञानी वानरो वानरेश्वरः ।
कल्प स्थायी चिरंजीवी प्रसन्नश्च सदाशिवः ॥
सन्नतः सद्गति र्भुक्ति-मुक्तिदः कीर्तिनायकः ।
कीर्तिः कीर्ति प्रदश्चैव समुद्रः श्रीपदः शिवः ॥
भक्तोदयो भक्तगम्यो भक्त भाग्य प्रदायकः ।
उदधि क्रमणो देवः संसार भयनाशकः ॥
बालि बन्धनकृद्विश्व जेता विश्व प्रतिष्ठितः ।
लंकारि कालपुरुषो लंकेश गृह-भंजनः ॥
भूतवासो वासुदेवो वसुस्त्रिभुवनेश्वरः ।
श्री राम रूपः कृष्णस्तु-लंका प्रासाद भंजकः ॥
कृष्ण कृष्णस्तुतः शांतः शांतिदो विश्व पावनः ।
विश्व भोक्ताऽथ मारीघ्नो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥
ऊर्ध्वगो लांगुली माली लांगुलाहत राक्षसः ।
समीर तनजो वीरो वीरमारो जयप्रदः ॥
जगन् मङ्गलदः पुण्यः पुण्य श्रवण कीर्तनः ।
पुण्यकीर्तिः पुण्यगीति जंगत् पावन पावनः ॥
देवेशो जितमारोऽथ राम-भक्ति विधायकः ।
ध्याता ध्येयोभगः साक्षी चेत चैतन्य विग्रहः ॥
ज्ञानदः प्राणदः प्राणो जगत्प्राणः समीरणः ।

विभीषणप्रियः शूरः पिप्पलायन सिद्धिदः ।
सिद्धिः सिद्धाश्रयः कालः कालभक्षक भंजनः ॥
लंकेश निधन स्थायी लङ्कादाहक ईश्वरः ।
चन्द्र सूर्याग्नि नेत्रश्च कालाग्निः प्रलायन्तकः ॥
कपिलः कपिशः पुण्य राशि द्वादश राशिगः ।
सर्वाश्रयोऽप्रमेयात्मा रेवत्यादि निवारकः ॥
लक्ष्मण प्राण दाता च सीता जीवन हेतुकः ।
रामध्येयो ऋषीकेशो विष्णुभक्तो जटी बलिः ॥
देवारि दर्पहा होता धाता कर्ता जगत् प्रभुः ।
नगर-ग्राम पालश्च शुद्धो बुद्धो निरन्तरः ॥
निरंजनो निर्विकल्पो गुणातीतो भयङ्करः ।
हनुमंतो दुराराध्यस्तपः साध्यो महेश्वरः ॥
जानकी घनशोकोत्थ तापहर्ता परात्परः ।
वाङमयः सदसद्रूप कारण प्रकृते परः ॥
भाग्यदो निर्मलो नेता पुच्छ लंका विदाहकः ।
पुच्छ बद्धयातुधानो यातुधान रिपुप्रियः ॥
छायापहारी भूतेशो लोकेशः सद्गति प्रदः ।
प्लवंगमेश्वरः क्रोधः क्रोधसंरक्त लोचनः ॥
सौम्यो गुरुः काव्यकर्त्ता भक्तानां च वरप्रदः ।
भक्तानुकंपी विश्वेशः पुरुहूतः पुरंदरः ॥
क्रोधहर्ता तापहर्ता भक्ताभय वरप्रदः ।
अग्नि विभावसु र्भानु र्यमोनिर्ऋतिरेव च ॥
वरुणो वायु र्गतिमान्वायुः कुवेरो ईश्वरः ।
रविश्चन्द्रः कुजः सौम्यो गुरुः काव्यः शनैश्चरः ॥
राहुः केतु र्मरुद्दाता धर्ता हर्ता समीरजः ।
मशकीकृत देवारि दैत्यारि र्मधुसूदनः ॥

काम: कपि: कामपाल: कपिलो विश्व जीवन: ।
भागीरथीपदांभोज: सेतुबंध विशारद: ॥
स्वाहा-स्वधा-हवि: कव्य हव्यवाह: प्रकाशक: ।
स्वप्रकाशो महावीरो लघुरमित विक्रम: ॥
भंजनो दानगतिमान्सद्‌गति: पुरुषोत्तम: ।
जगदात्मा जगद्योनि र्जगदन्तो ह्यनंतक: ॥
विपाप्मा निष्कलंकोऽथ महात्मा ह्यदहंकृति: ।
खं वायु: पृथ्वीरापो वन्हि दिक्पाल • एव च ॥
क्षेत्रज्ञ क्षेत्रहर्त्ता च पल्वली कृतसागर: ।
हिरण्मय: पुराणश्च खेचरो भूचरो मनु: ॥
हिरण्यगर्भ: सूत्रात्मा राजराजो विशांपति: ।
वेदांवेद्य उद्‌गीथो वेद-वेदांग पारग: ॥
प्रतिग्राम स्थित: सद्य: स्फूर्तिदाता गुणाकर: ।
नक्षत्र माली भूतात्मासुरभि: कल्पपादय: ॥
चिंतामणि र्गुणनिधि: प्रजाधारो ह्यनुत्तम: ।
पुण्य श्लोक: पुराराति र्ज्योतिष्मान् शर्वरीपति: ॥
किलकिला राव संत्रस्त भूत प्रेत पिशाचक: ।
ऋणत्रय हर: सूक्ष्म स्थूल: सर्वगति: पुमान ॥
अपस्मार हर: स्मर्त्ता श्रुतिर्गाथा स्मृतिर्मनु: ।
स्वर्गद्वार प्रजाद्वार मोक्षद्वार-पतीश्वर: ॥
नादरूप: परंब्रह्म ब्रह्मब्रह्म पुरातन: ।
एकोऽनेको जन: शुक्ल: स्वयं ज्योतिरनाकुल: ॥
ज्योति र्ज्योति रनादिश्च सात्त्विको राजसस्तम: ।
तमोहर्ता निरालंबो निराहारो गुणाकर: ॥
गुणाश्रयो गुणमयो बृहत्कर्मा बृहद्यश: ।
बृहद्धनुर्बृहत्पादो बृहन्मूर्धा बृहत्स्वन: ॥

वृहत्कायो वृहन्नासो वृहद्वाहु र्वृंहत्तनुः ।
वृहद्यत्नो वृहत्कामो वृहत्पुच्छो वृहत्करः ॥
वृहद्गति र्वृंहत्सेव्यो वृहल्लोक गतिप्रदः ।
वृहच्छक्ति र्वृंहद्वांछा फलदो वृहदीश्वरः ॥
वृहल्लोकनुतो द्रष्टा विद्यादाता जगद्गुरुः ।
देवाचार्यः सत्यवादी ब्रह्मवादी कलाधरः ॥
सप्तपाताल गामी च मलयाचल सश्रयः ।
उत्तराशा स्थितः श्रीदो दिव्योषधि वशः खगः ॥
शाखामृगः कपींद्रोऽथ पुराणः प्राणचंचुरः ।
चतुरो ब्राह्मणो योगी योगगम्यः परावरः ॥
अनादि निधिदो व्यासो वैकुण्ठः पृथिवीपतिः ।
अपराजितो जितारातिः सदानंदो गिरीशजः ॥
गोपालो गोपत्ति र्योद्धा कलि कालः परात्परः ।
मनोयोगी सदायोगी संसार भयनाशनः ॥
तत्वदाताऽथ तत्वज्ञस्तत्वं तत्त्व प्रकाशकः ।
शुद्धो-बुद्धो नित्ययुक्तो भक्तराजो जगद्रथः ॥
प्रलयोऽमित मायश्च मायातीतो विमत्सरः ।
माया वर्जित रक्षाश्च माया निर्मित विष्टपः ॥
मायाश्रयश्च निर्लेपो माया निर्वर्तकः सुखं ।
सुखी सुखप्रदो नागो महेश कृत संस्तवः ॥
महेश्वरः सत्यसंधः शरभः कलिपावनः ।
रसो रसज्ञः सन्मानो रूपचक्षुः स्तुतिः खगः ॥
घ्राणो गन्धः स्पर्शनं च स्पर्शोऽहंकार मानगः ।
नेति नेतीति गम्यश्च वैकुण्ठ भजनप्रियः ॥
गिरीशो गिरिजाकांतो दुर्वासा कविरंगिरा ।
भृगु र्वसिष्ठश्च्यवनो नारद स्तुम्बरोऽमलः ॥

विश्वक्षेत्रं विश्वबीजं विश्वनेत्रे च विश्वपः ।
याजको यजमानश्च पावकः पितरस्तथा ॥
श्रद्धा बुद्धिः क्षमातन्त्रो मन्त्री मन्त्रपिता सुरः ।
राजेन्द्रो भूपती रुण्ड-माली संसार सारथिः ॥
नित्यः सम्पूर्ण कामश्च भक्तकामधुगुत्तमः ।
गणपः केशवो भ्राता पितामाताऽथ मारुतिः ॥
सहस्रमूर्धा सहस्रास्यः सहस्राक्ष सहस्रपात् ।
कामजित् कामदहनः कामी काम्य फल प्रदः ॥
मुद्रापहारी रक्षोघ्नः क्षिति भार हरो बलः ।
नख द्रंष्ट्रायुधो विष्णुर्भक्ताभय वरप्रदः ॥
दर्पहा दर्पदो द्रष्टा शतमूर्तिरमूर्तिमान् ।
महानिधि र्महाभागो महाभर्गो महर्द्धिदः ॥
महाकारो महायोगी महातेजः महाद्युतिः ।
महाकर्मा महानादो महामन्त्रो. महामतिः ॥
महागमो महोदारो महादेवात्मको विभुः ।
रुद्रकर्मा क्रूरकर्मा रत्ननाभः कृतागमः ॥
अम्बोधिलंघनः सिंहः सत्यधर्मा प्रमोदनः ।
जितामित्रो जयः सोमो विजयो वायुवाहनः ॥
जीवोधाता सहस्रांशु र्मुकुन्दो भूरि दक्षिणः ।
सिद्धार्थ सिद्धिदः सिद्ध संकल्पः सिद्धि हेतुकः ॥
सप्तपाताल चरणः सप्तर्षि गणवंदितः ।
सप्ताब्धि लंघनो वीरः सप्तद्वीपोरु मंडलः ॥
सप्तांगराज्य सुखदः सप्तमातृ निषेवितः ।
सप्तस्वर्लोक मुकुटः सप्तहोतृ स्वराश्रयः ॥
सप्तच्छन्दो निधिः सप्तच्छन्दः सप्तजनाश्रयः ।
सप्त सामोपगीतश्च सप्तपाताल संश्रयः ॥

मेधादः कीर्तिदः शोकहारी दौर्भाग्य नाशनः ।
सर्ववश्यकरो गर्भ दोषहा पुत्र पौत्रदः ॥
प्रतिवादि मुखस्तंभो रुष्ट चित्त प्रसादनः ।
पराभिचार शमनो दुःखहा बन्ध मोक्षदः ॥
नवद्वार पुराधारो नवद्वार निकेतनः ।
नवनारायण स्तुत्यो नवनाथ महेश्वरः ॥
मेखली कवची खड्गी भ्राजिष्णु विष्णु सारथिः ।
बहुयोजनविस्तीर्ण पुच्छ दुष्ट हृतासुरः ॥
दुष्ट ग्रह निहन्ता च पिशाचग्रह घातकः ।
बालग्रह विनाशी च धर्मनेता कृपाकरः ॥
उग्रकृत्य उग्रवेग उग्रनेत्रः शतक्रतुः ।
शतमन्यु स्तुतः स्तुत्यः स्तुतिः स्तोता महाबलः ॥
समग्रगुणशाली च व्यग्रो रक्षो विनाशिनः ।
रक्षोघ्नि दाहो ब्रह्मेशः श्रीधरो भक्तवत्सलः ॥
मेघनादो मेघरूपो मेघ वृष्टि निवारकः ।
मेघजीवन हेतुश्च मेघश्यामः परात्मकः ॥
समीरतनयो योद्धा तत्त्वविद्या विशारदः ।
अमोघोऽमोघ दृष्टिश्च दिष्टदोऽरिष्ट नाशनः ॥
अर्थोऽनर्थापहारी च समर्थो राम सेवकः ।
अर्थी धन्यो सुरारातिः पुण्डरीकाक्ष आत्मभूः ॥
संकर्षणो विशुद्धात्मा विद्याराशिः सुरेश्वरः ।
प्रचलोद्धारको नित्यः सेतुकृद् राम सारथिः ॥
आनन्दः परमानन्दो मत्स्यः कूर्मो निधीश्वरः ।
वाराहो नारसिंहश्च वामनो जमदग्निजः ॥
रामः कृष्णः शिवो बुद्धः कल्की रामश्च मोहनः ।
भृङ्गी नन्दी च चण्डी च गणेशो गण सेवितः ॥

कर्माध्यक्ष: सुरारामो विश्रामो जगतीपति: ।
जगन्नाथ: कपीशश्च सर्वावास: सदाश्रय: ॥
सुग्रीवादिस्तुतो दान्त: सर्वकर्म प्लवंगम: ।
नख दारित रक्षाश्च नखयुद्ध विशारद: ॥
कुशल: सघन: शेषो वासुकिस्तक्षकस्तथा ।
स्वर्णवर्णी बलाढ्यश्च पुरुजेताघनाशन: ॥
कैवल्य दीप: कैवल्यो गरुड़: पन्नगो गुरु: ।
क्लिक्लीरावहतारातिः र्वार्व पर्वत भेदन: ॥
वज्रांगो वज्र वज्रश्च भक्त वज्र निवारक: ।
नखायुधो मणिग्रीवो ज्वालामाली च भास्कर: ॥
प्रौढ़ प्रताप स्तपनो भक्त ताप निवारक: ।
शरणं जीवनं भोक्ता नाना चेष्टोऽथ चंचल: ॥
स्वस्थ: स्वस्थ स्थहा दु:ख शातन: पवनात्मज: ।
पावन: पवन: कांतो भक्तागसहनो बली ॥
मेघनाद रिपुर्मेघनाद संहृत राक्षस: ।
क्षरोऽक्षरो विनीतात्मा वानरेश: सन्तांगति: ॥
श्रीकण्ठ: शितकण्ठश्च सहायो सहनायक: ।
अस्थूल स्त्वनणु र्भर्गो दिव्य: संसृति नाशन: ॥
अध्यात्म विद्यासारश्च अध्यात्म कुशल: सुधी: ।
अकल्मष: सत्यहेतु: सत्यद: सत्य गोचर: ॥
सत्यगर्भ: सत्यरूप: सत्य: सत्यपराक्रम: ।
अंजनी प्राण लिंगश्च वायुवंशो द्वह: स्तुति: ॥
भद्ररूपो रुद्ररूप: सुरूपश्चित्र रूप धृक् ।
मैनाक वंदित: सूक्ष्म दशनो विजयोऽजय: ॥
क्रांत दिंग मण्डलो रुद्र: प्रकुटी कृत विक्रम: ।
कंबुकण्ठ: प्रसन्नात्मा दु:खनांशो वृकोदर: ॥

लंबोष्ठः कुण्डली चित्रमाली योग विदांवरः ।
विपश्चित्कविरानन्द विग्रहोऽनल्प शासनः ॥
फाल्गुनी सूनु रव्यग्रो योगात्मा योग तत्परः ।
योग वियोग कर्त्ता च योगयोनि र्दिगंबरः ॥
अकारादि हकारांत वर्ण निर्मित विग्रहः ।
उलूखल मुखः सिद्ध संस्तुतः प्रमथेश्वरः ॥
श्लिष्ट जंघः श्लिष्ट जानुः श्लिष्टपाणिः शिखाधरः ।
सुशर्माऽमित शर्मा च नारायण परायणः ॥
विष्णुर्भविष्णु रोचिष्णुर्ग्रसिष्णुः स्थास्नुरेवच ।
हरि रुद्रानुकृद्वृक्षः कंपनो भूमिकंपनः ॥
गुण प्रवाहः सूत्रात्मा वीतरागः स्तुतिप्रियः ।
नागकन्या भयध्वन्सी ऋतुपर्णः कपालभृत् ॥
अनाकुलो भगोऽपापो भगवान् वेदपारगः ।
अक्षरः पुरुषो लोकनाथो ऋक्षः प्रभुर्द्दढः ॥
अष्टांग योग फलभूः सत्यसंधः पुरुष्टुतः ।
श्मशान स्थान निलयः प्रेत विद्रावण क्षमः ॥
पंचाक्षरपरः पंचमातृको रंजनध्वजः ।
योगिनी वृन्द वन्द्यः श्री शत्रुघ्नोऽनन्त विक्रमः ॥
ब्रह्मचारीन्द्रियरिपु र्धृतदंडो दशात्मकः ।
अप्रपंचः सदाकारः शूरसेना विदारकः ॥
वृद्धप्रमोद आनन्दः सप्तजिह्वा पतिर्धरः ।
नवद्वार पुराधारः प्रत्यग्रः सामगायकः ॥
षट चक्रधाम स्वर्लोक भय हृन्मानदो मदः ।
सर्ववश्यकरः शक्ति रनंतोऽनंत मंगलः ॥
अष्टमूर्तिर्नयोपेतो विरूपः सुरसुन्दरः ।
धूमकेतु र्महाकेतुः सत्यकेतु र्महीधरः ॥

नन्दीप्रियः स्वतंत्रश्च मेखली डमरूप्रियः ।
लोहांगः सर्वविद् धन्वी लांगूलः सर्व ईश्वरः ॥
फलभुक् भलहस्तश्च सर्वकर्म फलप्रदः ।
धर्माध्यक्षो धर्मफलो धर्मो धर्मे प्रदोऽर्थदः ॥
पंच विंशति तत्त्वज्ञ स्तारको ब्रह्मतत्परः ।
त्रिमार्गे वसति र्भीमः सर्वदुष्ट निबर्हणः ॥
ऊर्जस्वान्निष्कलः शूली मौलीर्गर्जो निशाचरः ।
रक्तांबर धरो रक्त रक्तमाला विभूषणः ॥
वनमाली शुभांगश्च श्वेतः श्वेतांबरो युवा ।
जयोऽजयः परीवारः सहस्रवदनः कपिः ॥
शाकिनी डाकिनी यक्ष रक्षोभूत प्रभंजकः ।
सद्योजातः काम गति र्ज्ञान मूर्ति र्यशस्करः ॥
शंभुतेजा सार्वभौमो विष्णु भक्त प्लवंगमः ।
चतुर्नवति मंत्रज्ञः पौलस्त्य बल दर्पहा ॥
सर्वलक्ष्मीप्रदः श्री मानंगद प्रिय दर्पनुत् ।
स्मृति बीजं सुरेशानः संसार भयनाशनः ॥
उत्तमः श्री परीवारः श्री भूरुग्रश्च कामधुक् ।

वाल्मीकिरुवाच

इति नाम्नां सहस्रेण स्तुतो रामेण वायुभूः ॥
उवाच तं प्रसन्नात्मा सन्ध्यायात्मान मव्ययम् ।

हनुमानुवाच

ध्यानास्पद मिदं ब्रह्म मत्पुरासमुपस्थितम् ॥
स्वामिन् कृपानिधे राम ज्ञातोऽस्मि कपिनामया ।
त्वद् ध्यान निरता लोकाः किं मां जपसि सादरम् ॥
तवागमन हेतुश्च ज्ञातो ह्यत्र मयाऽनघ ।
कर्तव्यं मम किं राम तथा ब्रूहि च राघव ॥

इति प्रचोदित्तो रामः प्रहृष्टात्मेदमब्रवीत ।

श्री राम उवाच

दुर्जयः खलु वैदेहीं गृहीत्वा कोपि निर्गतः ॥
हत्वा तं निर्वृणं वीर आनयस्व कपीश्वरः ।
मम दास्यं कुरु सखे भव विश्व सुखंकरः ॥
तथा कृते त्वया वीर मम कार्यं भविष्यत्ति ।
ओमित्याज्ञांतु शिरसा गृहीत्वा स कपीश्वरः ॥
विधेयं विधिवत्तत्र चकार स शिवः स्वयम् ।
इदं नानां सहस्रंतु योऽधीते प्रत्यहं नरः ॥
दुःखौघो नश्यते तस्य संपत्तिर्वर्धते चिरम् ।
वश्यतं चतुर्विधं तस्य भवत्येव न संशयः ॥
राजानो राजपुत्राश्च राज कार्याश्च मंत्रिणः ।
त्रिकाल पठनादस्य दर्शनांते च त्रिपक्षतः ॥
अश्वत्थमूले जपतां नास्ति वैरिकृतं भयम् ।
त्रिकाल पठनात्तस्य सिद्धिः स्यात्करसंस्थिता ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय प्रत्यहं य पठेनन्नरः ।
ऐहिकामुष्मिकं सोऽपि लभते नात्र संशयः ॥
संग्रामे संन्निविष्ठानां वैरि विद्रावणं परम् ।
ज्वरापस्मार शमनं गुल्मादीनां निवारणम् ॥
साम्राज्य सुख संपत्ति दायकं जपतां नृणाम् ।
स्वर्ग मोक्षं समाप्नोति रामचन्द्र प्रसादतः ॥
य इदं पठते नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति वायुपुत्र प्रसादतः ॥

इति श्री ब्रह्मांड पुराणे-उत्तर खंडे-श्रीरामकृतं हनुमत् सहस्र नामस्तोत्रं संपूर्णम् ।

—:*:—

हनुमत् सहस्रनाम स्तोत्र-दर्शन

ब्रह्मांड पुराण के उत्तर खंड के अन्तर्गत भगवान राम ने प्रथम मिलन में ही हनुमान की जिस ईश भावना से सहस्रनामों द्वारा स्तुति की है वह अतीव मार्मिक है। इस स्तोत्र से अनेक रहस्यों का उद्घाटन होता है। इस महास्तोत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्त आधिभौतिक, आधियाज्ञिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक भावनाओं के प्रतीक विराट्स्वरूप ब्रह्ममूर्त्त एकमात्र श्री हनुमान ही हैं। यह स्पष्टतः उद्भासित होता है कि ब्रह्मा–विष्णु–महेश, मत्स्यादि दशावतार, देवोपम नारदादि-ऋषि, सारे गुरु-मंगलादि नवग्रह-नक्षत्र, द्वादश राशियाँ, पञ्च महाभूत, , जगत्प्राण, तीन लोक चौदह भुवन, शक्ति-ज्ञान-स्थूल-सूक्ष्म तत्त्वादि साधन-साध्यादि व्यक्ताव्यक्त रूप में 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम् (छान्दोग्योपनिषद् ६।८।१६), 'एको देवो बहुधा सन्निविष्टः, (तैत्तिरीय आरण्यक ३।१४), 'त्वमेकोऽसि बहूननुप्रविष्टः' (तैत्तिरीय आरण्यक ३।१४) इत्यादि उक्तियों द्वारा हनुमान ही वर्णित हैं। समस्त सहस्रनाम का मनन करने से जो धारणा दृढ़ होती है उसे संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिस प्रकार एक ही आकाश तत्व अनेक जल-घटों में विभिन्नता से अनन्त रूपों में प्रतिभासित होता है अथवा जिस प्रकार आकाशीय सूर्य एक होते हुए भी अनेक जल-घट-पात्रों में अनेक रूपों में प्रतिबिम्बित होता है उसी भाँति इस सहस्रनाम स्तोत्र में तथा नाना रूप व्यापारात्मक जगत में हनुमान जी व्याप्त हैं। जिस प्रकार अग्नि-परितप्त तरल लौह–खंड स्फुलिंग रूप से अनेक रूपनामों में प्रसारित हो जाता है उसी प्रकार एक हनुमान के ही ये सहस्र नाम अनन्त रूप–गुण-शक्ति के प्रतीक हैं। जिस प्रकार समस्त प्राणियों में अन्तरात्मा एक ही है उसी प्रकार समस्त नामों में अन्तरात्मा रूप हनुमान अकेले ही विराजमान हैं। यही विचार सहस्रनाम एवं शास्त्रोपनिषत् सम्मित है। अतः समस्त पुराण-संहिताओं द्वारा सिद्धांत-प्रमाण से यही सिद्ध होता है कि आप ऋष्यमूक पर्वत के एक साधारण वानर नहीं, वरन् जगदीश्वर हरि-तद्रूप ही हैं।

हनुमज्जन्म-सन्दर्भ

श्री हनुमान के जन्म की कथाओं का उल्लेख नाना स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूपों में उपलब्ध होता है। संहिता-ग्रन्थों में, पुराणों में, विविध भाषाओं की रामायणों में, लोक-श्रुतियों में तथा अन्यान्य (पूर्वी-दक्षिण-एशियाई) देशों में इनकी कथाएँ जिस प्रकार वर्णित हैं उनका यहाँ संक्षेपतः उल्लेख किया जा रहा है।

१. स्कन्दपुराण के उनचालीसवें अध्याय में वैष्णव खण्ड में मारुति के जन्म का वृत्तान्त मिलता है। इस प्रसंग में इनके मातामह और जननी अंजना का आख्यान वर्णित है। अंजना के पिता राक्षस जाति के राजा थे और पति वानर जाति के प्रतापी भूपाल थे, किन्तु पिता और पति दोनों का नाम केसरी ही था। राक्षसेश्वर केसरी की एकमात्र सन्तान यही अंजना थी। उन्हें पुत्र-रत्न की बड़ी उत्कट अभिलाषा थी। अतएव पुत्र-कामना से उन्होंने महारुद्र की घोर उपासना की। स्वयं राक्षस-राज तो पुत्रवान नहीं हुए, किन्तु दौहित्र-सुख के वरदान से वे परितृप्त हो गये।

कथा इस प्रकार है कि एक बार वैष्णव–धर्मानुरागी मुनिसिंह ऋषिवर्य मतंग धर्म-तीर्थों की यात्रा के प्रसंग में पर्यटन कर रहे थे। अकस्मात मार्ग में उन्होंने एक शिला पर उपविष्ट ध्यानमग्ना सुन्दरी कन्या को देखा। वह पुत्र के अभाव में अत्यन्त दुखिता अंजना थी जो कठोर तपश्चर्या में लीन थी। महर्षि मतंग ने उससे पूछा कि देवी, तुम किस कामना से यहाँ इस घोर तपस्या में लीन हो ? यदि उचित समझो तो तुम मुझे साफ साफ बता दो। अंजना ने कहा, "मुनिवर, यदि आप मेरी मनोकामना जानने के इच्छुक हैं तो सहर्ष निवेदन करने को प्रस्तुत हूँ। आप सुनें।

शिवोपासक राक्षसराज केसरी की मैं कन्या हूँ (पिता मे केसरीनामराक्षसः शिव–तत्परः)। मेरा नाम अंजना है। मैं अपने पिता की एकमात्र कन्या हूँ। मेरे बाद कोई पुत्र न होने से पिता अधिक चिन्तित रहा करते थे। अतः पुत्र–प्राप्ति की कामना से उन्होंने भगवान शिव की आराधनात्मक घोर तपस्या की। सैकड़ों वर्षों की उपासना पर एक दिन वृषारूढ़ चन्द्रमौलि ने प्रसन्न हो दर्शन दिया। चरणों में प्रणाम करके पिता ने भगवान से याचना की कि पुत्रं देहि। चरणों से उठा, हृदय से लगाके

भगवान शिव बोले—राक्षसेन्द्र ! तुम्हारी उपासना से मैं अतीव प्रसन्न हूँ, किन्तु विधि-विधानवश तुम अपनी परम भाग्यशालिनी कन्या अंजना के द्वारा ही यथेप्सित मेरे दिये हुए तेजांश से भविष्य में पुत्रवान बनोगे।

अंजना द्वारा उत्पन्न त्रैलोक्य प्रसिद्ध महाबलशाली परम बुद्धि सागर-पुत्र ही तुम्हारी सारी अभिलाषाओं का पूर्णकर्त्ता तथा प्रेम-भाजन होगा। यह वर दे भगवान अन्तर्धान हो गये। विप्रवर ! ईश्वरेच्छा बलीयसी' मानकर मुझे ही अपना पुत्र-धन समझ मेरे पिता शांत और प्रसन्न हो गये। विवाह समय आने पर महाकपिराज वीर केसरी नामक वानरेश की याचना से उनके तेज से प्रभावित मेरे पिता ने सानन्द ब्राह्मविधि से मुझे उनके हाथों में समर्पित कर दिया। दायज में पिता ने लक्ष गौ, अश्व, गज, रथ, आदि सहित अनेकानेक रत्न, वस्त्र, आभूषण एवं सहस्र दासदासियाँ दे, हर्ष–विषाद समन्वित भावों से मुझे विदा किया। ऋषिराज ! मैं अपने पति के साथ सानंद-किष्किंधा महापुरी राजधानी में आई और वहाँ देवाकर्षित सुन्दर राजप्रासाद में अपने वीर प्रिय स्वामी के साथ नित्यशः अलौकिक आनन्द विलासमय भोग करने लगी, जो सर्वथा अवर्णनीय-सा है। किन्तु वर्षों बीत जाने पर भी आनन्द फल स्वरूप पुत्र-प्राप्ति न होने के कारण ये सारे सुख हम दोनों को हृदय में सालने लगे। अतः धर्म मार्ग से पुनीत मासों में तीर्थ स्नान, यात्रा, व्रत, दान, गौ-भूमि, स्वर्ण, तिल-वस्त्रादि जिन आचार्य ब्राह्मणों ने जो बताये वे यथासमय सत्पुत्र-फल प्राप्ति कामना से सविधि कर लिए। तथापि इससे भी सफलता न मिली। चिन्तित और हताश अवस्था में अब मैं अपने पिता की भाँति यहाँ उग्र तपश्चर्या में आ बैठी हूँ। भगवन् ! आपके अत्याकस्मिक दर्शन-अनुकम्पा से मैं अनुभव कर रही हूँ कि पूर्व सुकृत फलस्वरूप सम्प्रति मेरे सौभाग्य के द्वार खुल गये हैं। अतः आप से अब मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप कृपया यह बतावें कि भगवान शिव द्वारा पिता को दिये गये वरदान के अनुसार मुझे किस साधनोपासना से त्रैलोक्य प्रसिद्ध वीर गुणवान पुत्र की प्राप्ति होगी ? (वदत्वं मुनि शार्दूल ! दीनाऽहं तपसि स्थिता।)

तपस्थिता दीना अंजना की विशुद्ध आर्द्र भावना से प्रसन्न हो, महर्षि मतंग बोले—देवी ! अब तुम चिन्तामुक्त हो मेरे आदेश के अनुसार निर्दिष्ट स्थान में जाकर

साधना व्रत द्वारा उपासना करो। तुम्हारी कामना जिस प्रकार निःसंदेह सफल होगी, उसे ध्यान से सुनो। यहाँ से दस योजन सुदूर श्री नृसिंह भगवान की निवास-भूमि 'धनाचल' नाम से प्रसिद्ध है। उसके ऊपरी भाग में सुरम्य ब्रह्मतीर्थ है, जिसके पूर्व में नदीश्रेष्ठा दस योजन विस्तीर्ण स्वर्ण मुखरी नदी बहती है। इसके उत्तर संभाग में वृषभाचल और अग्रभाग में स्वामि पुष्करणी नामक पवित्र सर है। वहाँ जाते ही तथा पवित्र जल के मज्जन-स्नान आदि से ही हृदय शुद्ध - शांत हो जाता है। वहाँ सविधि स्नान एवं भगवान वाराह तथा वेंकटेश भगवान का पूजन-नमस्कार करना। इसके बाद उत्तर भाग में सुन्दर फल द्रुम वनों से संकुल, सुविख्यात आकाश-गंगा नामक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है।

देवि अंजने! पति के साथ उसी तीर्थ में जाकर तुम दोनों संकल्प विधि से स्नान एवं व्रतोपवास-साधन से पवनदेव की आराधना एवं तप करो। उन्हीं के प्रसाद से अभूतपूर्व गुण-शक्ति-सम्पन्न, त्रैलोक्य-वन्दित पुत्र की निस्सन्देह प्राप्ति होगी। ऋषिवर मतंग की सुधा वाणी से अतीव हर्ष में विभोर अंजना ने ऋषि चरणों में सादर प्रणाम किया। आशीर्वाद के साथ महात्मा के प्रस्थान पर शीघ्र ही अंजना अपने स्वामी केशरी के साथ अभिकामना पथ पर चल पड़ी। गुरुवर मतंग महर्षि के आदेशानुसार तीर्थ स्थलों की यात्रा, दर्शन और स्नान करती हुई आकाश गंगा तीर्थ स्थल में पहुँच गई। वहाँ सविधि मज्जन-स्नानादि कर शांत-प्रसन्न हृदय से तीर्थ-सन्मुख स्थित हो दोनों ने प्राणवायु को उपास्य देव मान, उग्र तपाराधन आरम्भ कर दिया। उन्होंने क्रमशः प्रथम फल, जल, निराहार वायु-पान करते, नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि लगाकर एक हजार वर्ष तक दुष्कर तपस्या की। सहस्र वर्ष की समाप्ति पर दम्पति के सम्मुख साक्षात पवन देव प्रकट हो कर बोले—हे मुनि सत्तमे; मेष सूर्य की संक्रांति, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा तिथि, चित्रा नक्षत्र में मैं तुम्हारी कमना सफल करूँगा। 'त्वेप्सितमहं दास्ये वरं वरय सुव्रते'। सुव्रते! इस सम्बन्ध में तुम्हें जो माँगना हो वह वर सहर्ष माँग लो।

पवनदेव की वाणी से प्रसन्न सती अंजना हाथ जोड़ कर बोली—महामते श्री वायुदेव! मेरी एकमात्र यही कामना है कि आप मुझे पुत्र प्रदान करें। देवी

अंजना की याचना से प्रसन्न होकर मातरिश्वा पवन ने कहा—

"पुत्रस्तेऽहं भविष्यामि ख्यातिं दस्ये शुभानने"

सुमुखि ! मैं स्वतः तुम्हारे पुत्र रूप में जन्म लेकर यथेप्सित सारी मनकामनाएँ पूर्ण करूँगा। इस प्रकार वर दे वे वहीं वायु रूप हो गये। उसी समय इन्द्रादि लोकपालों के साथ ब्रह्मा, वशिष्ठ अगस्त्य आदि ब्रह्मर्षि, सनकादि नारद, योगिगण व्यासादि विप्रेन्द्र, लक्ष्मी के साथ विश्वपति भगवान विष्णु तथा सपत्नीक देवमुनि ऋषि गणादि सभी अपने-अपने वाहनों पर सपरिवार सेवकों के साथ ही—वहाँ इस महान् युगल तपस्वी के तप तेज से परमाकर्षित हो महामान्य भक्त को देखने और आशीर्वाद देने पधारे। नभोमण्डल जयनाद से गूँज उठा।

सभी देव और ऋषि मण्डल आकाश भूमण्डल में आश्चर्य प्रकट करते हुए दोनों के सुदुष्कर तप की प्रशंसा कर रहे थे। इधर परमानन्द मग्न एवं वायु-कृपा से पूर्ण स्वस्थ दम्पति के कानों में सुमधुर प्रशंसात्मक शब्द-ध्वनि के पड़ते ही उनकी दृष्टि सामने आकाश भूमण्डल पर जा पड़ी। उन्होंने देखा कि देव-गण साधुसाधु शब्दों का उच्चारण कर रहे हैं। अत्याकस्मिक रूप से अपने सम्मुख भगवान श्री पति के साथ ब्रह्मा, शिव लोकपालादि देव, ऋषि-मुनि तथा योगिवृन्द के दर्शन से वे विस्मित और विमुग्ध हो गये। सभी के प्रति प्रेमादर की भावना दरसाते हुए अंजना-केसरी ने सबको यथाविधि साष्टांग प्रणाम किया। तभी भगवत् प्रेरित वेद विदांवर श्री व्यास भगवान अंजना के पास पधार कर बोले—महाभागे ! महर्षि मतंग के उपदेश से ब्रह्मांड प्रसिद्ध श्री वेंकटेश्वर पुण्य स्थल तीर्थ में आकर जिस प्रकार तुम दोनों ने वायुदेव की उपासना में दुष्कर तप किया है, यह अभूतपूर्व है। अतः निःसंदेह तुम्हें त्रैलोक्य-विक्रमी, सधर्मनिष्ठ, भगवद् भक्त, अनन्त गुणशक्ति सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा। इसके साथ श्री वेंकटांचल का परमाद्भुत माहात्म्य दम्पति को सुनाकर भगवान वेद व्यास अंजना से वन्दित होकर विदा हो गये (स्कन्द वैष्णव खण्ड ३९ अध्याय)।

सम्भाग-समीक्षा : मारुति-जन्म-प्रसंग की ऐसी सुव्यवस्थित और रोचक कथा अन्यत्र कहीं नहीं मिलती है। अंजना की कठोर तपश्चर्या और सफलता का ऐसा मार्मिक चित्र अन्य किसी भी ग्रन्थ में वर्णित नहीं हुआ है। इस अध्याय के प्रधान

वक्ता-श्रोता महर्षि सूत–शौनकादि हैं। इसके पश्चात् मारुति जन्म-प्रसङ्ग का विवरण स्कन्द पुराण के अवरित खण्ड के उनहत्तरवें अध्याय में मिलता है। इसके अन्तर्गत वक्ता शिव और श्रोता उमा हैं, किन्तु प्रधानतः वक्ता महर्षि अगस्त्य और श्रोता श्री राम बताये गये हैं। इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण के उत्तर काण्ड में तथा आनन्द रामायण में प्रवक्ता अगस्त्य महर्षि हैं। स्कन्द पुराण, वाल्मीकीय रामायण तथा आनन्द रामायण की कथाओं में वैषम्य स्वल्प है! मूलतः उनकी कथाएँ एक ही हैं।

मारुतिजन्मस्थल : सर्वत्र ऋष्यमूक पर्वत को ही मारुति का जन्मस्थल बताया गया है—

तस्य भार्यांजनी नाम ऋष्यमूक गिरो तपः।

स्कन्द पुराण, भविष्य पुराण और आनन्द रामायण में वेंकटाचल, मानस पर्वत अथवा अंजन पर्वत को अंजनी तपोभूमि बताया गया है। एक मात्र वाल्मीकीय रामायण के उतराकाण्ड में इस स्थल का नाम 'सुमेरु' पर्वत बताया गया है :—

सूर्यदत्त वर स्वर्णः सुमेरुनाम पर्वतः।
यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरीनाम वै पिता॥
तस्य भार्या वभूवेष्टा ह्यजनेति परिश्रुता।
जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम्॥

यह विषय अतिशय आश्चर्यजनक है। इसी कारण कतिपय विद्वानों ने वाल्मीकीय रामायण के इस अंश को प्रक्षिप्त माना है। स्कन्दपुराण और वाल्मीकीय रामायण, इन दोनों ग्रन्थों में मारुति-जन्मोपाख्यान अयोध्या में राम-राज्याभिषेक के समय राम-राजसभा में सुनाया जाता है। किन्तु महर्षि अगस्त्य (स्कन्दपुराण) श्रीराम की विजय-श्री का अभिनन्दन करते हुए प्रधानतः हनुमान की ही स्तुति करते हैं :—

चिर जीवतु दीर्घायु र्वानरो हनुमान सदा।
अंजनी गर्भ-संभूतो रुद्रांशो धरातले॥

इस पर भगवान् श्री राम आश्चर्य प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि "हे ऋषि-श्रेष्ठ,' किस कारण आप मेरे अनुज लक्ष्मण की प्रशंसा न कर केवल हनुमान का जयगान कर

रहे हैं ? अतएव मेरे मन में अधिक जानने की उत्कंठा हो रही है। आप कृपाकर बतावें कि इस वानरोत्तम का प्रभाव-वीर्य-पराक्रमादि कैसा है :—

कीदृशः किं प्रभावो वा किं वीर्यः किं पराक्रमः ?

यह जिज्ञासा इसलिए हो रही है कि इस वानर-श्रेष्ठ के समान् वीर्यवान और ज्ञानी इस लोक में दूसरा नहीं है—

न त्वस्त सदृशो वीर्ये विद्यते भुवनत्रये ।

यद्यपि इस सन्दर्भ में ही भगवान ने भी अतीव मार्मिक स्वात्मानुभूत मारुति की प्रशंसा की है, जिसका वर्णन विशेष तो यथाक्रम आगे किया जायगा, तथापि इस समय इतना ही कहना अलम होगा कि मारुति-चरित्र प्रकट करने की कामना से भगवान ने कहा, ऋषिवर, वास्तव में लङ्का-समर-भूमि में इनके जो रोमांचकारी, विनाशक युद्ध-कौशल कार्य मैंने प्रत्यक्ष देखे हैं वह—

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वेद्य सोऽपिवा । (स्कन्द)

काल, इन्द्र, विष्णु या कुवेर आदि भी उसे कर दिखाने में सर्वथा असमर्थ हैं।

किन्तु महान आश्चर्य यह है कि सुग्रीव के परम हितैषी इस त्रिभुवन पराक्रमी महावीर ने उसके वैरी बालि को तृण की भाँति भस्म न कर डाला ? जब कि बालि से भी बढ़कर त्रैलोक्य-विजयी रावण की सारी लङ्का भस्म कर उसकी कीर्ति मिट्टी की धूल में मिला दी। सम्भव है, उस समय मारुति को अपने वास्तविक बल का ज्ञान न रहा हो ? अतः इस आशंका को भी आप निवारण करने की कृपा करेंगे। अतः यहाँ बाल्मीकि-वर्णित 'मारुति-जन्म' कथा का एक साथ उल्लेख समुचित प्रतीत होता है। यहाँ सामान्य-विशेष से विभिन्नता का संकेत कर दिया जायगा।

स्कन्द बाल्मीकि में मारुति जन्म चरित्र

बाल्मीकि विशेष : महाऋषि अगस्त्य बोले, हे रामभद्र; सूर्यदेव के वर-प्रसाद से स्वर्णमय सुमेरु पर्वत पर वीर वानर-राज केसरी अपनी पत्नी सती साध्वी अंजना के साथ राज्य करते थे। अनेक वर्षों बाद वायुदेव के मनः प्रसाद से स्वर्णकान्ति-

मान सूर्यरूप इस मारुति पुत्र का जन्म अंजना के गर्भ से हुआ। पुत्र जन्मोपरान्त माता कुछ फल लेने वन में गई। एकाकी नवजात शिशु मातृ-वियोग एवं भूख से व्याकुल होकर इस प्रकार रोने लगा जैसे स्कन्द अकेले सरपत में पड़े रो रहे थे। उसी समय इस बालक ने सामने (स्कन्द-साम्य) सूर्य-बिम्ब उदय होते देखा। विमुक्षित बाल-बुद्धि के कारण इसे वह एक लाल फूल सा ही दिखा। अतः उस अनुपम फल को शीघ्र लेने की भावना से जब हृदय की अचिन्त्य शक्ति अतीव प्रबल हुई तो—

बालर्काभि मुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान ।
गृहीत कामो बालार्कं प्लवतेऽम्बर मध्यगः ॥

बाल सूर्य सम (लाल) मुख एवं वैसे ही कान्ति मूर्तिमान इस बालक ने गगन-स्थित बालार्क (उदित सूर्य) फल को लेने के लिए तुरन्त हाथ-पैर पसारे, लोल लंगूर पीछे ध्वजा रूप से उठाये अतीव हर्षोल्लास से उत्तेजित एक भयङ्कर सिंहनाद किया। हनूमान के सिंहनाद करते ही भूमण्डल के सारे स्थल सौर पर्वत कम्पायमान हो गये। उनके महातेज से दिशा-विदिशा प्रोज्वल हो उठी। नभोमण्डल में उस ज्योतिष्पिंड को गतिमान देखकर सारे देव, दानव, यक्ष और गन्धर्व लोग चकित हो गये। उनके बिस्मय की सीमा न रही। उन्होंने सोचा कि जो शैशव में ही श्रेष्ट आकाश-मार्ग का अतिक्रमण कर रहा है वह भविष्य में युवावस्था में कैसा होगा? क्योंकि—

नाप्येवं वेगवान् वायुर्गरुडो न मनस्तथा ।
यथायं वायुपुत्रस्तु क्रमतेऽम्बरमुत्तमम् ॥

हे रघुकुलेश, बालार्क शिशु के इस विनोद-क्रीड़ा के साथ वायु भी पुत्र-स्नेह वशात् अपनी तुषार-राशि से शीतल सहायता करते जा रहे थे, जिससे शिशु की श्रम एवं सूर्य ताप से संरक्षा हो। दूसरी ओर सूर्य देव भी—'कोटि संकाश प्रभाकर' बालार्क वानर शिशु को अपनी ओर तीव्र गति से आते देख नितान्त हतप्रभ हो उठे थे। इसके साथ ही उन्हें यह भी पूर्ण विश्वास हो गया था कि ये साक्षात कपि रूप में महारुद्र ही हैं जो भविष्य में रघु कुलेश श्री राम के अनन्य सेवक

एवं समस्त देवगणों के परम हितैषी होंगे। अतः बालार्क सूर्य ने बालार्क कपि के भावोन्गमन में ही अपना परम कल्याण समझा। दूसरी ओर 'राहु' ने सुदूर से एक नये अतीव प्रभावकारी प्रतिस्पर्द्धी शत्रु को सूर्य के पास आते देखा। वह क्रोध से क्षुब्ध हो उठा। अतः वह बड़े गर्व से प्रतिस्पर्द्धी को दण्ड देने ज्यों ही पास पहुँचता है त्यों ही देखता है कि उसके पहले ही बालार्क कपि ने सूर्य को अपने विशाल मुँह में ले लिया है—

अथान्योराहुरासाद्य जाग्रह सहसारविम्।

सारे विश्व में पूर्ण सूर्य ग्रहण के कारण घोर अन्धकार छा गया, पर यह अधिक समय तक नहीं, कुछ हीं क्षण रहा। कपि ने तुरन्त मुख से सूर्य को बाहर उगल भी दिया।

इसी बीच विशाल काले मुण्ड रूप सिंहिका पुत्र राहु को अपनी ओर आते देख भूखे बाल कपीश ने खीझकर उस पर अपने व्रज्र पुच्छ से ऐसा प्रहार किया कि वह हाय हाय चिल्लाता हुआ पीडा से व्यकुल होकर इन्द्रलोक को भागा। वहाँ उसने क्रोध भरे शब्दों में पुरन्दर की भर्त्सना करते हुए अपने अपमान की सारी घटना कह सुनायी। आश्चर्य चकित इन्द्र तुरन्त राहु शत्रु को दण्ड देने के लिए देव सेना के साथ अपना अमोघ व्रज्र ले, ऐरावत गजेन्द्र पर आरूढ़ हो, चल पड़े। राहु को आगे किये ससैन्य सुरेन्द्र जितनी देर में सूर्य के पास आये उतनी ही देर में बाल कपि प्रत्यागमन-पथ में आधी दूरी पार कर चुके थे। उस समय वे आकाश और भूमण्डल के मध्य में आ पहुँचे थे। वहीं दोनों में मुठभेड़ हो गई। देवगणों के साथ उसी राहु को पूर्ण युद्ध-सन्नद्ध देखते ही इनके नेत्र और लाल हो गये। उधर राहु-संकेत और इन्द्राज्ञा से जैसे ही देव सेना द्वारा भयङ्कर तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा होने जा रही थी वैसे ही कपिवर भयङ्कर सिंहनाद करते राहु सहित सारी देव सेना पर बाज पक्षी की भाँति टूट पड़े। नाद शब्द से और लांगूल-प्रहार से ही इन्द्र के सैनिकों के शस्त्रास्त्र स्वतः गिर पड़े। सारी देव सेना त्राहि-त्राहि करते बिखरे मेघ की भाँति प्राणरक्षा में भाग गई। रण में अब मानरक्षा में किसी प्रकार एकमात्र ऐरावतारूढ़ इन्द्र ही बचे रह गये थे। वे सबसे अलग पीछे खड़े थे। सैन्य-पलायन देख वे सगर्व आगे आये। कपीन्द्र द्वारा पुच्छ का पहला प्रहार गजेन्द्र पर पड़ा।

उस समय वायुनन्दन का रूप इन्द्रादि देवों से अधिक घोर प्रकाशमान् कालानल सूर्यसम हो उठा—मुहूर्त्तमभवद् घोर निंद्राद्युपरिभावस्वरम् ।

इधर हतप्रभ इन्द्र ने भी यह भलीभाँति समझ लिया कि इस अजेय महाबलशाली कपि बालक के वज्र-लाँगूल-प्रहार से मैं अब जीवित सुरलोक न जा सकूँगा। अतः चक्कर खाते गजेन्द्र को अपने पैरों के चाप से गिरते रोक, तुरन्त अपनी प्राणरक्षा के लिए इन्द्र ने क्रोधावेश से इस कपि शिशु पर तीक्ष्ण वज्रप्रहार कर दिया। वज्र का प्रहार इनके हनु (ठुड्डी) पर हुआ। ये तत्क्षण नीचे पर्वत पर गिर कर मूर्छित हो गये। वज्राघात से व्याकुल पुत्र को पर्वत पर गिरते देख तुरन्त पवन देव ने उन्हें गोद में उठा लिया और महाकाल नामक वन की एक गुहा में जा बैठे। भीतर एक विशाल शिवलिंग के पास बालक को लिटाकर, पुत्र की आरोग्य-कामना से वे शिव-स्तुति करने लगे। प्रार्थना के कुछ ही क्षणों में तथा संप्रति शिवलिंग के स्पर्श प्रभाव से वायुनन्दन स्वतः पूर्ण स्वस्थ हो उठ बैठे! जैसे जल-सिंचन से सूखा धान हरा हो जाता है उसी भाँति शिशु को प्राणवन्त तथा स्वस्थ देखते ही दौड़कर वायु ने अपनी गोद में उठा लिया। वे अतीव आनन्दोल्लास से बोले—अहो! स्पर्शनात् शिव लिङ्गस्य मम पुत्रः समुत्थितः। (स्कन्द) शिवलिङ्ग स्पर्श प्रसाद से ही मेरा पुत्र स्वस्थ हुआ सामने उपस्थित है।

इन्द्र द्वारा दुष्कृत्य वज्र प्रहार से क्षुब्ध वायु ने तुरन्त विश्व से अपना समस्त संचार समेट लिया। सभी लोकों में प्रतिष्ठित समस्त देवमानवादि प्राणियों के प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान रूप से जीवन रक्षक एकमात्र मारुत ही हैं—कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षिति पालकः। इतना ही नहीं; अपितु—'विना वायुं मृता सर्वे वायुना एव जीविताः (भविष्य पुराण ३।२४)। अतः जीवन-मरण के अधिष्ठाता मारुत के क्षोभ से चराचर प्राणियों की मरणासन्न स्थिति हो गयी। विश्व में हाहाकार मच गया। सुरेश को भी लेने के देने पड़ गये। विशिष्ट देव-ऋषीश्वरों के साथ आकुल होकर वे पितामह की शरण गये। ब्रह्मा ने भी अन्तस्थ कारणों को जानकर मदांध सुरेन्द्र की पूर्ण भर्त्सना की। विश्व शांति प्रदान की भावना से ब्रह्मा सभी के साथ कालवन में स्थित पवनदेव के पास आये। उस समय वायु शिशु को

गोद में लिए आनन्द-विभोर भगवान शिवकी संप्रार्थना में कह रहे थे—'हनुमत्केश्वरो देवो विख्यातोऽयं भविष्यति" (स्कन्द २९)। प्रभो ! आप आज से प्राणदाता हनुमत्केश्वर नाम से प्रसिद्ध होंगे। अकस्मात् सामने विशिष्ट ऋषि, देवगणों एवं इन्द्र के साथ प्रजापति ब्रह्मा को पधारे देख शिशु को चरणों पर डालते, वायु ने स्वतः ब्रह्मा का अभिवादन किया। विधि ने कपि शिशु के समस्त अङ्गों पर कर-कमलों से हाथ फेरते कल्याण की एवं वायु से समस्त विश्व प्राणियों में प्राण-दान की कामना की। ब्रह्मा की सद्भावना एवं मारुत की प्रसन्नता से समस्त विश्व में भी आनन्द छा गया।

तभी मारुत की प्रिय कामना से इन्द्रादि देव-गणों से ब्रह्मा ने कहा—"इस वायु-नन्दन के द्वारा विश्व के समस्त सद्धर्म निष्ठ, हीन-असहाय मानवों के ही नहीं, अपितु आपके भी अनेकों कार्य सफल होंगे। अतः ऐसे विश्व कल्याणकारी कपि शिशु को अपने हित के लिए एवं वायु की प्रसन्नता के लिए हम सभी को शुभाशीष तथा वरदान देना चाहिए। विधि की इस सद्भावना से प्रभावित, सबसे पहले कृतापराध से पश्चात्ताप करते—इन्द्र ने वायु-नन्दन के गले में स्वर्णमयी नील कमल की एक दिव्य माला देते हुए कहा—ठुड्डी पर लगे वज्र आघात के कारण आज से इस कपिश्रेष्ठ का विश्व प्रसिद्ध नाम 'हनुमान' होगा। इसका शरीर वज्रमय होगा तथा भविष्य में ये मेरी वज्रशक्ति से भी अजेय-अवध्य होंगे, यह मेरा शुभाशीष एवं वरदान है। सूर्य देव ने कहा—"मैं अपने तेज से १६ वीं (शतांश) कला प्रदान करता हूँ तथा भविष्य में यथावसर विद्या अध्ययन की कामना से आने पर मैं अपनी सारी विद्याओं से इन्हें पूर्ण वाग्मी बनाऊँगा।" वरुण ने कहा—"ये मेरे समान ही विश्व में महा-शक्तिमान, अजेय तथा अवध्य होंगे, तथा मेरे सभी पाश-शक्तियों एवं जल-भय से सदैव अबाध और उन्मुक्त रहेंगे।" यक्षपति कुबेर ने कहा—"यह मेरे सहित समस्त अस्त्र-शस्त्रादि से अजेय-अवध्य तथा समस्त रणस्थली में ये सदैव विषाद-श्रमोन्मुक्त रहेंगे।" यम ने कहा—"ये सदैव नीरोग, अमर तथा मेरे कालदण्ड से भी अजेय तथा भयमुक्त होंगे।" विश्वकर्मा ने कहा—"अपने द्वारा निर्मित समस्त दिव्यास्त्रों से अवध्य, अजेय होने का तथा चिरंजीवित्व का वर दिया।" विश्वामित्र ने "अम्लान पंकजामाला" कभी शुष्क न होने वाली कमल-माला प्रदान की।

पितामह ब्रह्मा ने अतीव हर्ष से कहा—

अभित्राणां भयकरो मित्राणां भयङ्करः ।
अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः ॥

हे वायो, तुम्हारा यह पुत्र मारुति दुष्टों के लिए भयङ्कर दण्डदाता, साधु, मित्र, भक्त जनों का प्राण-रक्षक, अभय, सुखशांति प्रदायक होगा। इसके अतिरिक्त दीर्घायु, महात्मा, अव्याहत गतिवान, कामरूपधारी, कामचारी, 'वानराणामधीष', विश्व प्रसिद्ध कीर्तिमान तथा मेरे समस्त ब्रह्म शस्त्रास्त्र-दण्डपाशापादि से निर्भय रहेगा। इन समस्त शक्ति गुणों के साथ यह भविष्य में—रघुकुलावतंश परब्रह्म भगवान श्री राम चन्द्र जी का अनन्य भक्त तथा चरणानुरागी होगा। उसी समय समस्त देवगणों के सम्मुख—लिंगेन च वरो दत्तो देवाणां सन्निधौतदा। (स्कन्द) लिंग से सम्प्रति अप्रकट भगवान शिव दिव्य सुधामयी वाणी से बोले —वायो ! ब्रह्मा के समान मेरे शुभाशीष हैं यह बालक मेरी अग्नि-नेत्र ज्वाला से अवध्य रहेगा। इसके अतिरिक्त विशेष कथन यह है कि जन्मजात अनन्त दिव्य शक्ति एवं देवगणों द्वारा दिये गये सारे वर संप्रति चार पाँच चर्ष की अवस्था में ऋषि-शाप वशात यह कपि शार्दूल स्वतः भूल जायेगा। भगवान श्री राम के द्वारा रावण वध-लीला साहाय्य में जब कार्य-कारण वशात् किसी के द्वारा वास्तविक बल पुनः स्मरण दिलाया जायगा तभी यह सत्य स्वरूप धारण कर लेगा। रावण वध पर भगवान श्री राघवेन्द्र की अनुमति एवं विभीषण की प्रार्थना से मेरे लिंग की जब यहाँ पर स्थापना करेगा उस समय मैं इसके 'हनुमत्केश्वर' नाम से इस भूतल पर आकर त्रिलोक के समस्त भावुक जनों से पूजित प्रसिद्ध होऊंगा।

बाल-लीला—सारे देवों और ऋषियों के विदा होने पर परम आनन्दित पवन देव वहाँ से पुत्र को गोद में उठा लाये। उन्होंने सारी कथा सुनाते हुए शिशु को अंजना की गोद में सौंप दिया। भूख से रोते अपने लाड़ले लाल को पाकर माता अंजना भी आनन्द से स्तन दुग्ध पान कराने लगी। वायुदेव के विदा होने के बाद से मातृ-पितृ स्नेह से लालित वायुनन्दन क्रमशः चंचल वानरी क्रीड़ा करने लगे। क्रीड़ा प्रसंग में ही वे पेड़ों पर कूदते, उन्हें आकाश में उखाड़ फेंकते, बड़े-बड़े विशाल

पर्वत शिखरों को मुष्टि प्रहार से तोड़कर चूर कर डालते तथा इसी प्रकार के नित्य नये उपद्रव करते रहते थे। जब कभी ये आस-पास के शांत, निर्भय, तपोरत ऋषि मुनीश्वरों के आश्रम जा पहुँचते वहाँ उनके यज्ञ पत्रादि नष्ट कर देते, वल्कल वस्त्र उठा कर ले जाते, डाँटने एवं रोकने पर लोगों को भय दिखाते और काटने भी दौड़ते थे। सभी ऋषिगण केसरी वानरराज एवं अंजनी के एकमात्र लाड़ले बेटे जान, अपनी क्षमा-गुण-शीलता से इनके अपराध सहन कर लिया करते थे। ऋषियों के उपालम्भ से क्षुब्ध माता-पिता इन्हें समझाया भी करते। तथापि बाल-स्वभाव के कारण गुरुजनों के आदेश-मर्यादा की ये बराबर अवहेलना ही करते तथा अपने हठी स्वभाव से बाज न आते। क्रमशः बढ़ते हुए उत्पात से क्षुभित हो एक दिन भृगु, अंगिरा आदि प्रसिद्ध ऋषियों ने आपस में विचार कर इनकी अशांत प्रवृत्ति पर कुछ वर्षों के लिए अंकुश लगाना ही हितप्रद समझा।

अतः एक दिन पुनः आश्रम में उपद्रव करने पर—ऋषिगणों ने संबोधित करके कहा, रे कपे! प्रकृति-जनित या देवादि-प्रसादित जिस बल के आवेश से हम शांत ऋषिजनों को कष्ट दे रहे हो उन्हें तुम हमारे आदेश से दीर्घकाल तक भूल जाओगे। इस विस्मृति से मुक्ति उस दिन मिलेगी, जब कोई विशिष्ट वीर काल-कारण-वशात् तुम्हारी अमित दिव्य गुण-शक्तियों का तुम्हें स्मरण दिलावेगा। भूतपूर्व भगवान शिव संप्रति ऋषीश्वरों के इस हितप्रद अभिशाप के प्रभाव से और अपने सौम्य गुणों से शांत मूर्त हो सभी के प्रिय पात्र बन गये।

महर्षि अगस्त्य ने कहा—"श्री रामभद्र! सुग्रीव और वायुनन्दन की परस्पर बाल्यावस्था से ही अग्नि के साथ वायु की-सी प्रगाढ़ मैत्री थी। सूर्य जैसे तेजवान, प्रतापी, ऋक्षराज के मरने पर प्रजा द्वारा किष्किंधा के राज्याधिपति, वीर बाली तथा युवराज सुग्रीव बनाये गये। बाली और सुग्रीव के पारस्परिक वैर के कारण ऋषि-शाप प्रभाव से ही सुग्रीव के प्रति बाली द्वारा अनेकानेक षड्यंत्र होते देख कर भी ये सदैव मित्र-रक्षा के सिवा और कोई विशेष बल-प्रतिकार बाली के प्रति कर सकने में सर्वथा असमर्थ थे। संप्रति सुग्रीव भी मुनि शाप-रहस्य से पूर्णतया अपरिचित थे। हे रघुकुल तिलक, अन्त में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि मारुति का जन्म

और अनन्त ऐश्वर्यमय बल-पराक्रम तो आपकी ही सेवा में सुरक्षित-समर्पित था।"

ब्रह्मर्षि अगस्त्य मुनि द्वारा वायुनन्दन का परमाद्भुत दिव्य शक्ति सम्पन्न जन्म-चरित्र सुनकर राजसमाज के साथ भगवान श्री राम राघवेन्द्र अतीव प्रेम भाव से परमानन्दित हो गये।

इस प्रकार स्कन्द पुराण के अवन्ति खण्ड में तथा वाल्मीकि रामायण के उत्तर कांड के ३९ वें अध्याय में कथा के साम्य के आधार पर हनुमान की जन्म-कथा (अगस्त्य महर्षि द्वारा) वर्णित है।

जन्म विभिन्नता—वाल्मीकि के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय संभाग में—हनुमान स्वतः अपने जन्म का वर्णन करते हुए अपने पिता केसरी द्वारा प्राप्त वरदान का उल्लेख करते हैं, जिनमें केसरी ने मुनि द्रोही 'धवल' नामक दिग्गज हाथी का वध किया था। गजराज धवल नित्य ऋषि मुनीश्वरों के आश्रमों में आकर उत्पात के द्वारा उन्हें कष्ट दिया करता था। अतः ऐसे दुष्ट धवल गजराज के मुक्त होने एवं वानरराज केसरी की इस उपकार सेवा से प्रसन्न हो ऋषियों ने वानरेन्द्र को यथेप्सित वर माँगने के लिए प्रेरित किया। अतः वानरेन्द्र केसरी ने महर्षियों से मारुत-विक्रम, कामचारी तथा दिव्य गुण सम्पन्न एक पुत्र प्राप्ति का वर मांगा था। इस प्रार्थना के फलस्वरूप ही अंजना ने बाद में वायु से हनुमान को जन्म दिया (गौ० रा० ५।३ तथा प० रा० ४।५८)।

वाल्मीकीय रामायण में दो बार (अर्थात् किष्किधा कांड तथा उत्तर कांड में) हनुमज्जन्म का उल्लेख है। उत्तर कांड में महर्षि अगस्त्य द्वारा तथा किष्किन्धा कांड में—समुद्रोल्लंघन के समय मारुति के सन्मुख ऋक्षराज जाम्बवान के द्वारा उनके पूर्व बल की स्मृति के व्याज से इसका आख्यान किया गया है।

समुद्रोल्लंघन के समय सभी वानर वीर पार जाने में असमर्थ हो गये। उस समय एकमात्र मारुति की ही तटस्थता पर ऋक्षराज उन्हें पूर्व विस्मृत अनन्त दिव्य बल-शक्तियों की याद कराते उत्तेजनात्मक वाणी में बोले कि हे कपिश्रेष्ठ—

बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरि पुंगवः।
विशिष्टं सर्व भूतेषु किमात्मानं न सज्जते॥

तुम पवनदेव के मानस पुत्र होने के कारण समस्त प्राणियों में विशिष्ट बल-बुद्धि तेज विक्रम विज्ञान आदि सत्त्व गुणों के निधान होते हुए भी समुद्र पार जाने के लिए क्यों नहीं तैयार होते ? जब कि तुम्हारे राम का कार्य सम्पन्नता के लिए ही अवतार हुआ है—राम काज लगि तव अवतारा। तुम्हारे पवन तनय होने की जन्म कथा समस्त वानर वीरों के सामने मैं प्रकट सुनाता हूँ।

मारुति-जन्म-चरित्र—जाम्बवान बोले—त्रैलोक्य-सुन्दरी पुंजिकला अप्सरा, नृत्यभङ्ग-दोष-वशात् विधि-शाप से, वानरश्रेष्ठ महात्मा कुंजर की अंजना नाम से कामरूप धारिणी वानरी कन्या हुई जो वानरेन्द्र वीर केसरी की धर्म पत्नी बनी। अंजना एक बार मानवी वेष से वनाख्य पर्वत पर विहार करती हुई अन्त में पर्वत-शिखर पर शांत हो बैठी थी। अकस्मात् प्रबल वायु-संचार से उसके अङ्ग-वस्त्र उड़ चले। अपने नग्न शरीर में उसे ऐसा अनुभव हुआ कि किसी अदृश्य पुरुष ने अपने प्रबल बाहु-पाश से कस लिया है। अत्याकस्मिक इन दोनों अवस्थाओं से सम्भ्रान्त हुई—साधु चरित्रा अंजना ने कहा—"अरे ! ऐसा कौन अदृश्य दिव्य महापुरुष है जो मेरे एक पतिव्रत का नाश करने की इच्छा कर रहा है ? तभी पवन देव प्रकट पुरुष रूप हो बोले—यशस्विनी, तुम भय न करो, हमने तुम्हारा व्रत भङ्ग नहीं किया है। आज इस एकांत पर्वत-शिला पर बैठी देख, तुम्हारी अत्यधिक मानसिक पुत्र चिन्ता ने ही मुझे तुम्हारी ओर इस प्रकार आकर्षित कर दिया। वीर केसरी और मुझ में वास्तविकता से शरीर भेद मात्र के सिवा, कोई अन्तर विशेष नहीं है, कारण वे मेरे अङ्गी ही हैं। तथापि मेरे द्वारा जो तुम्हें अङ्ग-सङ्ग का अनुभव हुआ है वह व्यक्त किसी भौतिक शरीर से नहीं, अपितु वह अव्यक्त मानसी भाव से ही हुआ है। अतः इसके प्रतिफल स्वरूप मेरी यह सत्य शुभाशीष वाणी है कि—"वीर्यवान बुद्धि-सम्पन्न स्तव पुत्रो भविष्यति" मेरे दिव्य तेज से तुम महावीर्यवान् विक्रम, बुद्धि-सम्पन्न, मेरे समान अबाध तीव्र गतिमान एक पुत्र को जन्म दोगी। कपींद्र, पवनदेव के विशुद्ध भाव से प्रभावित एवं उनके द्वारा पुत्र वर प्रदान से सती अंजना प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो गई। इस प्रकार यथा समय अंजना ने गिरि-गुहा में तुम्हें जन्म दिया। इससे विश्व में केसरी वानर राज के क्षेत्रज और पवन वरदान अंश से (औरस) तुम वायुनन्दन प्रसिद्ध

हुए। बाल अवस्था से ही तुम महावन में रहने से वनचारी थे।

एक दिन प्रातःकालीन उदीयमान सूर्य को लाल फल समझ कर उसे लेने की इच्छा से तुम तुरन्त छलांग मारकर वायु वेग से तीन सौ योजन सुदूर सूर्य के पास जा पहुँचे। वहाँ सूर्य की प्रखर किरणों से भी तुम्हें किसी प्रकार का विषाद नहीं हुआ, प्रत्युत् सूर्य को तुमने विशाल मुख में ग्रास कर लिया। [इसके बाद की सारी कथा पूर्व वर्णित समान है] अतः हे महावीर, इस समय हम सब बल-वीर्य-हीनों के सामने एकमात्र तुम ही चतुर महाविक्रमी श्री राम-काज में समर्थ कपिराज हो। यहाँ सारे वीर तुम्हारे समुद्रोल्लंघन-पराक्रम को देखने के लिए आकुल हैं।

—:*:—

उत्सव सिंधु का वर्णन :

उत्सव सिंधु से संगृहीत रसिक विहारी कृत 'राम रसायन' नामक छन्दोवद्ध ग्रन्थावली में मारुति जन्म से लेकर सूर्य द्वारा विद्या ग्रहण तक काच रित्र [वाल० किं० के साम्य में] वर्णित कथा सुललित रूप में वर्णित है। इस कथा का साम्य बाल्मीकीय रामायण के किष्किंधा कांड से है। यहाँ उक्त ग्रन्थ से उपेक्षित कथांश उद्धृत किया जा रहा है। :—

कपि बलवंत केसरी नामा। तिनकी तिय अंजनी ललामा॥
वर वानरी स्व इच्छा चारी। एक दिवस सो हरषित भारी॥
करि सिंगार मानुषी रूपा। बिचरत ही गिरि शिखर अनूपा॥
नखशिख सकल अंग सुचि सोहे। तेहि लखि पवनदेव मन मोहे॥
वेग आय करि तेहि तन परसे। मनसिज अंग अंग अति सरसे॥
तिन्हहिं देख अंजनी रिसानी। बोली विलखि क्रोध मय वानी॥
देव मंदमति यह कह कीन्हों। मम सब कर्म-धर्म हरि लीन्हों॥
पवन कह्यो सुनु अंजनी बानी। तुम सुन्दरी वृथारिस ठानी॥
हौं न अधर्म कियो तुम पाहीं। पतिव्रत भंग भयो कुछ नाहीं॥

लेहु मुदित मम यह वरदाना । पैहौ सुत मो सम बलवाना ॥
पवन वचन सुनि केसरि नारी । सकुची प्रकट हिये मुद भारी ॥
भई सगर्भ अंजनी जबहीं । प्रतिदिन दुगुन तेज तनु तबहीं ॥
योंहीं गर्भ समय जब बीता । आयो कातिक मास पुनीता ॥
तिथि चतुर्दशि मङ्गल वारा । असित पक्ष दिन साँझ विचारा ॥
स्वाती नखत लगन सुभ मेषा । ग्रह बलिष्ठ सब योग विसेषा ॥
भई अंजनी तबहिं प्रसूता । प्रकट्यो सुन्दर पुत्र अभूता ॥
कंचन वर्ण सुअङ्ग अनूपा । अति चञ्चल तनु पुष्ट सुरूपा ॥
लखि अंजनी पुत्र हरषानी । जानी सत्य पवन की बानी ॥
प्रसव अन्त लगि छुधा बिसेखी । अन्धकार कानन निसि देखी ॥
बिनु जल-फल सब रैन बिताई । प्रात होत आतुर उठि धाई ॥
सुतहि छोड़ि तहँ जाय उताला । खोजत फिरत अहार बिहाला ॥
सरस पत्र फल फूल सुहाये । इत उत धाय उदर भरि खाये ॥
इत बिनु मातु बाल अति रोवै । देर भयो बहु छुधा बिगोवै ॥
ताछिन प्रगट भए रवि आई । अरुन वर्तुलाकार सुहाई ॥
अंजनि बाल छुधातुर भारी । लखे पक्व फल सरिस तमारी ॥
तड़कि तड़ाक भानु गहि लीन्हों । बाल बुद्धि भ्रम कछु ना चीन्हों ॥
जा दिन रविहि गह्यो कपि काला । ताछिन आयो ग्रहन को काला ॥
आयो भानु निकट द्रुत राहू । सो लखि भयो क्रोध उर दाहू ॥
दै लखि पवन बाल-बल भारी । गयो इन्द्र पहिं बेगि सुरारी ॥
कहेउ सुरेसहिं बचन रिसाई । अब विरचि नव सृष्टि बनाई ॥
दूजो राहु आज रवि तोप्यो । मेरो सकल पराक्रम लोप्यो ॥
सुनि सुरपति लै वज्र कराला । चढ़ि ऐरावत चले उताला ॥
राहु संग तहँ वासव आये । जहँ केसरी सुवन रवि छाये ॥
दूरहि ते लखि राहुहिं स्यामा । कपि तेहि फल जान्यो अभिरामा ॥
तजि रवि गह्यो राहु को धाई । सो लखि कै धाये सुरराई ॥

आवत उज्ज्वल गज कपि देख्यो । ऐरावतहि शुभ्र फल लेख्यो ॥
तजि सिंहिका सुतहिं तेहि ठायें । सुरपति गज गहिबे को धाये ॥
आवत देखि बाल कपि योधा । मार्यो वज्र इन्द्र करि क्रोधा ॥
वज्र घात पीड़ित कपि बाला । गिरि पर आय गिरे बेहाला ॥
लागत सुरपति कुलिस अभंगा । किंचित भयो वाम हनु भंगा ॥

पवन देखि निज सुत विकल, अङ्क उठायो धाय ॥
ले बैठे तेहि कुपित ह्वै, गिरि कन्दर दुरि जाय ॥
मरुत कोप ते जीव सब, विकल भए तिंहु लोक ।
प्रलय काल आयो अबै, यों अकुलात ससोक ॥
सब इन्द्रिय मग-रुद्ध में, नेकु न पवन प्रचार ।
प्रान कण्ठ गत छिनक में, भये जीवगन झार ॥
सकल सुरासुर विकल ह्वै, आरत करत पुकार ।
लखि कलेस सब अमर जुत, बेगि चले करतार ॥

विधि आगमन—जहाँ पवन निज पुत्र युत, रहे कन्दरा धाम ।
सिव विरंचि आदिक सकल, सुर आये तेहि ठाम ॥
पवन देख सुर मण्डली, उठे सुतहि लै अङ्क ।
करि प्रनाम विधि चरण पै, पुत्रहिं धरे निसंक ॥
तब विधि करि कै कृपा, कर फेर्यो सिसु माथ ।
पुत्र भयो प्रमुदित पवन, जान्यो जनम सनाथ ॥
अति प्रसन्न ह्वै वायु तब, कियो लोक संचार ।
विरुज भये सब जीवगन, लह्यो अनन्द अपार ॥
मुदित देव गन जीव सब, जाने विगत कलेस ।
स्वारथ परमारथ भयउ, बोले वचन सुदेस ॥
सकल देव मिलि दीजिए, मारुति हित वरदान ।
तब मघवा बोले मुदित, संयुत अर्थ प्रमान ॥

इन्द्र—बंक भयो हनु वज्रते, याते कपि सिसु नाम ।

होय ख्यात हनुमान अब, होय तेज बल धाम ॥
पुनि प्रसन्न मम दत्त वर, यह हनुमत हित जान।
अमर सदा मम वज्रते, रहै अमित बलवान ॥

सूर्य—पुनि दिनेस निज कलन ते, दीन्हे कल सत अंस।
परम प्रकासित अंग भो, हनुमत कपि अवतंस ॥
कह्यो भानु पुनि होय जब, सत वर्ष हनुमान।
तब हम दैहैं दूनहिं वर, सकल सुविद्या दान ॥

यम—यम बोले हरषाय नित निरुज रहै बलवंत।
पुनि अवध्य मम दण्डते, विहरै सकल दिगन्त ॥

वरुण—प्रमुदित वर दीन्हे वरुण, हनुमन्तहि सुखदाय।
जल-अरु मम पाशते, रहै अवध्य सदाय ॥

धनपति—पुनि हनुमन्तहि विसद वर, दीन्हे मुदित कुबेर।
चण्ड-गदा ते अमर ह्वै, कपि बिचरै चहुँ ओर ॥

विश्वकर्मा—हरषि विश्वकर्मा कह्यो, ममकृत जिते हथियार।
अमर रहे तिन सबनि ते, संतत पवन कुमार ॥

शिव—है त्रिशूल आदिक विविध, जो मम विविध सुभारि।
तिन सब ते कपि अमर हो; वर दीन्हे त्रिपुरारि ॥

ब्रह्मा—वर विरंचि दीन्हे हरषि, ब्रह्म दण्ड सब जोय।
हनुमान तिन सि सदा, अजित अवध्य सुहोय ॥
पुनि विधि बाल पवन ऽ़नि, तब सुत होय अजेय।
चिरजीवी बलवंत सुचि, सदा रहै मति श्रेय ॥
मित्र पाल होवै अमित, कामरूप रिपुसाल।
वर त्रिलोक गामी प्रबल, पूज्य अंजनीलाल ॥
एहि विधि सुर वर दै कपिहिं, गये सु निज निजधाम।
वन विचरत निःसंक नित, पवन पुत्र अभिराम ॥

दै वर दान गए सुर जब से। प्रति दिन बढ़ै तेज बल तब से ॥
हनुमान निज इच्छा चारी। विचरत चहुँ नित विपिन मझारी ॥
कपि चंचल पुनि बाल निसंका। वर प्रभाव अतुलित बल बंका ॥
जाय नित्य सिसु केलि कराही। सो लखि वनचर सकल डराहीं ॥
तरु उखारि नभ ओर चलावै। धरि हलाइ गिरि शिखर ढहावै ॥
कूदै किलकि चढ़ै द्रुम जाई। मंथै सर-सरिता जल धाई ॥
जाइ मुनिन के आश्रम माहीं। लै वल्कल मृग-चर्म पराहीं ॥
काहू परन कुटी झकझोरै। काहू नीर पात्र गहिं ढोरै ॥
काहू कै पादुका बहावै। काहू के फल-फूल नसावै ॥
रिषि कोउ जो रंचउ डाटै। तो तेहि धाय कोप करि काटै ॥
भय वस रहैं सकल चुप साधी। पवन सुवन नित करै उपाधी ॥
विकल भये जब ऋषि गन वासी। भृगु-अंगिरा आदि तप राशी ॥
ते त्रिकाल दरसी मुनि ज्ञानी। ज्ञान दृष्टि कपि वर गति जानी ॥
रहे शांत कछु दिवस बहोरी। हनुमान निज बानि न छोरी ॥
भये विकल सबहीं अति जबहीं। दीनो साप कोप कर तबहीं ॥
पवन पुत्र बल विस्मृत रहई। संतत सरल चित्त निरबहई ॥
जब कोऊ बल सुरति करावै। तबहि वीरता कपि तनु आवै ॥
इमि सापित ह्वै पवन कुमारा। भूले निज बल सकल अपारा ॥
शांत रूप विचरै वन माहीं। कबहुँ न कुछ मुनि विघन कराहीं ॥
एहि विधि सात वरष वय बीती। सदा रहत शाखा मृग रीती ॥
आठम वर्ष प्रवेश विचारी। बोले पवन समय अनुहारी ॥
जाहु सुवन दिनकर के पासा। करहु सकल विद्या अभ्यासा ॥
जबहिं सुरन तुम कहँ वर दीन्हा। तबहीं यह दिनेस पन कीन्हा ॥
हम वर विद्या सकल पढ़इहैं। वेद शास्त्र गुन विविध सिखइहैं ॥
सुनि पितु वचन मौन हनुमाना। सो लखि पवन आचरज माना ॥
बोले मरुत सुवैन बहोरी। जान्यो बाल केलि मोति भोरी ॥

पुत्र सुबाल बुद्धि परिहरहू । विक्रम बल-विद्या हिय धरहू ॥
जदपि देव वर विदित प्रभावा । बाल केलि कल्पित तुम पावा ॥
तदपि परम उत्तम यह बाता । रवि ढिग जाइ पढ़हु तुम ताता ॥
ह्वै सुत मम मोसम बलवाना । रवि ढिग गमन सुनत चुप ठाना ॥
केलि कलोल वीरता करहू । रवि तम गज गहिवे नभ चरहू ॥
विद्या पढ़न हेतु हरि पासा । जात होत हिय अधिक हिरासा ॥
सुनि पितु वचन वीरता बाढ़ी । भई पुच्छ रोमावलि ठाढ़ी ॥
नभ दिसि देखि हरषि हनुमाना । तमकि गगन कूदे बलवाना ॥
परे जाइ उदयाचल वंका । तेज पुंज कपि निपट निसंका ॥
औचट देखि दिनेस डराने । पुनि धरि धीर भानु पहिचाने ॥
धाय गहे रवि पद हनुमंता । दिनमनि आसिष दीन अनंता ॥
पुनि कर जोरि केसरी बारे । मृदुल नम्र वर वचन उचारे ॥
पितु सिख दै प्रभु पास पठायो । गुरु पदरज सेवन मैं आयो ॥
लखि सेवक प्रभु कृपा करीजै । विद्या दान मुदित मोहि दीजै ॥
सुनि कपि वचन प्रसन्न तमारी । एवमस्तु वर गिरा उचारी ॥
दिनपति बोले वचन बहोरी । वायु पुत्र तव वय अति थोरी ।
मम रथ कबहुं रहत थिर नाहीं । अमित वेग बर बाजि चलाहीं ॥
चलत संग अति ही श्रम पैहो । केहि विधि विद्या हित चित दैहो ॥

भानु वचन सुनि वीर, नाइ सीस कर जोरि दुहुं ।
बोले हरषि सुधीर, नाथ कही सो सत्य सब ॥
मो लघुमति अनुसार, मैं निज हिय दृढ़ कीन्ह यह ।
गुरु की कृपा अपार, अगम होय सो सुगम अति ॥
मोहिं दास दृढ़ जानि, नाथ साथ निज लीजिये ।
वर-विद्या शुभ दानि, कृपा दृष्टि करि दीजिये ॥
योंही बहु बतरात, हनू गये अति दूर लौं ।
पिछले पगन चलात, गगन गये रवि संग ही ॥

सो गति देख दिनेस, कृपा सहिस अति मुदित ह्वै।
लगे करन उपदेस, वेद शास्त्र विद्या विसद ॥
रवि रथ आगे वीर, चलत पाछिले पगन ते।
विद्या पढ़ी सुधीर, अलप दिवस मैं पवन सुत ॥
सामादिक चतुवेद, व्याकरनादिक सास्त्र षट।
संयुत सकल विभेद, पढ़ि रवि ते कपि निपुन भे।
विद्या विसद अनूप, तेज धाम कपि को दियो।
सुमति, तेज, बल, रूप, लखि सब देव सराहहीं ॥
पुनि आदित्य दयाल, कह्यो जाहु कपि निज भवन।
वर विद्या सब काल, अनम्यास जनि राखियो ॥
गुरु आयसु धरि माथ, चरन वंदि बुधिवन्त कपि।
कही जोरि जुग हाथ, नीति प्रीति संकोच युत ॥
नाथ कृपा करि मोहिं दियो, विद्या विमल अपार।
गुरु ते उरिन न होइ सकौं, सेवौं जन्म हजार ॥
पै मरजाद प्रमान यह, प्रभुहि विदित सब सोय।
बिन दीन्हें गुरु दक्षिणा, विद्या सफल न होय ॥
याते प्रभु करिकै कृपा, जथाशक्ति अनुमान।
लीजै कछु गुरु-दक्षिणा, निज सेवक अनुमान ॥
पवन तनय के बचन सुनि, बोले तेज निकेत।
सत्य धर्म मर्याद यह, भाषी सुमति सचेत ॥
निरखि भक्ति तव पवन सुत, जो हम करहिं रजाय।
देहु यही गुरु दक्षिणा, मन हित अति हुलसाय ॥
अंशुमान - हनुमान प्रति, बोले सहित सनेहु।
वीर धीर गुरु दक्षिणा, प्रीति सहित यह देहु ॥

दुष्ट दल दण्डिबे को रहियो उदंड चण्ड,
मण्डित ह्वै कीजो बल खण्डित सुरारी को।

सकल दराज - साज साज राम - काज,
संयुत समाजसुख दीजो धनुधारी को ॥
तुम हनुमान बलवान वर बुद्धिमान,
हूजो - अनुरक्त भक्त जगत रखवारी को।
देस परदेस में हमेस सब भाँति घनो,
राखियौ आनन्द सदा 'रसिक विहारी' को ॥
अस कहि बोले दिनराई। परम प्रीति संयुक्त हुलसाई ॥
यह सिख दृढ़ तुम गहौ हमारी। गुरु दक्षिना बस यही हमारी ॥
सुनि यह गुरु आएसु हनुमंता। दृढ़ करि हिय धरि लई तुरंता ॥
निरखि दिवाकर कपि धुर धर्मा। प्रमुदित ह्वै वर दियो सुधर्मा ॥
फलित होय सब विद्या कीसा। पूरन कृपा करइ जगदीसा ॥
जे जन तुव सेवा चित करिहैं। ते सब निज इच्छा फल पइहैं ॥
कपि सिर पर आसिष कर फेरे। कृपा सहित सिख दै बहुतेरे ॥
विदा किए हनुमन्तहिं ईसा। चले हरषि गुरु पद धरि सीसा ॥
कूदि कुधर अस्ताचल पाहीं। नभ मारग ह्वै कै छन माहीं ॥
आय दुहूँ पद माथ नवाये। पितु जननी सुत लखि सुख पाये ॥
विचरत सुख जुत इच्छाचारी। लोक तिहूँ मुद मंङ्गलकारी ॥
रामचन्द्र की दरसन आसा। लागि रही गुरु-वच विस्वासा ॥
उत्सवसिंधु ग्रन्थ के माहीं। है सो लिख्यो सत्य एहि ठाँई ॥

—:*:—

बृहज्ज्योतिषार्णव में हनुमज्जन्म-रहस्य

वानरराज वीर केसरी की भार्या अंजनी ने पुत्र-कामना से ऋष्यमूक पर्वत पर सात हजार वर्ष भगवान शिव की घोर उपासना की। तपस्या से प्रसन्न प्रकट चन्द्र-शेखर द्वारा यथेप्सित वर माँगने की आज्ञा पर अंजनी ने प्रार्थना के साथ यशस्वी, महाभक्त, वज्रदेही, महाविक्रमी पुत्र प्राप्ति की उनसे याचना की। संतुष्ट उमाकांत

मनोभिलषित वर देते हुए बोले—सुभगे, "एकादश महारुद्रो तव पुत्रो भविष्यति"। मैं स्वयं एकादश महारुद्र रूप में तुम्हारा पुत्र होकर जन्म लूँगा। किन्तु अब तुम मेरी आज्ञा से हस्तांजलि पसारे, आँख बन्दकर मेरे ध्यान में स्थित यहीं बैठी रहो। जिससे कुछ ही समय बाद पवनदेव तुम्हारी अंजलि में प्रसाद पायस देकर अन्तर्धान हो जायेंगे। उस प्रसाद को खा लेने पर यथासमय तुम्हें पुत्र होगा। यह आदेश दे वे अन्तर्धान हो गये।

इसी अवधि में अयोध्या में पुत्र्येष्टि-यज्ञ में अग्नि नारायण द्वारा प्राप्त, पायस-चरु राजा दशरथ ने महारानी कौशल्या को प्रदान कर, जब कैकेयी के हाथ पर रखा उसी समय अकस्मात एक चील पक्षिणी कैकेयी के करावस्थित-चरु भाग से झपट कर आधा भाग लेकर आकाश में उड़ गई। शिव प्रेरित वायु अपने प्रबल संचार से उस पायस को चील के पंजे से छुड़ा, स्वयं ले जाकर अंजनी की अंजलि में डाल देते हैं। उसे वह शिव प्रसाद मानकर खा जाती है। जिसके फल स्वरूप नवम मास—"चैत्रे मासि सिते पक्षे पौर्णिमास्यां कुजेऽह्नि" [स्कंद कथित] मेष संक्रांत सूर्य के— चैत्र शुक्ल पूर्णिमा मंगलवार को अरुणोदय पूर्व रात्रि समय में [महारुद्र, अग्नि, पवन, त्रिस्वरूपांश] मौंजी, मेखला, कोपीन, यज्ञोपवीत आदि धारण किए, लाल मूँगे के समान शरीर की दिव्य कान्ति युक्त, मुख और पुच्छ लाल, इस प्रकार वानर रूप से हनुमान हुए जो अभूत क्षुधा से आतुर थे :-

मौंजी मेखलया युक्तः कौपीन - परिधारकः।
कर्णयोः कुण्डले प्रातस्तथा यज्ञोपव्रतक्रमः॥
प्रबाल सदृशोवर्णो मुखे-पुच्छे च रक्तकः।
एवं वानर रूपेण प्रगटोऽभूत क्षुधातुरः॥

वे दशदिशाओं को देखने लगे। सद्यः जात शिशु को क्षुधातुर देख फल लेने माँ 'अन्तर्गृहे जगामाशु—शीघ्र घर के भीतर जाती है। इधर क्षुधा से रोते बालक की दृष्टि अचानक अरुणोदय सूर्य मंडल पर जा पड़ती है। उसे वह कोई सुन्दर लाल फल समझता है। वह माता के आने की भी राह नहीं देखता। चंचल बाल-भाव से हर्षित हो, सिंहनाद के साथ हाथ-पैर पसारे, पुच्छ पीठ के ऊपर उठाए वह बालक

गगन मण्डल में तुरत विजली की भाँति उछाल मार कर मनोवेग से चला गया। [इसके वाद सारा वृत्तान्त वाल्मीकि की भाँति संगठित है ।] इसमें एक विशेष बात प्राप्त होती है कि इन्द्र-वज्र-प्रहार से मूर्छित शिशु को देख; वायु क्रोध से देवताओं को संबोधन कर कहते हैं—मैं वज्रधाती इन्द्र का विनाश करूँगा। मैं समस्त विश्व के प्राणियों का जीवनाधार प्राण-वायु हूं। इस आधार से सारे विश्व के हाहाकार से संतप्त ब्रह्माशिवादि देवगणों के आगमन पर, विधि से वायु ने यह कहा कि यदि मेरा पुत्र जीवित न हो उठा तो क्षणमात्र में समस्त देवगणों का मैं नाश कर डालूँगा। इस पर भगवान विष्णु वोले—"वायो ! तुम्हें अपने पुत्र के प्रति किंचिन्मात्र भी भय न होना चाहिये। कारण, यह शिशु "पूर्ण पिंडात्समुत्पन्नस्तव पुत्रोति निर्भयः"। दशरथ कृत पुत्रेष्टि-यज्ञ में अग्निनारायण प्रदत्त पूर्ण चरु पिंड [श्री विष्णु अंश] से उत्पन्न होने से भय रहित है। यह ब्रह्म कल्प पर्यन्त चिरंजीवी होगा। यह कथन विशेष है।

आनन्द रामायण—आनन्द रामायण के सारकांड के तीसरे सर्ग में वर्णित हनुमज्जन्म एकमात्र पूर्व वर्णित दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ के पायस पिण्ड के प्रसंग के कारण ही भिन्न है। इसके अन्तर्गत विशेषता में चील पक्षिणी के द्वारा पायस अपहरण का कारण दिया गया है। अर्थात् यह पूर्व सुवर्चला नामक अप्सरा ब्रह्म सभा में किंचित नृत्य-भंग दोष से विधिशाप द्वारा इस पक्षी रूप में अवतरित हुई। किन्तु इसकी विनम्र प्रार्थना से सन्तुष्ट हो विधि ने शापोद्धार का उपाय बताते हुए कहा—जब तू कैकैयी के हाथ से पायस-भाग छीनकर, अंजना पर्वत पर, संप्रति अंजलि में डालेगी तभी तू शापोन्मुक्त हो अपने सत्य स्वरूप में पुनः ब्रह्मलोक आ जाएगी ! अंतः वह अपना कार्य यथाविधि सम्पन्न कर विधिलोक चली गई।

पुनः आगे [१३ वें सर्ग में] कुछ विशेषता से यह वर्णन प्राप्त होता है कि सुविख्यात केसरी वनराज की अंजना और मार्जारास्या नाम से दो भार्याएँ थीं। अंजना जिस समय उस पर्वत-शिखर पर अकेली वैठी थी—तभी आकाश से कैकेयी के हाथ से अपहृत कर लाया पायस-पिण्ड पक्षी-तुण्ड से अंजना के हाथ में आ गिरा, जिसे उसने तुरन्त उठाकर खा लिया। उसी समय वहाँ मार्जारास्या भी घूमती हुई आ जाती है। स्वामी की अनुपस्थिति में ही ये दोनों परस्पर आमोद क्रीड़ा करने लगीं। अकस्मात

प्रवल वायु संचार से दोनों के ही अंग-वस्त्र शरीर से उड़ जाने से वे नग्न हो गईं। इस दशा में ही परम सौंदर्यमय रूप से वायुदेव प्रगट हो अपनी सुधावाणी से विमोहित कर दोनों के ही साथ यथाक्रम रति-क्रीड़ा करते हैं। इसके फलस्वरूव अंजना ने चैत्र शुक्ल एकादशी को मघा नक्षत्र में शत्रुसूदन हनुमान का जन्म दिया। इसी के साथ कल्पभेद से चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को भी जन्म माना गया है। इसमें भी हनुमान का पक्व फल रूप सूर्य को लेने आकाश में जाने से लेकर वायु द्वारा विश्व पर प्राणावरोध तक की सारी कथा है। यहाँ एकाकी ब्रह्मा ही आकर—प्रार्थना द्वारा वायु को प्रसन्न कर, विश्व में शांति स्थापन करते हैं। साथ ही मारुति के अङ्गों पर अपने कर-कमलों से स्पर्श कर स्वस्थता के साथ विधि उन्हें यह वरदान देते हैं :—

मारुत नन्दन ! भविष्यसि त्वममरो वज्र देहो वरान् मम।
ते कुण्ठिता गतिर्माऽस्तु कुत्राप्यंजनि सम्भवः॥
भविष्यसि हरौ भक्तिस्तव नित्यमनुत्तम।
त्वं विष्णोरपि साहाय्यं करिष्यसि वरान्मम॥

इस प्रकार शुभाशीष दे, पवन से अभिनंदित ब्रह्मा अपने लोक की ओर प्रस्थान करते हैं।

भविष्य पुराण—'भविष्य पुराण' में देवगुरु द्वारा कथित मानस के उत्तर पर्वत पर [महर्षि गौतम कन्या] वानरराज केसरी की स्त्री अंजना पुत्र-प्राप्ति की कामना से भगवान शिव की घोर आराधना करती है। इससे प्रसन्न हो भगवान शिव अंजना को पुत्र वरदान देकर, अपना रौद्र तेज केसरी के मुख में डाल देते हैं। शक्ति स्मरातुर वीर केसरी अपनी प्रिया अंजना के साथ उपभोग में जब अनुरक्त होता है। तभी वायु भी केसरी के शरीर में आवेषित सहयोग द्वारा पुत्रआकांक्षिता अंजना के साथ बारह वर्ष तक रमणानन्द प्राप्त करता है। यथावसर गर्भवती अंजना वर्ष की अवधि में वानर-मुखी भगवान रुद्र-मारुति–हनुमान पुत्र को जन्म देती है। किन्तु अकस्मात कुरूप पुत्र को देख वह घृणा से उसे पहाड़ से नीचे फेंक देती है :—प्रक्षिप्तोऽभूद गिरेरधः। किन्तु महा-रुद्र कपि नीचे भूतल पर गिरने के पूर्व ही आघात रहित अवस्था में सामने अरुणोदय कालीन सूर्य को देख लेते हैं। अतः अधर से ही वे सूर्य को लेने के लिए अपनी ऊर्ध्व-गति आकाश की ओर कर विद्युत की भाँति पल मात्र में दिनकर मण्डल के पास जा पहुँचते हैं। आश्चर्य चकित देवगणों के सामने ही सूर्य-मण्डल को विशाल मुख में

ग्रसित देख सुरेश देवलोक से दौड़ कर हनुमान पर वज्र-प्रहार करते हैं। वज्र स्वतः कपि वज्र तनु के आघात से कुण्ठित हो नीचे गिर पड़ता है, जिससे हतप्रभ इन्द्र अपनी प्राण-रक्षा में देवलोक की ओर भाग जाते हैं। नितान्त असहाय सूर्य-बलवान कपि शिशु से अपने को मुक्त न होते देख अतीव भय से जोरों से पुनः "त्राहिमां-त्राहिमां" पुकारने लगते हैं।

इस दीन आर्त पुकार से अत्याकर्षित त्रैलोक्य–विजयी राक्षसेन्द्र रावण स्वतः दौड़कर वहाँ आता है। बालार्क की दैन्य दशा देख, मुक्ति के लिए तुरन्त बालार्क रुद्र-कपि की पूँछ पकड़ कर उन पर वह अपनी मुष्टिका से जैसे ही प्रहार आरम्भ करता है तभी केसरी नन्दन रवि को छोड़ सिंहनाद से तुरन्त राक्षसराज के साथ भिड़ जाते हैं। सर्वप्रथम दोनों में घोर मल्लयुद्ध होता है, फिर वायुनन्दन के वज्रमय पुच्छ एवं मुष्टि प्रहार से तो श्रीमान रावण को लेने के देने पड़ते हैं। एक वर्ष तक उस महाघोर युद्ध-चक्र में मार खाते-खाते रावण घबड़ा गया। पलायन की भावना पर भी असहाय असमर्थ होने पर उसने जीवन-रक्षा के लिए अपने पिता का स्मरण और आह्वान किया। उसी समय वहाँ भगवान विश्रवा ऋषि उपस्थित हुए। वेदमय स्तोत्र द्वारा उन्होंने विनम्र मधुवाणी से अलौकिक देव की प्रार्थना की।

इस संस्तुति से प्रसन्न हो भगवान रुद्र कपीश ने विश्व को रुलानेवाले रावण को रुदनशील दशा में त्याग दिया। इसके बाद वे पम्पासर के तीर पर आस्थाणुभूत रूप से स्थिर हो गये। 'स्थाणु भूतः स्थिर स्तव-स्थाणुर्नाम ततो भवेत्। इसलिए वे स्थाणु नाम से प्रख्यात हुए तथा राक्षसेन्द्र रावण के मुष्टि-प्रहार से किंचित भी भयभीत न होने के कारण हनुमान नाम से विश्वप्रसिद्ध हुए। स्थाणुभूत तपस्थ स्थिति से प्रसन्न हो पितामह भगवान विधि वहाँ पधार कर विनम्र वाणी से बोले—

रुद्र! वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाष्टाविंशत्तमेयुगे॥
त्रेतायाः पूर्वं चरणे रामस्साक्षाद् भविष्यति।
तस्य भक्तिं संप्राप्य कृतकृत्यो भविष्यसि॥

आगामी वैवस्वत मन्वन्तर के २८ वें युगान्तर में त्रेता के प्रथम चरण में तुम्हें भगवान श्रीराम का साक्षात्कार होगा। उनके श्रीचरणों में तुम्हारी भक्ति होगी तथा उस

भक्ति से तुम धन्य होगे। इतना कह उन्होंने अपनी प्रसन्नता से रुद्र कपि को भाद्र-प्रकाशक चन्द्र दिया और रावण को परम सुन्दरी रम्यप्रिया मन्दोदरी दी। इस प्रकार शुभाशीष दे पितामह पम्पासुर से अपने लोक को चले गये। विचार-समीक्षा से ज्ञात होता है कि भविष्य पुराण के आधार पर हनुमान का प्राकट्य कृत युग में प्रतीत होता है। यह घटना रामावतार से लाखों वर्ष पूर्व जाम्बवन्त के समकालीन ठहरती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि रावण को मन्दोदरी की प्राप्ति, मरुति युद्ध के वाद ही हुई है। यह उपरोक्त विधि शब्दों से ही प्रतीत होता है।

शिव पुराण—'शिव पुराण' [शतरुद्र सं०-३, अ०-३०] में नन्दीश्वर द्वारा योगेश्वर सनत कुमारों से महारुद्र हनुमान के अवतार का रहस्य इस प्रकार वर्णित है।

भगवान महारुद्र की विनम्र प्रार्थना एवं प्रेमवशात भगवान श्री विष्णु ने उन्हें वनस्थली में अपने मोहिनी रूप का दर्शन कराया। वास्तव में उस सौंदर्यमयी भूमि मे मनमोहिनी स्त्री रूप से स्वच्छन्द वनस्थ पृथ्वी ने भगवान महारुद्र को अपनी ओर परमाकर्षित कर ही लिया। विश्व मनमोहिनी माया ने उन्हें अपने दिव्य काम वाण से अपहृत मन की अवस्था से अपने पीछे दौड़ा लिया। वास्तव में समस्त देव-दानव और ऋषि मुनिका समाज किसी न किसी के पीछे अनन्त भूत-भविष्य-वर्तमान काल में दौड़ ही तो रहा है। ज्ञानी मानव समाज माया के तथा भक्त भगवान के पीछे दौड़ते हैं, इतना ही नहीं, कभी-कभी तो भागते हुए भक्त के पीछे भगवान भी दौड़ते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। यहाँ तो स्वयं श्री हरि की, विश्वमोहिनी रूप में, एक रहस्यमयी लीला ही है। महारुद्र किसी सांसारिक स्त्री के पीछे नहीं, अपितु विश्वमोहिनी रूप श्री हरि के पीछे ही दिव्य काम भाव से आकर्षित हुए।

कबहुं निकट पुनि दूरि पराई। कबहुंक प्रगटै कबहुँ छपाई॥

मोहिनी लीला में छके भगवान महारुद्र उन्हें पकड़ने के लिए जब अतीव आतुर हुए उसी समय अकस्मात श्रीभगवद् लीला की सत्यता के ज्ञान प्रकाश पर भगवान रुद्र ने भविष्य में श्रीराम सेवा कार्य की भावना से स्वतः अपना वीर्य-तेज-पात किया। उसे संप्रति मानसी-प्रेरणा से सप्तर्षि ने तत्क्षण एक वट पत्र पर रोपण कर उसे सुरक्षित कर लिया।

पुनः उपर्युक्त समय आने पर पुत्र-कामना से शिव की घोर तपस्या में बैठी, महर्षि गौतम की कन्या एवं वानरराज केसरी की पत्नी अंजना के कान में इस अमोघ शिव तेज को सप्तर्षि ने डाल दिया। फलतः राम-भक्ति की भावना से अंजना के कान द्वारा ही यथासमय भगवान महारुद्र महाबल पराक्रमी कपि रूप से स्वयंभू प्रकटे, जो विश्व में हनुमान नाम से प्रसिद्ध हुए।

दक्षिण महाराष्ट्र प्रान्त का लोकमत—दक्षिण में जनगण हनुमान को रुद्र-शिवा का [स्कंद की भाँति] पुत्र मानते हैं। इसका सूत्राधार इस प्रकार आरम्भ होता है। किसी समय परमेश्वर शिव एवं परमेश्वरी शिवा दोनों ही परमानन्दोल्लसित हो विशिष्ट देवगणों को अपना सम्मिलित तांडव नृत्य देखने के लिए आमंत्रित करते हैं। अतिथि-गणों के आगमनके समय ही अकस्मात परमेश्वरी पार्वती ने कुछ दूर विपिनस्थली में वानर-वानरी युगल जोड़ी को क्रीड़ा करते देखा, जिससे प्रभावित हो उन्होंने प्रस्तुत तांडव नृत्य स्थगित कर, प्रथम एकान्त में वानर रूप से ही परस्पर आनन्द-क्रीड़ा करने की प्रार्थना की। प्रिया की भावना से प्रेरित भगवान देव मण्डल से तुरन्त अन्तर्धान हो सुदूर एकान्त वनस्थली में जाकर वानर वानरी रूप में आमोद-प्रमोदमयी क्रीड़ा में निमग्न हो गये। इधर अत्याकस्मिक भाव से उमा-महेश्वर के अलक्षित हो जाने से सभी देवगण विस्मित हो गये। उन्होंने उनकी खोज में पवन देव को भेजा। उसी समय वानरी लीला के आनन्द में माहेश्वरी शिवा गर्भ स्थिति में आ जाती हैं। उन्हें शका हो जाती है कि भविष्य में वानर रूपी सन्तान न उत्पन्न हो जाय। इस भय से वह महादेव से विचार-विनिमय में लग जाती हैं। तभी ईश्वरेच्छा से पवनदेव का भी वहाँ आगमन हो जाता है। शिवा की प्रार्थना एवं महेश्वर की अन्तःप्रेरणा से वायु गर्भस्थित भ्रूण को निकाल कर शिवाराधना-रत अंजना के गर्भ में ले जाकर स्थित कर देते हैं। फलतः भगवान महारुद्र वानर वेष में प्रकट हो मारुति हनुमान आदि नामों से त्रैलोक्य-प्रसिद्ध होते हैं।

भावार्थ रामायण—भावार्थ रामायण में महाराष्ट्री-संत श्री एकनाथ जी ने तो दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ संदर्भ से हनुमान को साक्षात् महासमर्थ यज्ञ-पुरुष ही माना है। वे इस प्रकार कहते हैं :—

कैकेयी भागधारी प्राशित-तीस अंजनी प्राप्त।
यज्ञ विभाग तिच्या उदरांत राहिला निश्चित यज्ञपुरुष ॥
यज्ञ पुरुषा चा निज प्राण-तिसी विचरला संपूर्ण।
तेचि तिसी गर्भ धारण-वायुनन्दन हनुमन्त ॥ [४ १]
यज्ञ भाग अति बलवंत-जन्म पावला हनुमन्त।
या लागी म्हणती वायु सुत-अंजनी पुत्र वानरत्वे ॥ [४·१।६]

संत एकनाथ जी के शुभाशीर्वाद से श्री राम समर्थ स्वामी का जन्म होता है। वहीं अपनी भविष्यवाणी के कुछ दिनों बाद वे निर्वाण पद प्राप्त करते हैं।

महाराष्ट्री संत श्री समर्थ रामदास जी द्वारा कथित मारुति रूप

एक बार हनुमत जयन्ती-महोत्सव में श्री समर्थ रामदास ने अपनी महाराष्ट्रीय संकीर्तन कथा में ही परमाद्भुत भावपूर्ण व्याख्यान में कहा है—ऋष्यमूक पर्वत पर तपश्चर्यारत अंजनी की महान उपासना से प्रसन्न वृषारूढ़ महेश्वर श्री उमा के साथ प्रगट होकर उसे पुत्र-वरदान एवं कुछ काल अंजली बाँध अपने ध्यान के साथ वहीं बैठी रहने का आदेश दे सुरम्य कैलाश रूप अमर-कण्टक नर्मदाख्य में भ्रमण करने चले गये। अनेकानेक सघन विपिन स्थलों में ये घूम ही रहे थे कि अकस्मात वहाँ ही आनन्द कल्लोल करते युगल वानर-वानरी पर दृष्टि जा पड़ी। उससे प्रभावित होकर आप शिवा से कहते हैं—प्रिये, यह कैसा स्वच्छन्द जीवन है। इसी प्रकार आज हम लोग भी क्यों न इस वानरस्थली में आनन्द विनोदमयी क्रीड़ा करें? विचार समन्वित हो वानर-वानरी वेष से आप वहाँ विनोदमयी आनन्द क्रीड़ा करने लगे हैं। इस अचिन्त्य लीला में ही महेश्वर को अमोघ घोर रेत पात होने का जब योग आता है। तभी भगवान विष्णु [अग्नि नारायण] की प्रेरणा से— दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ का पायस पिण्ड अंजना को देने जा रहे वायुदेव वहाँ आ जाते हैं। वानर वेष से अपने स्खलित घोर रेत को अंजना के कान में डाल देने के लिए भगवान ने वायु को दे दिया। भगवदाज्ञानुसार वायु पहले पायस-पिंड ध्यानस्थ अंजना की अंजली में देते हैं। फिर

रुद्र महारेत उसके कान में डालते हुए ही स्वतः भी उदर में प्रवेश कर द्रवरूप हो जाते हैं। इस प्रकार परम सौभाग्यशालिनी अंजना [अग्नि-रुद्र-वायु संयुतांश] यथासमय अपने कर्ण द्वार से वानर रूप ब्रह्मचारी वेष धारी भगवान रुद्र मारुति को पर्वत गुहा में प्रकट करती है। यही अरण्य वासी हनुमान के नाम से विश्व-प्रसिद्ध हुए। श्री समर्थ ने संतविजय के अष्टादश अध्याय में इसका विवरण उपस्थित किया है।

विचार समीक्षा—श्री समर्थ द्वारा वर्णित हनुमान जन्म आख्यान असाधारण और महत्वपूर्ण है। इसे एक प्रकार से अन्तस्थ मारुति वाणी ही समझना चाहिए। इस आख्यायिका के अन्तर्गत भगवान शिव के काम क्रिया-कर्म रूप हैं। मन-प्राण-वाणी रूप सृष्टिसाक्षी के अनुक्रम में रूपकर्मनाम ये गुण अथवा परिणाम (बृ० उप०) हैं।

अर्थात् हनुमान का रूप शिव-संकल्प है। संकल्प विकल्पात्मक मर्कट या वानर रूप मन का ही द्योतक है। समीरवायु यह प्राण का क्रियात्मक रूप है। और अग्नि पुरोडास यह वाक् तत्त्व है। नाम और अर्थ दोनों एक रूप होते हैं। 'हनुमान' यह नाम 'वायुसुत' तेज प्रमाण से 'रूप' प्रकाशक है। अतः आनन्द विज्ञानात्मक स्वरूप साक्षी शिव के कपिश्रेष्ठ हनुमान तत्त्वतः सृष्टि साक्षी रूप हैं। इस रूप के मन, प्राण; वाक् जहाँ सूक्ष्म रूप हैं वहाँ ही नाम-रूप-कर्म ये स्थूल अंश हैं। इस प्रतीकाधार से ये सत्स्वरूप शिवरूप एवं निर्गुण-सगुणात्मक परब्रह्म परमात्मा श्री राम रूप के प्रधान दर्शन-प्रकाश-प्रदाता हैं।

१. आनन्द, विज्ञान, मन—यह 'पशुपति' या 'आत्माराम' की सत्त्वात्मक कला है। प्राण – यह सर्व व्यापक आद्यक्रियात्मक-रजोगुणमय पाश है। वाक् तत्त्व का पिंड-तमोगुण प्रधान प्ररिणाम होने से उसकी पारिभाषिक अथवा लाक्षणिक संज्ञा पशु है। २. आनन्द विज्ञानात्मक 'पुरुष' जहाँ शिव है वहीं प्राणवाक्रूप 'प्रकृति' पार्वती हैं तथा सत्यासत्य-मन-मध्यस्थ मिथुन [युगल] का मैथुन है। उस मनका चांचल्य गुण ही कपि का मानो स्वरूप-लक्षण हुआ। संप्रति यही उमा-महेश्वर की लीला है। फलस्वरूप यही हनुमान का गूढ़ रहस्यमय सगुण साम्प्रतिक रूप है। इस हनुमज्जन्म-कथा में यही विलक्षणता दर्शित होती है।

—:*:—

अन्यान्य कारणकार्य-सम्बन्ध अवतार-कारण

त्रिदेवों में अवतार धारण करने का प्रधान भार अधिकत्तर विश्व संरक्षक भगवान श्री विष्णु पर ही आश्रित है। यह पूर्णतः सत्य है। इसी कारण किंवदन्ती से यह भी सुना जाता है कि विशेषकर श्री शंकर अवतार ग्रहण नहीं करते। कुछ अंशों में यह भले ही उपयुक्त हो, किन्तु प्रेम के सामने सभी नियमादि बदल जाते हैं। इसके प्रत्यक्ष ऐसे उदाहरण हैं। १—भगवान विष्णु द्वारा शिव की कमल पूजा—एक समय भगवान श्री विष्णु एक हजार सुवर्ण कमल श्री शिव के चरणों में अर्पण करने का संकल्प ले, पूजन करने बैठे। अकस्मात सारे कमल चढ़ा देने के पश्चात् गणनाक्रम से एक कमल की कमी हो गई यद्यपि विष्णु सारे कमलों की भली-भाँति गणना कर ही पूजा पर बैठे थे। [वास्तव में प्रेम परीक्षा में आराध्येश्वर शिव ही कमल चोर थे] पूजा-पीठ से उठ न सकने तथा संकल्प भङ्ग होने की आशंका से चिन्तित भगवान को अचानक अपने कमलनयन नाम का स्मरण हो आया। अतः संकल्प की पूर्णता के लिए जैसे ही वे अपने नेत्रकमल निकालने के लिए तेज हथियार लेकर अपना हाथ बढ़ाते हैं वैसे ही आशुतोष भगवान अतीव प्रेम से प्रकट हो सत्यनिष्ठ भक्त श्री विष्णु का हाथ पकड़ कर रोक देते हैं। साथ ही चुराए कमल को प्रकट कर उसके पूजन में प्रेमनिष्ठा की पूर्णता की प्रशंसा करते हैं और प्रतिकार में स्वयं सेवा करने की कामना भी प्रकट करते हैं। २—शिव-वर-प्राप्त भस्मासुर के मन में पाप का उदय हुआ। उसने सोचा कि महादेव के मस्तक पर हाथ रखकर उन्हें भस्म कर दिया जाय और परमा सुन्दरी शिवा को उठा लिया जाय। इस अनाशङ्कित महान सङ्कट से बचने के लिए महेश्वर भाग पड़ते हैं और भस्मासुर उनका पीछा करता है। उस महान आपत्ति से बचाने के लिए भगवान विष्णु मोहिनी के रूप में तुरन्त असुर के सामने प्रगट हो उसे विमोहित कर लेते हैं। वह पथच्युत असुर मोहिनी के रूप से आकर्षित होकर उसे नाचते देख स्वयं उसके इशारे पर नाचने लग जाता है। इस भावमय नृत्य-भङ्गिमा में ही उसे माया-विमूढ़ दशा में लाकर मोहिनी रूप भगवान अपने मस्तक पर हाथ रखे नृत्य लीला आरम्भ करते हैं। तदनुसार प्रभावित असुर भी नाचते हुए जैसे ही अपने मस्तक पर हाथ स्थिर

करता है कि वह स्वयं वहीं भस्म का ढेर हो जाता है। असुर भयोन्मुक्त सदाशिव उमा सहित उसी स्थल में भगवान मोहिनी के सम्मुख आ प्रगट हो जाते हैं। स्तुति आदि करने पर भी अतृप्त सदाशिव भगवान विष्णु के द्वारा अमूल्य निष्काम सेवा से आर्द्र और संकुचित हो रहे थे। इसी भावोद्वेग में श्री रामावतार का भविष्यकालिक चित्र उनके ध्यान-पटल पर चित्रित हो जाता है। उस भाव से प्रेरित हो वे वहीं भगवान विष्णु के सम्मुख श्री रामावतार के समय आजन्म ब्रह्मचारी रूप से सेवा-व्रत का संकल्प प्रकट करते हैं। वही शिव यथावसर [संप्रति दोनों कथाओं से संयुत] हनुमान रूप में अंजना गर्भ से भूतल पर अवतरित हुए।

इसी प्रकार महाभारत में, देवी पुराण (३७ वें अध्याय) में तथा वृहद्धर्म पुराण के अष्टादश अध्याय में भगवान विष्णु के समक्ष शिव ने कामना प्रकट की है कि मैं वानर रूप से पवनात्मज होकर श्री रामावतार में आपकी सेवा और सहायता करूँगा :-

अहं वानर रूपेण संभूय पवनात्मजः ।
साहाय्यं ते करिष्यामि...... ॥

सन्दर्भ समीक्षा—पूर्व-वर्णित समस्त हनुमज्जन्म का कार्य-कारण-सन्दर्भ परस्पर विधायक, विरोधक, विघातक और विलक्षण ही प्रतीत होता है। विचार करने पर स्पष्ट हो जायगा कि तत्त्वतः अनेक कार्य-कारण-संघातों के फलस्वरूप कोई बड़ी घटना होती है अथवा महामानव (अथवा पारमात्मिक तत्त्व) का प्रादुर्भाव होता है। महाभारत के शांति पर्व के त्रयोदश अध्याय के ऐल-काश्यप-संवाद के अन्तर्गत कश्यप कहते हैं—"ऐलराज विश्व में दुष्टात्मा पापियों द्वारा जब पाप की वृद्धि होने लगी तो समझ लो कि भविष्य काल में इस योग से रुद्र अवतार होने वाला है।" इसका तात्पर्य भाव यह है कि पापी लोग अपने पाप वृद्धि-योग से ही भगवान रुद्र के अवतार-धारण करने का वास्तविक कारण संघटित करते हैं। किसी की घोर तपश्चर्या तो किन लोगों का घोर पातक, किसको पुत्र प्राप्ति का वरदान तो किस वाक्सिद्ध महा-पुरुष के द्वारा अभिशाप, किस समय सामुदायिक-प्रार्थना, तो किस समय सामुदायिक धर्मग्लानि, फिर कभी साधुजनों का संरक्षण तो कभी दुष्टों का निर्दलन, ऐसा धन-ऋण, सापेक्ष आकांक्षा एवं शक्ति जब अतीव प्रबल होती है तभी जन्म धारण करनेवाला

व्यक्ति पुरुष विशेष अलौकिक सामर्थ्य लेकर अवतीर्ण होता है। वह सर्व सामान्य प्राणि-कोटियों के समान समाज में दीखने पर भी सत्यतः असामान्य देव ही होता है। यह वास्तविक पौराणिक दृष्टि है। इस अवतार के पूर्व संदर्भ में पूर्व जितनी भी कथाएँ वर्णित हुई हैं वे परस्पर में कथा भेद से भी अवतारवाद की विरोधक न हो उसकी पोषक रूप ही हैं। ऐसा पौराणिकों का अपना विश्वास है, क्योंकि किसी भी कार्य का एक ही कारण संभवीभूत नहीं होता, अपितु साक्षात् या परम्परागत अनेक कारण उसके साथ उत्पन्न होते हैं।

जैन धर्मावलम्बीय मत—जैन राम कथाओं में हनुमान की रामायणीय जन्म-कथा का विकृत रूप पाया जाता है। 'पउम चरिउ' के अनुसार आदित्यपुर के राजकुमार पवनंजय [वायु कुमार] ने 'महेन्द्रपुर' की राजकुमारी अंजनी से विवाह किया था। विवाह होते ही उसे अकस्मात् रावण की ओर से अरुण के साथ युद्ध करने जाना पड़ा। किन्तु युद्ध काल में ही वह अपनी नव वधू के प्रेम वशात एक दिन रात में अपनी नगरी लौटकर अपने परिवार या समाज में किसी से मिले विना छिप कर वह राजकुमार अपनी प्रिया के पास एकांत शयन कक्ष में जा मिलता है। अपने आने का सारा गुप्त प्रेम-रहस्य सुना जाने के बाद, वह अपनी प्रिया के साथ रात्रि निवास करता है। पुनः सूर्योदय के पूर्व ही वह यथास्थान अपने युद्ध स्थल के आवास में गुप्त रूप से जा पहुँचता है। इधर रात्रि-निवास के संयोग से नववधू अंजना गर्भवती बन जाती है। वास्तविक रूप प्रगट होने पर उसकी सत्य बात पर कोई विश्वास नहीं करता। पति की अनुपस्थिति में गर्भवती होने के कारण, सामाजिक दृष्टि से बाद में पतिता रूप से वह अपनी ससुराल तथा पितृगृह दोनों जगहों से बहिष्कृत की जाती है। फलतः असहाय दुःखावस्था में वनवासिनी हो, यथा समय एक वन-गुहा में वह पुत्र को जन्म देती है। संयोग से उसी स्थल में प्रति-सूर्य नामक राजा का आगमन होता है, जो करुणा वशात् बालक सहित 'अंजनी' को अपने राजनगर 'हनूरुहपुर' ले आता है। वहीं अंजनी पुत्र का नाम हनुमान रखा गया है। दूसरी ओर युद्ध समाप्ति के पश्चात वापस राजनगर आने पर पवनंजय अपनी स्त्री के सम्बन्ध में सारा समाचार जानने पर अपने परिवार से अपनी स्त्री के सतीत्व का सत्य प्रमाण देता है। इस आधार पर

अंजनी बालक के साथ पुनः ससम्मान ससुराल लौट आती है। [दे० पर्व० १५-१८]
'गुणकृत उत्तर पु०'—में हनुमान का एक अन्य नाम अमितवेग भी सूचित किया गया है। उस रचना में वह राजा प्रभंजन तथा अंजना देवी का पुत्र माना गया है। [पर्वं ६९—२७६]

—:*:—

अन्य देशीय विवरण

इण्डोनेशिया, जावा, मलाया, श्याम आदि देशों में हनुमाने की जन्म कथा भिन्न-भिन्न रूपों में वर्णित हुई है। उनका अति संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

हिन्देशिया—यहाँ की राम कथाओं में भारतीय वृत्तान्त का विभिन्न विकृत रूप दिया गया है। इसमें ईश-ईश्वरी [शङ्कर-पार्वती] के स्थान पर हनुमान राम-सीता के पुत्र दिखाये गये हैं। यह वृत्तांत दो भारतीय कथाओं के मिश्रण के आधार से उत्पन्न हुआ है, जिसमें गौतमपुत्री अंजना की कथा और ईश्वर-ईश्वरी के वानर-वानरी के रूप की कथा सम्मिलित है। वहाँ की कथा के अनुसार महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या की तीन सन्तानें थीं। एक कन्या अंजनी और दो पुत्र—बालि तथा सुग्रीव।

सेरतकांड—[जावा] के अनुसार अंजनी अपनी माता का इन्द्र कृत व्यभिचार पिता से प्रगट कर देने के कारण पश्चात्ताप से तपस्या करने चली जाती है।

सेरत राम—[मलाया] के अनुसार गौतम पुत्री अंजना को सौ वर्ष तक सुई की नोक पर खड़ी रहने का शाप देते हैं। इसके बाद—अंजनी हनुमान की माता बन जाने की दो प्रकार से कथा दी जाती है।

सेरी राम—यहाँ के एक पाठ के अनुसार बनवास के समय एक सरोवर में स्नान करने पर सीता और राम वानर-वानरी बन जाते हैं। उसी रूप से वन में क्रीड़ा-योग से वानरी सीता गर्भवती हो जाती है। लक्ष्मण दोनों वानर-वानरी को जाल में फँसा कर एक दूसरे तालाब में डुबा देते हैं, जिससे वे पुनः मानव वेष में परिणत हो जाते हैं। बाद में राम स्वतः सीता का भ्रूँण निकालते हैं। जिसे वायुदेव लेकर

सुई की अनी पर खड़ी अंजनी के मुख में डाल देते हैं। इसीके फल वरूप हनुमान जन्म लेते हैं। 'सेरीराम' के ही अन्य दूसरे पाठ के अनुसार—सीता, हनुमान की माता नहीं है, अपितु राम अंजनी को देखकर स्वतः अनुरक्त हो जाते हैं। कामावेश में वीर्यपात् हो जाता है। वे उसे एक पत्र में रखकर वायु के द्वारा अंजनी के मुख में डलवाते हैं।

रामकियेन [श्याम]—यहाँ अंजनी का नाम स्वाहा कहा गया है। वह अपने पिता से माता का व्यभिचार प्रगट कर देती है। इस दोषापराध पर उसकी माता पुत्री स्वाहा को वानर पुत्र जन्म देने तक एक पैर से खड़ी रहने का शाप देती है। बाद में स्वाहा की दशा देखकर शिव उसपर दया करते हैं। वे वायु को अपनी शक्ति तथा अस्त्र शक्ति के साथ उन्हें स्वाहा के मुख में डाल देने की आज्ञा देते हैं। इस कार्य के फलस्वरूप ही ३० मास बाद स्वाहा कें मुख द्वार से ही वानर वेष से हनुमान प्रगट होते हैं।

श्याम—श्याम के ही अन्य 'रामजातक' में यह कथा है कि सीता की खोज करते समय मार्ग में राम एक फल खा लेते हैं, जिससे तीन वर्ष के लिए वे वानर ही बन जाते हैं। इस वानर वेष में ही दूसरी ओर फायेंगसी अंजनी या स्वाहा नाम प्रतिरूपा स्त्री उसी फल के खाने से वानरी रूप में उसी वन में विचरण करने लग जाती है। दोनों का सम्मिलन हो जाता है और वानर-वानरी रूप से मिलकर वे हनुमान को यथासमय जन्म देते हैं। इस प्रकार दक्षिण पूर्वीय देशों की रामायणों में विभिन्न विकृत रूपों में हनुमज्जन्म कथाएँ प्राप्त होती हैं।

—:*:—

हनुमज्जन्म का काल-निर्णय

हनुमंत् जन्म सम्बन्ध में मास, तिथि, नक्षत्र, लग्न दिनादि की जो विभिन्नताएँ संप्रति कल्प-भेद से प्राप्त हुई हैं वह पुराण तथा रामायण आदि में दर्शित है। मास भेद में—चैत्र और कार्तिक [आश्विन] दो मास हैं। जिनमें चैत्र मास की प्रामाणिकता

अधिक समीचीन है।

चैत्र मास की प्रधानता के विषय में स्कन्द पुराण [स० खं० वे०] में स्वयं वायुदेव का कथन है :—

मेष संक्रमणे भानौ संप्राप्ते मुनि सत्तमाः ।
पौर्णिमाख्ये तिथो पुण्ये चित्रा नक्षत्र संयुते ॥

आनन्द रामायण में भी लिखा है :—

चैत्र मास सिते पक्षे हरि दिव्यां मघाविधे ।
नक्षत्रे समुत्पन्नो हनुमान रिपु सूदनः ॥

इसी प्रसंग में कल्प-भेद से यह भी कथित है :—

महाचैत्री पूर्णिमायां समुत्पन्नोंऽजनी सुतः ।
वदंति कल्प भेदेन वुधा इत्यादि केचन ॥

वृ० जो० हनु० उपासना में लिखा है :—

चैत्र मासि सितेपक्षे पौर्णिमास्यां कुजेऽह्नि ।

इसीमें पुनः वर्णित है :—

चैत्रस्य शुक्लैकादस्यां मारुतेर्जन्म चोचिरे ।
तत्कल्प भेद विषयो विज्ञेयो नात्र संशयः ॥

आश्विन कार्तिक मास सूचक उल्लेख वायु पुराण, सूर्य संहिता और उत्सवसिंधु ग्रन्थ में है। उनके वर्णन इस प्रकार हैं।

वायु पुराण :—

आश्विनस्य सितेपक्षे स्वात्यांभौमे चतुर्दशी ।
मेष लग्नेंऽजनी गर्भात् स्वयं जातो हरः शिवाः ॥

यहाँ आश्विन असित [कृष्ण] पक्ष अन्य प्रकार से कार्तिक कृष्ण का द्योतक है। उत्तर प्रांत में जहाँ कृष्णपक्ष १ से प्रत्येक मास का आरम्भ और पूर्णिमा को समाप्ति होती है वहीं दक्षिण महाराष्ट्र, गुजरात प्रांत में शुक्ल पक्षीय १ से मासारम्भ की समाप्ति अमावस्या ३० में मान्य प्रधान है। इस आधार से दाक्षिणात्य आश्विन कृष्ण पक्ष है

तो उत्तरीय कार्तिक कृष्ण है। अतः कोई भेद नहीं है। यह अन्य ग्रन्थों से भी सम्मित है।

सूर्य संहिता :—

ऊर्ज [कार्तिक] कृष्ण चतुर्दश्यां शनौ स्वात्याभिनोदये।
भूभार हरणार्थाय जातः पवन नन्दनः ॥

उत्सव-सिंधु :—

ऊर्जस्य चासिते पक्षे स्वात्यां भौमे कपीश्वरः।
मेष लग्नेऽञ्जनी गर्भाच्छिवः प्रादु र्भूत्स्वयम् ॥

अतएव विकल्प-भेद से हनुमज्जन्म काल के विषय में ये बातें सिद्ध होती हैं :— जन्म मास—चैत्र, आश्विन [अमांत] कार्तिक [पौर्णिमांत]। तिथि—शुद्ध एकादशी पौर्णिमा वद्य, चतुर्दशी-अमावस्या। वार—शनि और मङ्गलवार। नक्षत्र—चित्रा, मघा, स्वाति। लग्न-मेष। सूर्य संक्रांति—मेष, तुला।

—:※:—

माहात्म्य-रहस्य पर दृष्टिपात

माता अंजना की दिव्य पुत्रैषणा—असामान्य तपस्विनी वानरी अंजना की पुत्रकामना किसी सामान्य कोटि के पुत्र के लिए नहीं थी। पौराणिक दृष्टि से रहस्यमय कारण यह था कि अंजना पूर्व जन्म की परम सुन्दरी पुंजिकला अप्सरा थी। असाधारण सौंदर्य से आकृष्ट हो रावण ने इसके साथ बलात्कार किया था। उसी पूर्व परिताप से संदग्ध (अंजना रूप से) उसने मदोन्मत्त, दुराचारी रावण से प्रतिशोध के लिए महारुद्र की घोर उपासना की। उसने महारुद्र से यही प्रार्थना की कि उन्हीं की तरह रुद्र स्वरूप सर्वगुणसम्पन्न ऐसे अजेय पुत्र की उसे प्राप्ति हो जो महाबली रावण से प्रतिशोध ले सके।

सर्वसाधारण समाज में सामान्य विचार से तो अपने गर्भ से बालक का ही जन्म हो, ऐसी स्त्रियों की नैसर्गिक भावना सर्व प्रसिद्ध है। किसी असाधारण तापसी स्त्री के

मन में ही ऐसी धारणा हो सकती है कि स्वयं परमपुरुषोत्तम ही उसके गर्भ से उत्पन्न हों।

सांसारिक लोकप्रसिद्धि के अनुसार तथा देवगुरु बृहस्पति की भी सम्मति से— "सुत वित लोक ईषना तीनी" ये तीन एषणाएँ ही प्रधान मानी गई हैं—'एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति। [बृ० उप० ३।५] इसमें पुत्रैषणा सर्वप्रथम है, जिसके अन्तर्गत काम और पुरुषार्थ की सिद्धि अपेक्षित है। प्रजा की उत्पत्ति से पितरों के ऋण से मुक्ति होती है। यह धार्मिक कर्त्तव्य तथा दारैषणा है। मनानुकूल रूपवती सद्‌गुणा तो अपेक्षित है ही। सप्तशती में प्रदर्शित हैं—

पत्नीं मनोरमां देहि, मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गं संसार सागरस्य कुलोद्भवाम्॥

अतएव पुत्र तथा भार्या की कामना यह नैसर्गिक प्रवृत्ति है।

इसकी सिद्धि से ही जहाँ पुत्रैषणा की सार्थकता होती है वह सामान्य लोक-व्यावहारिक पुत्रैषणा है। इसमें स्वात्म-व्यष्टि भावना ही प्रधानतः संन्निहित रहती है। लोकोच्चस्तरीय विज्ञ परमार्थ साधक इस प्रकार की पुत्रैषणा का त्याग ही करते हैं। उनके सद्‌विचारों से विशुद्ध पुत्रैषणा पुराण ग्रन्थों में प्रामाणिक एवं विश्व-प्रशंसनीय बीजभूत हुई है। इससे स्वात्म ही नहीं, अपितु सर्वसमष्टि का कल्याण होता है। वे दिव्यगुण संपन्न पुत्र प्राप्ति की कामना करते हैं। ऐसे लोगों में अत्रि, अनसूया, मदालसा, वसुदेव-देवकी एवं दशरथ-कौशल्या आदि हैं। इन प्रौढ़ वृद्धों की पुत्रैषणा अन्य साधारण जनों से अतीव उच्चस्तर की और विशुद्ध दीखती है। इस संदर्भ से हनुमान की माता अंजना की भी पुत्रैषणा असाधारण एवं उच्च कोटि की थी। उन्होंने कामना की कि उन्हें महातेजस्वी, धर्मनिष्ठ संत-भक्त जनों का जगतोद्धारक और अजेय वीर पुत्र हो। यही उसकी विश्व-जनीन स्तुत्य पुत्रैषणा थी। इसके अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी सांसारिक मोह-ममत्व-जनित भावनाएँ स्वप्न में भी उसके हृदय में अंकुरित नहीं होती थी। वास्तव में शास्त्र-पुराणों में संत महात्माओं ने आधियाज्ञिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक दृष्टियों से ऐसी ही पुत्रैषणा की प्रशंसा की है। सुमित्रा ने भी कहा है— पुत्रवती जुवति जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई॥

महारुद्र हनुमान के एकादशांक की महानता

हनुमदुपासना के युगयुगांतरों के अतिरिक्त वर्तमान युग में भी अनन्तानन्त विशिष्ट सन्त-भक्त हुए हैं। किन्तु संप्रति साधारण जन केवल 'श्री रामभक्त हनुमान' की ही भावना से उपासक हुए हैं। इसका कारण यह है कि वे एकादश महारुद्र-हनुमद रूप से उनकी विशिष्ट महानता से अनभिज्ञ रहे हैं।

आपके इस वास्तविक स्वरूप की महत्ता से पूर्ण परिचित उपासक उत्तर में तुलसी और दक्षिण महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर, एकनाथ मोरोपंत एवं सन्त श्री रामी समर्थ राम दासजी प्रसिद्ध हैं।

महाराष्ट्रीय सन्त भूषणों में हनुमदांश भूत श्री समर्थ का कथन है कि पुराणों में जैसे भगवान विष्णु के दश-अवतार प्रसिद्ध हैं उसी भाँति महारुद्र का यह मारुति रूप एकादश अवतार सभी अवतारों की मुकुटमणि रूप से प्रसिद्ध है—

तया सकला चा मस्तक मणी, हनुमन्त जो दास अग्रणी।
जो एकादश अवनार शूलपाणी, भुवनत्रयी प्रसिद्ध॥

एकादश रुद्र मारुति की उत्कृष्ट भावना से ही संप्रेरित-आपकी उपासना में एवं समर्थ सम्प्रदायी विशिष्ट अनुयायियों में मार्मिक भावों के दर्शन होते हैं। यह कतिपय संक्षिप्त उद्धरणों से ही स्पष्ट हो जायगा। परमभक्त छत्रपति शिवाजी जब कभी श्री समर्थ महाराज के दर्शन के लिए आते तो गुरु मन्त्र नियम भावानुसार वे ११ दण्डवत करते थे। यह कार्य आज भी संप्रति सर्व प्रसिद्ध है।

सन्त श्री के द्वारा संस्थापित ११ मारुति मूर्ति विभिन्न स्थानों में प्रसिद्ध हैं। इससे पूर्व सर्वप्रथम सगुण मारुति मूर्ति का प्रत्यक्ष दर्शन सन्त श्री को अपनी उपासना के ग्यारहवें वर्ष में ही हुआ है। इसी भाँति पञ्चवटी जाने पर वहाँ ग्यारहवें ही दिन भगवान श्री राम का साक्षात्कार एवं वर प्राप्ति हुई थी। आपका सम्प्रदाय मन्त्र—जय जय रघुवीर समर्थ—भी ११ अक्षरों में ही सन्निहित हैं। शिष्य-प्रधान ११ हैं। भिक्षा-मधुकरी भी वे ११ स्थानों से ग्रहण करते थे। प्रार्थनात्मक 'भीम स्तोत्र' भी ११ हैं। आपने रामायण के 'सुन्दरयुद्ध' दो कांड ही लिखे हैं, जिसमें सविस्तार

मारुति-चरित्र है। इस प्रकार एकादश रुद्र हैं, अजएकपात-अहिर्बुध्न्य-विरूपाक्ष-त्वष्टा-[वीरभद्र (भैरव) रैवत] हरिपिंगल-सेनानि-भुवनेश्वर-भूतेश-वृषाकपि-पशुपति। वैसे, मराठी में श्री हनुमान-विषयक अन्य भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें प्रमुख हैं सन्त विजय हनुमन्त लीलामृत एवं दासबोध-उपदेशात्मक ग्रन्थादि। श्री समर्थ एकादश भाव के सम्बन्ध में "आक्रा आक्रा वहू आक्रा-काये आक्रा कले चिना। गुप्तते गुप्त जाणावे [आनन्द भुवनो]" द्वारा अतीव गूढ़ रहस्य सूचित करते हैं। सन्त ज्ञानेश्वर एवं भक्त मोरोपन्त भी इसी प्रकार के भावोपासक थे। दास विश्राम धाम में हनुमान की अभिन्नता के कारण आप कहते हैं—

ममरूपी च तो मम पदीरत-भक्त सज्ञानी वीर हनुमन्ता।
भिन्नपणां चानिरसो निहेत-देव भक्त जालो गुरु शिष्य॥

ऐसे आपके निगूढ़ भाव सम्बन्ध थे। आप अपने एकादश उपासनात्मक भाव के सम्बन्ध में यह सूचित करते हैं कि जैसे शरीरस्थ दश इन्द्रियों का नियामक ग्यारहवाँ प्राणात्मक मन है उसी भाँति एकादश अवतार के 'संयम' स्वरूप, एकादश महारुद्र श्री हनुमान हैं। अतः—

महारुद्रा मुख्य प्राणा मूल मूर्ति पुरातना।
पंचभूता मूल माया तूं चि कर्त्ता समस्त ही॥
स्थिति रूपे तूं चि विष्णु संहारक पशूपती।
परात्परा स्वयं ज्योति नामरूपा गुणातिता॥

सन्त श्री समर्थ की यह प्रार्थना है। यह महत्त्वपूर्ण है।

भाव-सम्राट संत तुलसी—तुलसी की मान्य धारणा और भी मार्मिक तथा अनोखी प्रतीत होती है। आप भी महारुद्र हनुमान के अनन्योपासकों में अद्वितीय हैं। आप में शिव के प्रति अगाध भक्ति और कृतज्ञता है :—

सम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी।
रामचरित मानस कवि तुलसी॥

हनुमान को आप एकादश रुद्र नहीं, अपितु 'द्वादश महारुद्र' में मानते हैं। अन्तस्थ के ये मार्मिक गूढ़ भाव सप्रमाणिक कारणभूत प्रतीत होते हैं। अपनी धारणा

पद्मपुराण के सृष्टि-खण्ड की इस कथा पर आश्रित हैं। संसार के सृष्टि-कार्य से नारद, सनकादिक के उदासीन हो जाने पर प्रजापति ब्रह्मा को महान् क्रोध हुआ। उनका ललाट क्रोध से उद्दीप्त हो उठा। उसी समय उनके ललाट से मध्याह्नकालीन सूर्य के समान तेजस्वी रुद्र प्रकट हुए, जिनका आधा शरीर स्त्री का था और आधा पुरुष का। ब्रह्मा ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपने इस शरीर को दो भागों में विभक्त कर दो। अर्ध-नारीश्वर रुद्र ने अपने दोनों को पृथक्-पृथक् कर दिया और फिर पुरुष-भाग को ग्यारह रूपों में विभक्त किया। इससे स्पष्ट है कि अर्धनारीश्वर रूप 'महारुद्र' हैं और ग्यारह रुद्र उनके अन्य रूप हैं। इस तरह कुल बारह [द्वादश] रुद्र है। अतः महा-रुद्र रूप वानरेन्द्र हनुमान एकादश रुद्राधीश 'द्वादश महारुद्र' हैं जो ग्यारहों रुद्रों के कारण अर्धनारीश्वर रूप महारुद्र महाशम्भु के अवतार हैं।

संप्रति सन्तराज तुलसी हमें इसी अनन्य भावना के पूर्णतया सम्पोषक दिखाई देते हैं। आपके इस भाव संदर्भ के निष्कर्ष के विषय में यह भी सूचित करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि आप शिव और हनुमान के भेद और अभेद दोनों ही रूपों के आरा-धक हैं। भेद दृष्टि से—दोनों ही रूप श्री राम के अनन्य भक्त, रामभक्ति के कोठारी भण्डारी हैं और दोनों ही श्री राम प्रभु के परम प्यारे हैं।

आपने शिव वन्दना [विनय] बारह पदों में [पद ३ से १४ तक] की है, जिसमें ११ एकादशरुद्र तथा एक अर्धनारीश्वर महारुद्र द्वादशेष वर्णित हैं। इसी प्रकार आपने हनुमान-वन्दना भी १२ पदों में [पद २५ से ३६ पद तक] की है। "मानस" शिव विवाह भी बारह दोहों एवं ग्यारह छन्दों में [दोहा ९१ से १०३ में] सन्निहित है, जो प्रस्तुत भाव का द्योतक है। विनय-पत्रिका-कृत हनुमान वन्दना के ही भावानुसार गोस्वामी जी ने काशी में हनुमान की बारह मूर्तियाँ स्थापित की हैं। सर्वोत्कृष्ट ज्वलन्त प्रमाण आपके द्वादश ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जो भाव-परिचायक हैं। इसे सर्वसाधारण जनों के परिचयार्थ तुलसी की ही छठी पीढ़ी के शिष्य पं० रामगुलाम द्विवेदी [हनुमत् कृपापात्र मिरिजा पुरवासी] के छन्दमय शब्दों में देखा जा सकता है—

रामलला नहछू औ विराग संदीपिनी हूँ,
बरवै बनाई बिरमाई मति साँई की।

पारवती-जानकी के मङ्गल ललित गाहू,
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाँई की ॥
दोहा-औ-कवित्त-गीत-वद्ध-कृष्ण-कथा कही,
रामायण-विनय मोह बात सब ठाँई की ।
जग में सोहानी जगदीस हू के मनमानी,
सन्त सुखदानी वानी तुलसी गुसाँई की ॥

एकादश रुद्रांक्ष की महान किरणें—'रुद्र' शब्द ही एकादश अंक का भाव प्रतीक है। इसकी दिव्य महानता की विशिष्ट किरणें अन्यान्य शास्त्रीय सिद्धान्तों में भी प्रसरित दीखती हैं। एकादश की महत्ता का प्रकाश हमें वैष्णव-स्मार्त आदि सम्प्रदायों एवं वेद, उपनिषद, गीता, भागवत आदि सभी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इसके कतिपय विशिष्ट उदाहरण दिखाये जा सकते हैं। भागवत का एकादश स्कंद इसी का द्योतक है। भागवत में भगवान श्री कृष्ण ने एकादश अध्याय में समष्टि पूजा के अपने एकादश भद्र स्थानों का आख्यान किया है—

सूर्योऽग्नि ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलं ।
भू रात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजा पदानि मे ॥

एकादशी व्रत सभी सम्प्रदायों के भक्तों की प्रिय पुण्य तिथि के रूप में प्रसिद्ध है। नारदीय भक्ति भी ११ रूपों में वर्णित है। एकादशनीय [रुद्राभिषेक] रुद्री पाठ के अन्तर्गत रुद्र के 'नमक' और 'चमक' शब्दों की संख्या भी एकादश-एकादश ही है। इसके साथ लघुरुद्र या महारुद्र में ११ एवं ग्यारह-ग्यारह आवृत्ति पाठ का नियम है। अथर्ववेद-में भी इसी प्रकार ग्यारह-ग्यारह की पद-संख्या है।

भागवद् गीता में एकादश अध्याय में अर्जुन को भगवान श्री कृष्ण द्वारा विराट स्वरूप के दर्शन होते हैं। यह असाधारण भक्त-भक्ति श्रेष्ठता का प्रतीक माना गया है।

अध्यात्म-भौतिक प्रकाश—एक और एक मिलकर ११ का अङ्क बन जाता है। प्रत्यक्षतः दोनो ही समानांक है, जिससे सर्व साधारण दृष्टि से परस्पर कोई भेद नहीं है। किन्तु भारतीय अध्यात्म-विज्ञान की दृष्टि से दोनो के ही रहस्यमय विभिन्न विशिष्ट गूढ़ गुण-भाव हैं।

एक से दस १० में मूल अङ्क (१) एक का परिगणन पूर्ण होता है। इसके (एक) के साथ एक रखकर ११ की द्विरुक्ति होती है। सूक्ष्म विचार से 'सत्यम्' शब्द में सत+इ+यम—इसके अध्यरथ 'माया' रूप '३' लोप आधार प्रमाण से एक एक ११ अङ्क के मध्य, दशम दर्शक पूज्य का लोप है। दृष्टिगत रूप से दोनों ही एक सत्य हैं तथापि विचार सूक्ष्मता से दोनों अङ्क ११ समान होते हुए भी—महानता में विभिन्न हैं। यह अधिष्ठान और अध्यस्थ रूप से ही एक के ऊपर एक की ११ अङ्क संख्या दीखती है। वास्तव में इसके अन्तस्थ में पारस्परिकता से रस, बल, निर्गुण-सगुण, पुरुष-प्रकृति, देव-भक्त, एवं स्वामी-सेवक आदि के ये गूढ़ भाव परिलक्षित होते हैं। अत: इन एकात्म-द्वन्द्व प्रमाण से ही ११ की संख्या एकानेक वाचक, व्यापक तथा उपलक्षणात्मक गूढ़ भावों के दर्शन देती है।

भौतिक समाज हितैषी भारतीय ज्योतिष शास्त्र के ही अन्तर्गत अङ्क-विज्ञान [पाश्चात्य न्युमरोलाजी] के एक पाश्चात्य विज्ञान ने ११ के विषय में किस प्रकार अपने मार्मिक रहस्यपूर्ण विचार दिए हैं यह उन्हीं के शब्दों में दर्शनीय है—

Eleven is more of principle than a number. It has been explained by many authorities as a double one. As the '1' represents the highest vibratory law from the material point of view, so is eleven said to represent the highest vibratory law in the spiritual. As the one '1' came to learn to hold unity in the material world, so the eleven or double '11' came not only in expression of material harmony, but to add to this, the harmony of the immaterial or subjective side of life. The particular characteristic of the people coming under this vibration is eccentricity. They represent the extreme expression of consciousness, and the developed eleven -11- should manifest a life of the highest spiritual power, humanitarism, cosmic and useful. When we find a person coming under this stream of live, who is showing no idea of the higher vibratory laws, we may know that this power is simply latent, but could quickly bring itself to the

front. People of the eleven -11- vibration are great lovers of the truth, telling the same regardless of how they may affect their hearers.

(Name and numbers what they mean to you—by D. R. Roy, Page Walton, N. York.)

इसी प्रकार एक और विचार संग्रहणीय है—

Eleven is said to be the highest of all vibrations on this planet and people coming under this vibration have been Race messengers. The eleventh state of consciousness represents the heavens within, which Jesus taught to the race to seek, and then "All these things shall be added unto you. They are mysterious people loving the mysteries and unseen things of life, living the life of the past, the life of the present, and the life beyond, and seeing no line of demarcation separating the same. They are reincarnations of priests of the older temples, and if they live true to their highest laws, they will be the spiritual guides and comforters of the race. A true eleven is a true prophet and mystic and revelation and prophecy are their rightful inheritance.

The undeveloped eleven '11' we often find intensifying the other side. When they do this, they express the highest type of personal exaltation, cold ambition, love of name, place and power, and their place on the path of wisdom, enables them to use to utmost the lives with whom they are associated. The greatest humanitarian and the smallest miser, the purest in mind, also the most subtle, are the extremes of this vibration. Knowing this, an eleven -11- may choose which of the states of consciousness he will intensify. As -1- is a harbinger, so is eleven -11- a messenger. (Name of Numbers etc.)

—:*:—

दिव्य रूप प्रकाश

इस सम्भाग में मारुति के सर्व प्रसिद्ध लोक-हितैषी दिव्य देवरूपों के कतिपय वर्णन दिये गये हैं। वैसे तो आपके सर्वविदित तंत्रशास्त्रोक्त एकमुखी, पंचमुखी तथा एकादशमुखी मूर्तियाँ जहाँ प्रसिद्ध हैं, वहाँ ही आप हनुमान सहस्रनामावलि में—सहस्र मूर्धा सहस्रास्यः सहस्राक्षः सहस्रपात् [८१] के रूप में भी कथित हैं। सहस्रमुखी या अनन्तमुखी भी हो सकते हैं। कहा भी है—जयोऽजेय परीवारः सहस्रवदनः कविः।

ब्रह्मांड पुराण में भगवान श्री राम के द्वारा आप "चन्द्र सूर्याग्नि नेत्रश्च" रूप से स्तुत्य हैं। दूसरी ओर भगवान सदाशिव द्वारा रुद्रयामल हनुमत्सहस्रनाम स्तोत्र में मारुति "त्रयोदश सोम मुखाय" अर्थात् १३ चन्द्रमुख स्वरूप के साथ विभिन्न चन्द्रगुणों से वन्दित किये गये हैं।

चन्द्र रूपश्चन्द्र वंद्यश्चन्द्रात्मा चन्द्रपूजकः।
चन्द्र प्रेमश्चन्द्रं विंवश्चामर प्रिय चंचलः॥
चन्द्र वक्रश्चकोराक्षश्चन्द्र नेत्रश्चतुर्भुजः।
चंचलात्मा चरश्चामी चलत्खंजनलोचनः॥

तुलसी भी चन्द्ररूप से विनयारंभ में कहते हैं—

जयत्यंजनी गर्भ अंभोधि-संभूत-विधु विबुधकुलकैरवानंदकारी।
केसरी चारु लोचन-चकोरक-सुखद लोक गनसोक संताप हारी॥

प्राकृत चन्द्र जैसे समुद्र से प्रकट हो लोक-त्रिताप हर्ता तथा कुमुद चकोरादि के आल्हादकारी हैं उसी भाँति अंजना गर्भ-अंभोधि से प्रकट चन्द्र मारुति केसरी-सुनयन-चकोर के सुखदाता, देवकुल-कुमुद के आनन्द-प्रदाता एवं समस्त लोक गणों के शोक-संताप-हरणकर्ता हैं।

विचार समीक्षा से सिद्ध है कि आपके दिव्य त्रयोदश चन्द्र रूप प्राकृत चन्द्र से अधिक गुण-शक्ति-विशिष्ट है। तथापि सामान्य लोकदृष्टि से भी प्राकृतचन्द्र की सदृशता सुन्दर ही प्रतीत हो रही है। माता अंजना का गर्भ वडवाग्नि एवं अमूल्य रत्न धारण करने वाले महोदधि के समान अनन्त, अगाध और प्रशांत है, जिससे त्रिभुवन-

विजयी महावीर हनुमान जैसे पुत्ररत्न प्रसूत हुए। जिस प्रकार बडवाग्नि को धारण करने में अंभोधि ही समर्थ है उसी भाँति प्राकृत बडवानल से अनन्त तीव्रतर बडवानल हनुमान को धारण करने में अंजना ही समर्थ थी। चतुर्दश रत्नों के प्राकट्यसाम्य में महाँ चतुर्दश-भुवन विजयी पुत्ररत्न प्रकट आप हैं। समुद्रोत्पन्न विधुरत्न 'सुधांशु' अमृत धारण करता है। अंजना-गर्भ-संभूत विधु मारुतिरत्न स्वयंभूत सुधा अमर है। सुधांशु में आह्लादकत्व जो गुण है वह एकांगी एवं सुखी संयोगी प्राणियों को ही एकमात्र आह्लादित करता है, विरहियों को नहीं। प्रत्यक्षतः उसने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम को भी विरहावस्था में आह्लादित न कर व्यथित ही किया है। किन्तु अंजनी गर्भ संभूत विधु ने श्री राम ही नहीं, अपितु मातेश्वरी जानकी को भी प्रखर विरह संतप्त दशा में आह्लाद-विभोर कर पूर्ण शांति प्रदान की है—'तोहि देखि शीतल भइ छाती'। रावन युद्ध के प्रत्येक काल में भगवान श्री राम को आड़े-गाढ़े समयों में पूर्ण साहाय्य तथा आनन्द प्रदान करने में प्रधान विधु मारुति ही थे।

ऋग्वेद [१।६१-१४-२१] के सोम सूक्त में वर्णित बुद्धिमान, सरल पथ-प्रदर्शक मित्र-हितैषी, अजेय, शत्रु-ध्वस्त कर्ता, शुक्राधिपति, यज्ञ भूत, कीर्तिमान, विजयी आदि सारे गुण आप में पूर्णतया स्वभावतः सन्निहित हैं। चन्द्र समस्त जीवों का प्राणरूप एवं सर्वरसमय एक व्यापक तत्त्व है, आकाशीय चन्द्र इसका प्रतीक मात्र है। वैसे ही भगवान महारुद्र मारुति एक व्यापक तत्त्व हैं और पुराणोक्त हनुमान उनके एक विग्रह हैं। इन्द्रादि देवों के प्रिय सोम के समान ही 'मारुति-सोम' समस्त देववानरों-सहित श्री राम के परम प्रिय रूप हैं। सन्त शिरोमणि मोरोपन्त की धारणा से निःसीम त्याग सोम का प्रधान लक्षण है। त्याग फलश्रुति ही सूर्य का तेजोद्भव है। आत्मत्याग से ही सोम को ब्रह्मांड में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। वही अनन्य अविचल स्थान रामायण में मारुति का है। सूर्यअग्नि ये दोनों वैदिकों के देव माने जाते हैं, किन्तु लोक समाज के सारे धार्मिक कार्य [विवाह-यात्रा आदि] एकमात्र चन्द्र द्वारा ही विचारित होते हैं।

परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से समुद्री ज्वार भाटा के समान शरीर रुधिराभिसरण, ऋतुप्राप्ति, जीवोत्पत्ति आदि सारे योग कार्य चन्द्र पर आधारित हैं। ग्रहों में सूर्य

आत्मा का और चन्द्र मन का प्रतीक है तथा 'इन्दु सर्वबीजंभो' सभी का बीज भूत है। अतः जैसे चन्द्र जीवनबीज तथा मार्गदर्शक आदि है, वैसे ही ये सारे गुण कार्यों के जीवन एवं रामायण के बीजभूत मार्गदर्शक हैं। इसके अतिरिक्त पुराणों एवं भागवत् आदि में सूर्य की अपेक्षा चन्द्र को जिस भाँति उच्च स्थान प्राप्त है तदनुसार ही रामायण में मारुति का स्थान है।

अतः ब्रह्मांडाकाश में विशुद्ध चन्द्र की भाँति चन्द्र-हनुमान की कीर्ति - चन्द्रिका त्रिलोक में छा रही है।

कोटि मार्तण्ड मूर्ति—मारुति का अप्रतिम दिव्य शरीर ही सात करोड़ महामंत्रों से मंत्रित बीज है "सप्तकोटि महामंत्रः मंत्रिता वयव प्रभुः"। चन्द्र सूर्य अग्नि के जहाँ नेत्र रूप हैं, वहाँ आप (कालाग्निः प्रलयान्तकः) कालाग्नि रूप भयङ्कर प्रलयकारी भी हैं।

अथर्ववेद [ह० उप०] के मालामन्त्र एवं रुद्रयामल तन्त्र [ह० स्तोत्र] में शिव-शिवा से वर्णन करते हैं कि हनुमान ९ ब्रह्ममय, १० विष्णु रूप, एकादश रुद्रावतार, द्वादशार्क [सूर्य] और त्रयोदश सोम मुख वाले परम प्रचण्ड महातेज मूर्ति हैं। वे इस लोक में भुक्ति-मुक्ति एवं सर्वाभीष्टप्रदाता महादेव, महाकाल एवं सदाशिव रूप हैं—हनुमान स महादेवः कालकालः सदाशिवः। अतः मारुति लोक-मार्तण्ड के सदृश नहीं अपितु उदयकालीन कोटि मार्तण्ड दिव्य प्रभा के समान साक्षात् मूर्त रूप हैं—

उद्यन्मार्तण्ड कोटि प्रकट रुचि युतं चारु वीरा सनस्थं।
मौंजी यज्ञोपवीतारुण रुचिर शिखा शोभितं कुण्डलीकम् ॥
भक्तानाभिष्टदं तं प्रणत मुनिजनं वेद-नाद प्रमोदं।
ध्यायेद् देवं विधेय प्लवग कुलपतिंगोष्पदीभूत वार्द्धिम् ॥

यहाँ मारुतिमार्तण्ड के वास्तविक स्वरूप का परिचय प्राप्त हो जाता है। प्राकृत और अप्राकृत सूर्य में स्वभावतः महान् अन्तर है।

लोक सूर्य के जनक—परब्रह्मादित्य के सत्य स्वरूप का दर्शन इस प्रकार होता है।

भगवान वेदव्यास द्वारा ऋषिवर्य वैशंपायन से वर्णित-साक्षात् ब्रह्मरूप-उत्कृष्ट तेज सूर्य [आदि ब्रह्ममार्तण्ड] सर्वप्रथम जल से प्रकट हुए थे। उनका असह्य प्रखर तेज

सारे विश्व के जड़-चेतन प्राणियों को चकाचौंध कर जलाने लगा। इस असह्य तेज से अति प्रभावित समस्त देव ऋषि गणों ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि कृपया आप ऐसा प्रयत्न करें, जिससे हम सभी प्राणी सूर्य देव का दर्शन पूजन कर सकने में समर्थ हों।

ब्रह्मा ने स्तुति द्वारा प्रार्थना की कि ऐसा कुछ करें जिससे आपकी प्रखर किरणों में समस्त प्राणियों के योग्य कुछ मृदुता प्राप्त हो। इस पर ब्रह्मादित्य ने कहा—ब्रह्मन् ! निःसन्देह हमारी कोटि-कोटि किरणें संहारक हैं। अतः मेरी स्वीकृति से आप किसी शक्ति द्वारा इन्हें खराद कर, सर्वलोक हितैषी रूप में अपने योग्य बना लें। इस आदेश से प्रसन्न पितामह ने उसी समय विश्वकर्मा को बुला उनके द्वारा निर्मित-वज्र-सान पर तेजादित्य को स्थित कर उनकी विशिष्ट प्रखर किरणें छाँट कर सानुकूल एक सहस्र [दशांश] किरणों में से आदिसूर्य को बना लिया। अवशेष रश्मियों से सुदर्शन चक्र, यमदण्ड, कालदण्ड, शिव, महादुर्गा आदि शक्तियों के विचित्र त्रिशूल, शक्त्यादि एवं कार्तिकेय के शक्ति दण्डादि निर्मित हुए। अतः 'मारुती' इसी 'परब्रह्मादित्य' के साक्षात तेज मार्तण्ड मूर्ति रूप हैं।

सर्वलोक हितैषी सहस्र किरणधारी महादित्य ही पुनः विधि-भावना से बारह नामरूपों में विभक्त हो, १२ मास राशियों में अपने विविध मण्डल के साथ विश्व में प्रसिद्ध हुए जो मूलतः एक होते हुए भी काल-भेद से नाना रूप धारण कर प्रत्येक मास में इस प्रकार तपते हैं। यहाँ मासानुसार इनके नाम दिये जा रहे हैं :—मार्गशीर्ष—मित्र, पौष—सनातन विष्णु, माघ—वरुण, फाल्गुन—सूर्य, चैत्र—भानु, वैशाख—तपन, ज्येष्ठ—इन्द्र, आषाढ़—रवि, श्रावण—गभस्ति, भादव—यम, आश्विन—हिरण्यरेता, कार्तिक—दिवाकर।

प्रचण्ड मार्तण्ड वृषाकपि—वृषाकपि रूप से प्राकृत सूर्य के सामान्य तथा असामान्य दोनों ही भावों से आप महान् उत्कृष्ट दीखते हैं। सादृश्य के कारण आप रस धराय नमः, खये, जगत्क्षेत्रे, उदधिक्रमणाय, उर्ध्वगाय, द्वादश राशिगाय, भास्वते, महाद्युतये-भास्कराय एवं विश्वात्मा विश्व सेव्योऽथविश्वो विश्व हरो रविः—आदि नामों से वन्दित हैं जो सामान्यतः प्राकृत सूर्य के एकत्व प्रतीक हैं। सूर्य-समान ही आपका भी ऊँच-नीच, रंक-धनी आदि सभी पर अभेद कृपा-प्रकाश सर्वत्र प्रसिद्ध है। सूर्य जैसे

घोरतम अन्धकार के नाशकर्त्ता एवं विश्व के मार्ग-दर्शक तथा जीवन-दाता हैं, वैसे ही मारुति-भास्कर भी ज्ञान-दान द्वारा अज्ञानांधकार से त्राता, सद्धर्मनिष्ठ भक्तों के जीवन-दाता और भक्ति-मार्ग के प्रधान पथ-प्रदर्शक के रूप में प्रख्यात् हैं। ऋग्वेद [१० म० सू० ८६] में आपका एक अलग 'वृषाकपि' सूक्त ही प्राप्त होता है, जिसमें इन्द्र-इन्द्राणी और वृषाकपि तीन व्यक्तियों के नाम आये हैं। ऐतिहासिकता एवं अन्यत्र प्रमाण आधार से मारुति ही 'वृषाकपि' प्रधान हैं। कारण भागवत [६।६] में भी रुद्रवर्ग में आपके [अन्यान्य नामों के साथ ही] वृषाकपि नाम भी संयुक्त है—रैवतोऽजोभवो भीमो वाम उग्रो 'वृषाकपिः'। 'वृषाकपि' शब्द का भावार्थ है—वृषराशि 'सूर्य' के कपि। अर्थात् द्वादश राशियों में वृष एवं मासों में वैशाख-ज्येष्ठ के लोक सूर्य [परि-लक्षण में] कितनी प्रचण्ड शक्ति से लोकतप्त हो जाते हैं, यह प्रकट है। साधारणतः सूर्य वही है जो अन्य राशि-मासों में लोक दृष्टि एवं सामाजिक जीवन में विभिन्न स्वरूप गुणों से प्रतिभासित होता है। किन्तु यही सूर्य मकर कुम्भ संक्रांति [माघ-फाल्गुन मास] में क्रमशः तीव्र रूप से बढ़ते वृष में आने पर पूर्ण प्रचण्ड हो जाता है। इस लोक सूर्य के उदाहरण से अब अनुमान लगा लें कि मारुति 'वृषाकपि' की कितनी घोरातिघोर प्रचण्डता होगी।

इसे प्रत्यक्ष उदाहरण से परिलक्षित करें। श्री राम सुग्रीव के मैत्री-संधि-समय आप अहोरात्रि संधिकालीन सूर्य के समान शांत-सौम्य दीखते हैं। और आगे समुद्रतट पर रीछपति के शब्दों से वही 'कनकभूधराकार' त्रिविक्रम रूप, विराटशरीर और रौद्र हो जाते हैं। शतयोजन प्रलम्ब समुद्रोल्लंघन में आप साक्षात प्रखर प्रभा मण्डल-युक्त भास्करवत् सुशोभित होते हैं। आप ही क्रमशः 'ऋग्वेद' वर्णित अरणी से प्रकट होकर लङ्का-दहन एवं रावणसहित समस्त राक्षसों के विनाश-काल में मध्याह्न काल के महाप्रचण्ड 'वृषाकपि रूप में प्रकट होते हैं—

तेज को निधान मानो कोटिक कृशानु भानु
नख विकराल मुख तैसो रिस लाल भो ॥

भूमि-जल-वायु-जनित दोष रूप—लङ्का सहित सारे निशाचर समूह को आप जलाकर भस्म कर डालते हैं। रावण-विनाश के प्रधान कारण 'वृषाकपि' ही माने गये हैं।

वास्तव में सूर्य-माला ही हमारा विश्व है और सूर्य ही हम सभी मानव-प्राणियों के लिए तेज-धृति, बल और जीवन-दाता हैं। सूर्य के आत्मा होने के कारण देवपञ्चायतनों में से प्रत्येक देव को धारणा सूर्यस्थान से ही की जाती है। इसी प्रकार विष्णु सहस्र नाम में भी आप संयुक्त हैं—

वृषाकपिरमेयात्मा सर्वं योगविनिःसृतः।

इसी भाँति हनुमदुपासनात्मक संहिता ग्रन्थों में सूर्य-मण्डल के स्थान पर एकमात्र मारुति की ही दिव्य धारणा वर्णित है। सूर्य गोल से भी सौर प्राण अथवा महिमा-मण्डल जैसे अत्यधिक विशाल है उसी भाँति हनुमान की शरीराकृति से की इनके महाप्राण तत्त्वतः अनन्त विशाल हैं।

आध्यात्मिक धारणा—अव्यय, अक्षर एवं क्षर इस त्रिमूर्ति के मध्य जो अक्षर रूप सूर्य है वह प्रत्यक्षतः मारुति ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि निर्गुणाकाश रूप श्री राम ज्ञानस्वरूप अव्यय तथा भूमि रूपा सीता अर्थस्वरूप क्षर प्रकृति हैं। अतः इन दोनो के पारस्परिक सम्बन्ध स्थापनकर्ता मध्यस्थ कृपाप्रधान मार्तण्ड वृषाकपि ही हैं। इसी भाँति समष्टि-बुद्धि एवं शरीर को जोड़नेवाला जो महाप्राण है वह भी आपका ही एक प्रतिरूप है। इस प्रकार आप मोह-मद-क्रोध-कामादि-खलसंकुला तमिस्रा के लिए किरणमाली हैं।

सूर्य ग्रास रहस्य—विश्व प्रसिद्ध हनुमान एवं प्राकृत सूर्य दोनों ही सूर्य रूप हैं—बालार्काभि मुखो बालो-बालार्क इव मूर्तिमान। २४ [स्कन्द पुराण]। किन्तु हनुमान संप्रति-वृषाकपि दिव्य [एवं वृष] सूर्य हैं। तुलसी के अनुसार बालार्क कपि ने बचपन की बाल-लीला में उदयकालीन प्रचण्ड [वृष] सूर्य मण्डल को लाल फल की भ्रांति में लील लिया था।

उस महान प्रचण्ड 'उदित चण्ड' मण्डल को मुख-ग्रास बना लेने वाला क्या साधारण तेजशाली कपिशिशु है? इस आशंका का उत्तर पूर्वोक्त प्रमाणोद्धरण से हो जाता है। किन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि यह कौतुकी कपि बाल-लीला अज्ञानात्मक है या सज्ञानात्मक?

बालकपि का 'क्षुधा चरित्र' एक प्रकार से असाधारण बालविनोद के रूप में ही

विदित है। वास्तविकता यह है कि इस लीला-सन्दर्भ में कारणभूत रहस्य हैं।

[क] जिस प्रकार प्राकृत-लोक-मार्तण्ड अरुणोदय कालीन किरणों से निशांधकार का नाश कर स्वयं दिनकर रूप में समस्त जड़-चेतन प्राणियों को यथायोग्य जीवनानन्द प्रदान करते हैं उसी प्रकार विश्व-कल्याणकारी महारुद्र 'हंस-मारुति' अंजना-गर्भगुहा [पर्वतांचल] से प्रकट हो [मोह-मद-क्रोध-काम आदि अनन्त दुष्कृतियों से व्याप्त अज्ञानांधकारमयी घोर रात्रि के नाश का कार्य] अपनी विनोदमयी बाल-लीला के व्याज से 'लोक मार्तण्ड' को मुख में लेकर आरम्भ करते हैं तथा इस योग सन्दर्भ में आपकी सविज्ञानात्मक 'तमामिमान नाश की एक परमाद्भुत लीला भी प्रदर्शित है।

[ख] रुद्र के सिवा अन्य किसी भी देव में अहङ्कार नाश की पूर्ण क्षमता नहीं है। समस्त आकर्षण शक्तियों एवं अहङ्कार के प्रधान देव आप हैं—अहङ्कारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्यस्ततो भवत्। [भागवत ३।२६] और वे ही अनन्तानन्त समष्टि प्रभाशक्ति-मूर्त 'वालार्क कपि' रूप में प्रकट हुए हैं। लोक-सूर्य का जैसे अपने उदय से विश्वांधकारनाश का प्राथमिक कार्य है वैसे ही उस अन्धकार से कहीं अनन्त महाशक्तिशाली घोरतम अहङ्कार है। इसका प्रतिकार तैंतीस करोड़ देव गणों से भी परे है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण में लंकेश्वर रावण था, जो अपने महाभिमान तम से चौदहो भू-मण्डल में छाया हुआ था। प्रधानतः उसी घोरतम महाभिमान के नाश के लिए आपका असाधारण अवतार हुआ है।

इनकी महानता एवं अवतार-कारण की प्रशंसा [रुद्रयामल] भगवान शिव ने स्वयं शिवा से की है—

हनुमान स महादेव काल कालः सदाशिवः।
चिद्रूपी च जगत्रूप स्तथा रूप विराड्भूत ॥
अंजनी गर्भ संभूतो वायुरूपी सनातनः।
रावणस्य वधार्थाय रामस्य च हिताय च ॥

अतः पूर्वोक्त भावानुसार आपका आकाशीय सूर्य रक्त फल भक्षण के भ्रम से जाना प्रकृति-जन्य-अहङ्कार-तम-नाश का प्रधान हेतु था। आपने योग वशात् एक साथ रवि, राहु, इन्द्र एवं वज्र इन चार अहङ्कारियों का मद नाश किया है। वास्तव में

सूर्य को अपने प्रखर तेज एवं गति का महान् गर्व था। सूर्य का गर्व चूर हो गया। तुलसी ने कहा है— जाको बाल विनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को।

राहु को इस बात का गर्व था कि विशाल तेजमय सूर्य-मण्डल को ग्रसनेवाला त्रिलोक में सबसे बड़ा सामर्थ्यवान मैं ही हूँ। किन्तु राहु का यह महान् दर्प नष्ट हो गया। हनुमान के वज्रमय पुच्छ-प्रहार से स्वाभिमान नष्ट हो गया। एक बार नहीं, अपितु दो बार किसी प्रकार से प्राण-रक्षा में भागना पड़ा। इसी प्रकार 'इन्द्र' को अपने देवराज तथा महाबलशाली शत्रुसालक होने का महान् गर्व था। वह 'राहु' की ही भाँति वायुनन्दन के विकराल वज्र पुच्छ प्रहार से ऐरावत सहित अतीव पीड़ित हो गया। उसका सारा मोहाभिमान क्षण मात्र में ही मिट्टी में मिल गया। अन्ततः प्राण-सङ्कट से उसे आत्म-रक्षार्थ वज्र-प्रहार करना पड़ा। वज्र को भी अपनी अमोघता एवं इन्द्र के आश्रय के कारण स्वामी से भी अधिक गर्व था। वह समझता था कि इन्द्र के हाथ से छूटते ही इस वानर वीर बालक का प्राण ले लूँगा। किन्तु प्रतिफल में वह आंजनेय के वज्रमय हनु के आघात मात्र से ऐसा पराभूत हुआ कि— 'जाकी चिबुक चोट चूरन किय, रद मद कुलिश कठोर को'। उसका सारा मद चूर-चूर हो गया। आज भी आपकी इस बालविनोदिनो रहस्यमयी लीला को सुनकर या स्मरण से महान् धीर पुरुष ही नहीं, अपितु स्वतः इन्द्र रवि राहु भी बराबर अपने शरीर की सुधि भूल जाया करते हैं—भूलत समीर सुधि सक्र रवि राहु की। इस प्रकार भुवन-स्वामी वृषाकपि अहङ्कारियों के लिए 'व्रजादपि कठोराणि' रूप से नाश कारक तमोगुणी हैं। वहाँ ही शरणागत सुकृतवान सन्त दीन जनों के लिए आप 'मृदूनि कुसुमादपि' (सुमन समान सुकोमल) हो जाते हैं। इसी विशिष्ट सद्गुणी प्रकृति के फलस्वरूप आप विप्र-सुर-सिद्ध-मुनि गण के शुभाशीष रूप एवं विमल गुण-बुद्धि वारिधि-विधाता हैं।

मध्यस्थ महापुरुष—विश्व का विस्तार ही महामध्यस्थ पुरुष है। देखनेवाले विश्व-द्रष्टा के दृश्य की अन्तिम सीमा-पर्यन्त बीच में यह मध्यस्थ महापुरुष ही खड़ा है। अज्ञान से विज्ञान-सीमा तक इस मध्यस्थ 'ज्ञान पुरुष' का ही दर्शन प्राप्त होता है। हमारी मानव-भूमि से ऊपर लोकों की [सप्त लोक] सीमा सत्यलोक तक मानो

गई है। इसके (अर्थात् पृथ्वी और स्वर्ग के) मध्य अन्तरिक्ष है, जिसके प्रधान देव 'मरुत' ही हैं। वे मरुत ही प्रत्यक्ष-भूत मारुति-हनुमान हैं। इनके त्रिविक्रम विराट रूप का प्रत्यक्ष दर्शन समस्त वानर वीरों को समुद्रोल्लंघन के समय हुआ है। पृथ्वी से स्वर्ग पर्यन्त के मध्य एकमात्र आप ही खड़े हैं—'बलवान प्रमेयश्च वायुराकाशगोचरः। आप समस्त सूर्यमाला से भी महान् हैं। आप मानव देवगणों के बीच अमानव मध्यस्थ हैं। आप अज्ञान-विज्ञान के बीच ज्ञान-रूप से भी मध्यस्थ महापुरुष हैं। वास्तविकता से उनचास मरुद्गणों के अवयव रूप मारुति ही हैं।

अग्नि मूर्ति—हनुमत्सहस्रनाम में हनुमान की प्रार्थना इस प्रकार की गयी है—अग्नये नमः, वन्हये, पावकायः, ज्वालिने, महाद्युतये, सप्तजिह्वपतये, धूमकेतवे, महातेजसे। इन नामों से स्तुत्य होने से प्रत्यक्षतः आप अग्निदेव ही सिद्ध होते हैं। ये मन्त्र भी द्रष्टव्य हैं—ॐ नमो भगवते हनुमते पवन पुत्राय वैश्वानर मुखाय [हनुमत्कवच ३५], अग्नि गर्भी-राम दूतो। [ह० पटल] तथा अग्नि कपिरुद्र उच्चते (निरुक्त १०।७।२)। वाल्मीकि ने लिखा है कि—श्री राम-सुग्रीव-मैत्री स्थापना के समय हनुमान अग्नि रूप से काष्ठ संदर्भ में प्रगट होकर योग देते हैं—

ततो हनूमान् संत्यज्य भिक्षुरूपमरिंदमः।
काष्ठयोः स्वेन रूपेण जनयामासपावकम्॥
दीप्यमानं ततो वह्निं पुष्पै रम्यर्च्यं सत्कृतम्।
तयो र्मध्येतु सुप्रीतौ निदधौ सुसमाहितः॥

आपके अग्नि रूप का परिचय आगे भी मिलता है। आप अशोक-वनस्थिता मैथिली से प्रार्थना में कहते हैं—मैथिली ! यज्ञकुण्ड में दी गई आहुति द्रव्य को जिस भाँति अग्नि ग्रहण कर उसे यथास्थान इन्द्र के पास पहुँचा देता है उसी भाँति आज्ञा-संप्राप्ति से आज ही प्रश्रवण गिरि पर विराजित श्री रघुकुल मणि के सान्निध्य में मैं पहुँचा सकता हूँ। ये शब्द अग्निरूप के ही परिचायक हैं।

ऋग्वेद के मन्त्र सूक्तों में अग्निदेव के सम्बन्ध में जिस प्रकार विस्तृत वर्णन है उसके अनुसार हमें अग्नि मारुति के अतीतकालीन अभेद सत्यस्वरूप का साक्षात् दर्शन होता है। इसके अन्तर्गत कर्म, ज्ञान, उपासनात्मक, आधिभौतिक, आधिदैविक,

आधियाज्ञिक एवं आध्यात्मिक आदि तत्वों का विभिन्न दृष्टिकोणों से ओत-प्रोत विशिष्ट भाव प्राप्त होता है।

याज्ञिक दृष्टि से अग्नि ही देव मानवों का अध्यस्थ मित्र तथा देवगणों का सर्वश्रेष्ठ विरक्त दूत है—

विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूत मक्रत ।
श्रुष्टो देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥ [ऋ० ८।२३।१८]

इस भूमण्डल में समस्त मानव समाज के उत्थानपथ का प्रदर्शक, मित्र तथा केन्द्र अग्नि ही है। यह महर्षि गौतम का वायु-प्रेरित वैश्वानर पहले अप्रसिद्ध एवं अव्यक्त बली था। यजमान याज्ञिक के दूत रूप से जिस समय वह प्रकट हुआ उस समय इसके दिव्य तेज से सभासद ही नहीं, अपितु समस्त देव-समाज ही चकाचौंध से आकृष्ट हो उठा। सर्वप्रथम यह रुद्र-वसु पवन से पुरस्कृत हुआ। वह अपनी वायुगति से क्रमशः उठता हुआ अन्तरिक्षगामी हो गया।

वायु-प्रेरित बुद्धिवर्गों में सर्वश्रेष्ठ, महाबलशाली, देवमानव-संपूज्य तथा बालार्क-सम महान ज्योतिरूप अग्निदेव अपने प्राकट्य के साथ ही लोकाराध्य देव हो गये। इसने सर्वत्र मानव-शत्रु-दस्युओं का विनाश किया—स मानवीषु दूलभो विक्षु प्रावीर मर्त्यः दूतो विश्वेषां भुवत (ऋ० ४।९।२)।

यह विश्व व्यापक है। साधारण से असाधारण कार्यों तक में हम देव-सेवक दोनों ही रूपों में इसके दर्शन करते हैं। जाड़े के समय सभी निर्धन, वस्त्र-विहीन, वन-ग्रामादि के वासी लकड़ियों की ढेर में इसी अग्नि कृपा से जीवन-संरक्षण करते हैं। दैनिक जीवन संयापन में ये अपनी क्षमता से पाकसिद्धि भोजनकर्ता के शरीर में पोषण देने के साथ दूषित पदार्थों का निवारण करते हैं। दूसरी ओर वेदमूर्ति याज्ञिकों की यज्ञाग्नि से प्रकट हो उपास्य देव होते हैं। इस प्रकार आप ब्रह्म की भाँति निर्गुण, सगुण, दृश्यादृश्य, सौम्य, रौद्र, संहारक, रक्षक आदि अनन्त गुणों से सम्पन्न हैं। आप स्वाभाविक प्रकृति से पर्वत, गुहा, झाड़ियों, बड़वाग्नि से प्रलयाग्नि तक के रूपों में तथा आकाशीय खगोल से बुद्धि पर्यन्त भ्रमण शील रहते हैं—गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिः (ऋ० ३.१)। यहाँ अधोलिखित ऋग्वेदीय मंत्र द्रष्टव्य है :—

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परिजात वेदाः ।

तृतीयमप्सु नृमणा अजस्र मिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ (ऋ० ७।४५)

इसमें अग्नि के तीन प्रकार (रूप) हैं । वास्तव में सूर्य, विद्युत, अग्नि ये तीनों ही मारुति मूल रुद्र के ही प्रकार हैं । 'अग्निरयि रुद्र उच्चते' (निरुक्त) अग्नि रुद्रांश है तो मारुति स्वयं महारुद्रावतार हैं । श्री राम-काज के आरम्भ में प्रचण्ड मार्तण्ड समुद्रोल्लंघन में विद्युत एवं लङ्कादहन में प्रत्यक्ष प्रचंडाग्नि रूप से एक वार नहीं, अपितु (वाल्मीकि प्रचार से) कई वार नगरी को भस्म करने को प्रगट हुए । वहाँ रण-प्रांगण को ही बड़वाग्नि रूप में जलाकर भस्म कर डाला । इसी महारुद्र स्वरूप से ही आप 'कालाग्नये नमः' नाम में भी स्तुत्य हैं । प्रकृति विपरीत कार्य कारण वशात् दोनों ही घोर रूप से प्रलयकारक और विश्व संहारक होते हैं । अन्यथा विश्व संरक्षक अव्यक्त शांत, शिव स्वरूप से वनस्थित एकांत गुहाओं में (गुहाचरन्त) आत्मचिन्तन में लीन रहते हैं ।

गुहा प्रिय होने का मूल कारण यह प्रतीत होता है कि वनवासी तथा अन्धकार गुहा ही अग्नि-मारुति दोनों का जन्मस्थान है । वास्तव में गुहा शब्द श्लेष से मार्मिक गूढ़ भावार्थ का द्योतक है । यहाँ यह मातृस्थान में निहित है, जिसका सुन्दर प्रकाश जन्म सदृशता से मिलता है। दो काष्ठ के अरणी-मंथन से जैसे यज्ञस्थ की अग्नि प्रगट की जाती है उसी भाँति पुरुरवा-उर्वशी से अग्नि और अंजना मातरिश्वा से मारुति ये पृथक-पृथक अरणी रूप से प्रगट हुए हैं । यहाँ पुरुरवा और मातरिश्वा नाम भेद-सा है । किन्तु ध्वनि एक ही दीखती है—त्वमग्ने मनवे द्याम वाशय (ऋ० १।३१।४) । अर्थात् दोनों के प्रधान जनक वायु ही हैं—

ऋतावानं यज्ञियं विप्र मुक्थ्य मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।

तं चित्रयामं हरि केशमी महे सुदीति मग्निं सुविताय नव्य से ॥

(ऋ० ३।२।१३—१०।४६।९)

इस प्रकार मातरिश्वा (वायु) द्वारा उत्पन्न अग्नि अप्रतिम बल-प्रज्ञा-सर्वज्ञ-विलक्षण, स्वतंत्रकर्त्ता, महाचतुर विद्युत गतिशील, आनंद रूप आदि दिव्य गुणों से मूर्त प्रगट हुए जो स्वरूप में पिंगल वर्णीय, पिंगकेशी, उत्कृष्ट दंष्ट्रा स्वर्ण कांति, महातेजस्वी तथा

दर्शनीय मूर्ति थे। मारुति भी ऐसे ही हैं---

वज्रांग पिंग केशाढ्य स्वर्ण कुण्डल मंडितम् ।
निगूढ़ मुप संगम्य पारावार पराक्रमम् ॥ (इ० क०)

शरीर दिव्यता से दोनों ही 'तनतुपात' अर्थात् शरीरधारी अयोनि-सम्भव और स्वयंभू प्रकट हुए हैं।

मारुति नाम—कब किस प्रकार पड़ा। धरती पर प्रगट होते ही आप प्रबल क्षुधा से व्याकुल होकर रो रहे थे। माता अंजना ने रुदन चुप करते हुए कहा— मारुद अर्थात् मत रो। यह प्रथम नाम है। मारुद से मारुत हुआ। मरुतसुत होने के कारण भी आपका नाम मारुति हो गया। तुलसी ने लिखा है—मारुत सुत मैं कपि हनुमाना।

आकाशरूप अंजना महायोनि में वायु-संचार से ही तीसरे महदद्भुत तेज (अग्नि) रूप में प्रगट तात्त्विक तेज ही मारुति हैं। वेदांत-वर्णन से अग्नि के जैसे दो पिता पुरुरवा और पवन माने गये हैं वैसे ही मारुति के केसरी तथा मातरिश्वा (वायु) दो पिता हैं। इसी प्रकार माता में दो प्रधान अंजना एवं मार्गारिस्या हैं। वहाँ अग्नि की भी दो मातृकाएँ (रक्षिकाएँ) मानी गई हैं। नासदीय सूक्त के अनुसार महाभूत से तृतीय भूत तेज के प्रकट होने के पूर्व तक समस्त विश्व अन्धकार मय ही था। 'तम' से दृष्टि खुलते ही दिव्य तेज प्रगट हुआ। उसी प्रकार ध्यानस्थ अंजना के नेत्र खुलते ही गोद में मरुताग्नि दिव्य तेज मूर्ति दर्शित हुए। यहाँ तम व्योम (आकाश) और अंजना एक सी ही हैं। अग्नि और मारुति दोनों ही सूर्योदय समय (जब कि ऊषा सूर्य को लेकर आती है) विश्व में प्रगट होते हैं (ऋ० १०।११।३—१०।१।६)।

यह प्रसिद्ध है कि जन्म लेते ही आप विद्युत गति से आकाशीय सूर्यमण्डल कि ग्रस लेते हैं। ठीक इसी भाँति वैश्वानर अग्नि भी जन्म ग्रहण करते ही द्यावा-पृथ्वी-तेज से व्याप्त हो सूर्य-किरणों को प्रतिबंधित कर देते हैं—

कृष्णां यदेनीमभिवर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दियोवसुभिर रतिर्विभाति ॥ (ऋ० १०।३।२)

भूतल के दिव्य दूत—भारतीय संस्कृति के आदि संरक्षक एवं दिव्य लीला नायक

इन दो महापुरुषों के परमाद्‌भुत बाल्यकाल के इस विलक्षण कार्य से सद्‌विचारानुगामी पुरुषों को आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता है। अनन्त पराक्रमी अग्नि की द्यावा-पृथ्वी के समान शक्तिशालिनी कामधेनु जैसी माँ थी। उसके रहते उसके स्तन-पान की जरा भी प्रतीक्षा न कर सद्यःजात अवस्था में ही पुत्र आकाशचारी हो गया। क्या यह अकारण था ? धर्मनिष्ठ तीर्थ यात्री किसी पुण्य क्षेत्र में पहुँचने पर सर्वप्रथम क्षेत्राधिपति के दर्शन को अपना कर्तव्य मानता है। विशिष्ट सेवाधिकारी अपने नियुक्ति-स्थान के सेवापद-स्थान को ही प्रधान मानता है। उसी तरह यहाँ मंत्रसूक्त कहता है कि माँ के दुग्ध-पान या उसकी ममता में आवद्ध होने से कहीं अधिक जीवन-हेतु का परम मूल्यवान कार्य था अविलम्ब ही अपना भूतल-दूत-पद प्राप्त कर लेना—महिदूत्यं चरन्। यहाँ यह मंत्र द्रष्टव्य है—

चित्र इच्छिशोरतरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे।
अनुधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं चरन्॥

(ऋ० १०।११५।१)

अग्नि और मारुति दोनों ही माता के स्तन-पान की किंचिन्मात्र भी परवाह न कर आकाशगामी हो गये। यह अपनी लक्ष्य-प्राप्ति का सुन्दर आदर्श है।

अग्नित्रयी—'द्यावा पृथ्वी जनयन्त्रिलोकः' की यह दीर्घ उडान शोभा वर्धक मात्र नहीं है। इस प्रसंग में ऋग्वेद का यह मंत्र द्रष्टव्य है—

तिस्रो यह्वस्यसमिधः परिज्मनोऽग्ने रपुनन्नु शिजो अमृत्यवः।
तासा मे कामधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उपजामि मीयतुः॥

(ऋ० ३।२।९)

आपने देव (द्यावा), पृथ्वी, अन्तरिक्ष इन तीन स्थानों में अग्नि के तीन रूप प्रकट किये। तभी से इस अग्नित्रयी की उपासना समाज में रूढ़ हुई। पूर्व प्रकट आपके बांधवभूत दो अग्नि अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में ही रह गये और आप मानव लोक-संरक्षक अग्नि पार्थिव रूप से भूलोक में अवतरित हुए। इस अग्नित्रयी के प्रागट्य एवं उपासना के योग सम्बन्ध से त्रेता युग नाम लोक प्रसिद्ध हुआ। जिस युग में ऋषियों की प्रवृत्ति यज्ञ में हुई वही त्रेता युग है। यह मत मुण्डकोपनिषद् का भी है। लिखा भी है—

तदेतत्सत्यं मंत्रेषुकर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि ।
(१।२।१)

पूर्व वर्णित गुहाप्रियः का निष्कर्ष यह है कि वन-गुहा, अरणी भी एक गुहा ही है जो जन्मस्थली रूप में प्रतीक है। इसके अतिरिक्त 'आत्मास्य जंतोर्निहितो गुहायाम्' (कठ० उ० २।२०)। ज्ञानाग्नि की गुहा हृदय है और वैश्वानर की गुहा जठर है— इदं वैश्वानराख्यं ज्योति जाढरूपेण वर्तते (ऋ० सा० भा० ६।६।४)।

यज्ञ पुरुष—अग्नि 'हव्यवाहन और होत्र वाहन' आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। देवों का बलवर्धक हवि जहाँ उन्हें पहुँचाने वाला है वहाँ ही उन्हें मानव-लोक का अधिराज माना गया है। जो समस्त मानव समाज का 'अग्निं मंये पितरमग्नि मपि अग्नि भ्रातरं सदमित्सखायम्' (ऋ० १०।७।३)। सभी रूप से परम हितैषी हैं। यह समस्त आधि व्याधि, घोरातिघोर, भूत-प्रेत, राक्षसादि बाधाओं का नाश करता है।

इस ब्रह्मांड सृष्टि-यज्ञ का मुख्य देव एवं परब्रह्म का मुख अग्नि नारायण हैं। इस सर्वदर्शी-यज्ञ-पुरुष देव के प्रसाद से अन्यान्य सारे देवों की प्रसन्नता की प्राप्ति का साधन सुलभ हो जाता है। शास्त्रविहित सभी व्यष्टि-समष्टि कर्मों में न्यूनता की पूर्णता के ये प्रधान आचार्य हैं। लोक-वेद तथा मानव देव के मध्यस्थ मैत्री-कर्ता, मार्गच्युत-उपासकों को सुपथ मार्गदर्शक एवं आपोद्धारक संरक्षक जीवन दाता हैं। तत्त्वतः अग्नि-सोमात्मक जगत है। छांदोग्य के अनुसार जगत की उत्पत्ति अग्नितेज द्वारा ही होती है। इसकी सर्वोत्कृष्ट महानता इससे भी सिद्ध है कि—

विद्वाँ अग्ने वायुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसेधाः।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट ॥ (ऋ०, १।७२।७)

ऐसा विद्वान वायुसुत अग्नि-यज्ञ-गृहीत हवि अपनी बजाय अन्यान्य देवगणों की पूजा में अर्पित कर देता है। देवयान जाने वाले समस्त मार्गों का भलीभाँति जानने वाला प्रधान देव-दूत आप ही हैं। अधिक क्या, ज्ञानी-अज्ञानी सभी जनों के लिए ही परब्रह्म परमात्मा के इस प्रकार ऋग्वेद-वर्णित अग्निदेव के सारे चरित्र सत्यतः हनुमान के बीजभूत चरित्र ही हैं। वस्तुतः अग्नि आपकी ही प्रतिकृति हैं जो विराट रूपी सर्वदेव रूप हैं—

सहस्र मूर्धा सहस्रास्यः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
जयोऽजेय परीवारः सहस्र वदनः कविः ॥ (ह० स० नाम)

महावीर – सेनानिभ्यश्चवोनमो (४।१०) । नमः शूरायचा वभिन्दते च (६।१२ रुद्र) । यह रुद्र मन्त्र-महिमा विश्व-विदित है । शूरों के आदर्श मुख्यतः 'स्कन्द' और 'मारुति' हैं । यद्यपि दोनों के ही जननी-जनक में भेद है, किन्तु तत्वतः स्कंद-मारुति अभेद रुद्र रूप हैं । हनुमान का, संहिताओं के अतिरिक्त, कोई प्रत्यक्ष पुराण नहीं दीखता, किन्तु 'स्कंद पुराण' एक प्रकार से आपके भी संभाग का ही दीखता है । इसके अन्तर्गत हनुमज्जन्म-माहात्म्य और उपासना आदि का भी वर्णन प्राप्य है । इनके जन्म में भी पूर्ण सादृश्य है । दोनों के जन्म में रुद्र, अग्नि और वायु का संयोगांश प्रधान है । जन्म-स्थान भी वन गुहा है । दोनों ही अपनी माता के प्रथमज पुत्र एवं स्वयंभू हैं । स्कंद शिवा की दाहिनी-कुक्षि को विदीर्ण कर शक्ति, शूल, अंकुश आदि शस्त्रायुधों को लेकर प्रकट हुए । मारुति भी यज्ञोपवीत, मौंजी, मेखला, कोपीन, जटाजूट धारण किए और कर्ण में कुण्डल लिए, ब्रह्मचारी वेष में माता अंजना के कर्ण (कान) द्वार से प्रादुर्भूत हुए ।

बाल्यकाल में दोनों का इन्द्र के साथ प्रथमतः युद्ध और फिर मैत्रीभाव हुआ । वज्राघात के प्रायश्चित्त में इन्द्र द्वारा मारुति (का नाम) हनुमान एवं स्कंद विशाखा नाम से प्रसिद्ध हुए । प्राथमिक जीवन में दोनों ही अति चञ्चल और उपद्रवी स्वभाव के थे ।

दुष्कृतियों के निरोध एवं संत-सुकृतिवानों के संरक्षण की भावना से विश्व में स्कंद-मारुति जैसे महावीर सेनानी और शूर कुमार ब्रह्मचारी रूप में प्रगट हुए । दोनों का ही मुख्य विषय युद्ध था । स्कंद इन्द्र के और हनुमान पुरुषोत्तम रघुकुलेश श्री राम के परम प्रिय तथा अनन्य सेवक बने ।

वास्तव में चिदात्मा का निग्रहानुग्रह समर्थ जो व्यक्त अथवा अवतरित अंश है वही महावीर हनुमत्स्वरूप है, जिनमें रुद्र स्वरूप रावणांशी और शिव-स्वरूप-रामांशी सुसंबन्ध का दर्शन होता है । देह-दृष्टि से पशुरूप और आत्म-दृष्टि से रामरूप होने से आपके द्वारा नास्तिकवादियों से लेकर, अद्वैतानुभूति पर्यन्त समस्त दर्शनों एवं विचारों की श्रृङ्खला जोड़ी जाती है । इसके साथ ही शैव-वैष्णव धर्म, द्वैताद्वैत दृष्टि, निर्गुण-

सगुण भाव, एवं पशुरूप (शरीर) में 'पशुपति' का अवतरण ऐसा विलक्षण समन्वयात्मक स्वरूप है महावीर परम पराक्रमी हनुमान का।

प्राण-मारुति—इस संदर्भ में शरीरस्थ प्राण की उपादेयता और प्राण के साथ मारुति के सादृश्य का वर्णन है। सभी जानते हैं कि प्राण ही शरीर का एकमात्र स्वामी है। इसके बिना कोई जीवित नहीं रह सकता। छान्दोग्य एवं मुण्डक उपनिषदों में प्राणोपासना की महत्ता का विस्तृत वर्णन है। प्राण की महिमा सर्वोपरि है। सभी वायुओं में प्राण ही प्रधान है। गर्भस्थ जीव में प्राण पहले आता है। बाद में अन्यान्य अवयवों की सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने स्थानों में व्यवस्थित हो जाती हैं और प्राण (वायु) संचार के आश्रय से ही कार्य-रत होती हैं। इन्द्रियाँ स्वतः गर्वनिष्ठा हैं। अतः पारस्परिक स्पर्धा से एक दिन ईर्ष्याग्नि भड़क उठना स्वाभाविक ही है। एक बार वाणी, नेत्र, कर्ण आदि सभी इन्द्रियाँ सम्मिलित हो अपनी श्रेष्ठता में वाद-ग्रस्त हुईं और निर्णय के लिए प्रजापति ब्रह्मा के पास जा पहुंचीं। ब्रह्मा ने कहा कि जिस इन्द्रिय के शरीर से निकल जाने पर वह शरीर निष्क्रिय शवरूप हो जाय वही तुम सब में सर्वश्रेष्ठ मान्य है। इस निर्णय से सभी प्रसन्न हुईं। अपनी श्रेष्ठता के प्रदर्शन में सब से पहले वाणी ने भाग लिया। फलतः व्यक्ति वाणी-विहीन गूँगा हो गया, किन्तु उसका जीवन सक्रिय बना रहा। वाणी का गर्व नष्ट हो गया। इसी प्रकार क्रमशः सभी इन्द्रियों ने चेष्टा की और विफल हो गईं। अन्त में विधि-प्रेरणा से प्राण ने अपने आप को शरीर से हटा लिया। सारी इन्द्रियाँ मृत हो गयीं और प्राण देव के चरणों में आत्म-समर्पण कर बोलीं—देव ! आप हमारा त्याग न करें। सत्यतः आप ही अधिष्ठाता और पूज्य हैं। हम सब आपकी प्रजा हैं। अब तक हम सब में जो अपनी-अपनी वरीयता का अभिमान था वह आज पूर्णतः चूर-चूर हो गया। मुख्य प्राण विशुद्ध निर्विकारी ब्रह्म रूप है। मुख्य प्राण अतीव श्रेष्ठ और विशुद्ध माना गया है। अग्नि स्थानवासी होने से भी यह सारे पापों को आरम्भ में ही वैसे ही भस्म कर देता है जैसे—वशिष्ठ के ब्रह्मदण्ड ने युद्ध में विश्वामित्र के सारे शस्त्र-प्रहार को निष्फल बना दिया था। यह निरपेक्ष स्वतंत्र रूप होने से न सुगन्ध-दुर्गन्ध से ही सम्बन्ध रखता है और न किसी दूषित गुण वृत्तियों से ही कभी विद्ध हो सकता है।

यह वज्र रूप और अजेय है। जैसे कठोर पत्थर पर गिरनेवाला कच्ची मिट्टी का घड़ा गिरते ही चकनाचूर हो जाता है वैसे ही तामसी वृत्ति के सारे दुराचारी असुर-समूह इस प्राण से टकराते ही समूल नष्ट हो जाते हैं।

बृहदारण्यक, कौषीतकी और प्रश्नादि सभी उपनिषदों में 'प्राण' का असाधारण महत्त्व-वर्णन किया गया है। वायु ही प्राण है। वह समस्त भुवनों में अनन्त रूपों में व्याप्त हैं—'वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' (छान्दोग्य ३)। मारुति उसी समष्टि प्राण वायु के सगुण प्राण मूर्त्त हैं। 'महाशैल गुहावासा वानराः कनक प्रभाः' (बाल्मीकि) के अनुसार 'प्राणा' भी मानव-हृदय-गुहावासी है। प्राण के सम्बन्ध में 'कलावन्नगताः प्राण' ये शब्द चिर सत्य हैं। मारुति की क्षुधा प्रसिद्ध है। प्राण और अन्न का लगाव स्वाभाविक है। यह लगाव क्षुधा-प्रतीक है। माता सीता के सम्मुख प्रथमतः तो हनुमान ने भूख को दबाकर ही रखा, किन्तु कार्य सिद्ध होते ही उन्हें माता से कहना ही पड़ा—

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा।
लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥

अन्नाश्रय से ही प्राण शरीर में स्थित है। अन्न बिना प्राण सूख जाता है। शरीरस्थ प्राण जैसे अन्नाश्रयी है वैसे ही प्राणाश्रयित मन है—'प्राणबंधनं हि सोम्य मन इति' (छांदोग्य)। डोरी से बंधे पक्षी के समान प्राण-बधन से आबद्ध मन की दशा है। वे प्राण-मारुति के बन्धन में ही हैं। सुग्रीव के संरक्षक रूप से उसके संकल्प-विकल्पात्मक समस्त सन्मार्गों के एक मात्र सच्चे मार्ग दर्शक मारुति ही हैं। 'प्राण' की ही भाँति मारुति भी 'तारक-मारक' दोनों ही गुण सम्पन्न हैं। सुग्रीव-विभीषणादि के आप हितैषी रक्षक हुए और बाली एवं रावण सहित राक्षसों के मारक हुए। ब्रह्मांड पुराण में राम ने हनुमान की स्तुति में कहा है—

ज्ञानदः प्राणदः प्राणो जगत्प्राणः समीरणः।

तुलसी ने भी लिखा है—

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना।
राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥

वाल्मीकि के अनुसार रामकाज (सीताशोध) में दक्षिण दिशा की ओर जानेवाले एक लाख वानर-वीरों में प्रधान यूथाधिपतियों में नल-नील, दुविद-मयंद, ऋक्षराज, अंगदादि के साथ हनुमान भी थे। सभी दुरूह घोर जङ्गलों में शरीरसुधि भूले राम काज में लवलीन हो रहे थे। अकस्मात् दिग्भ्रान्त होकर वे जल-विहीन क्षेत्र में वहुत दूर चले गये। श्रम और ऊष्मा से क्लान्त होकर सभी व्याकुल थे। जल के विना वे मरणासन्न हो गये। वहाँ हनुमान ने पर्वत-शिखर पर चढ़कर चारो ओर दृष्टिपात किया। एक गुहा से उन्होंने जल सिंचित अनेक पक्षीगणों को बाहर निकलते देखा और सोचा कि भीतर कोई वड़ा जलाशय है। यह निश्चित कर वे नीचे आ गये। उन्होंने सभी वीरों को उस विवर में प्रवेश करने को प्रेरणा दी। किसी को भी आगे चलने की हिम्मत न थी। यह देखकर वे स्वयं वानराणामधीश-रूप से अग्रसर हो गये। सारे वीर गणों को एक दूसरे को पकड़े हुए अन्धकार में एक योजन का मार्ग पार करना पड़ा। सभी जीवन से निराश हो रहे थे। प्रकाश में पहुंचते ही विशाल जलाशय में वहाँ की अधीश्वरी देवी की सहायता से हनुमान ने सभी को यथेप्सित जल पिलाकर प्राण की रक्षा की। दूसरा प्राण-सङ्कट का अवसर सुग्रीव द्वारा घोषित कार्यावधि की समाप्ति पर आया। वहाँ भी हनुमान ने ही सबकी रक्षा की। इसी को स्मरण कर जाम्बवान कहते हैं—

जानकी प्राण दाता च रक्ष-प्राणापहारकः।

इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया है—

लक्ष्मण-प्राण-दाता च सीता जीवन हेतुकः।

दोनों के प्राण-दाता एवं रक्षक एक मात्र आप ही हैं।

लङ्का रणस्थल में मेघनाद के मायिक युद्ध से करोड़ वानर सेनानी हताहत हो गये। युद्धविराम के समय रात में विभीषण जाम्बवान की खोज कर रहे हैं। मिल-कर दोनों परस्पर कुशलादि पूछते हैं। जाम्बवान पूछते हैं कि हे लंकेश, इस समय अधिक क्या? मैं अपनी आँखों से तुम्हें भली-भाँति देख भी नहीं सकता? एक मात्र शब्दों से ही जान सका हूँ। इस दशा में भी मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं है। केवल मुझे एक बात बताओ कि जिस पुत्र को जन्म देकर अंजना सुपुत्रवती एवं पवनदेव सुपुत्रवान

हुए। ऐसे वानरों में परमश्रेष्ठ वीर हनुमान प्राण धारण करते कहीं जीवित हैं ? इस प्रश्न से आश्चर्य चकित विभीषण वोले—आर्यवर ! आप आर्य प्रधान देवदेवेश्वर श्री राघवेन्द्र, लक्ष्मण एवं सुग्रीवांगद आदि वानर श्रेष्ठ वीरों को छोड़कर एक मात्र हनुमान के ही प्रति इतने व्याकुल एवं चिंतित क्यों हो रहे हैं ? ऋक्षराज वोले—विभीषण ! हनुमान की वास्तविकता का रहस्य मैं जानता हूं। हम सभी गौण हैं। इसका कारण मैं तुम्हें सुनाता हूँ। इस मायिक युद्ध में हमारे असंख्य वीर हताहत हुए हैं। इस पृथ्वी पर कहीं भी मारुत प्रतिमा 'मारुति' जीवित है तो हम ६७ करोड़ अपने वीरों को मृत नहीं समझते।

धरते मारुतिस्तात मारुत प्रतिमो यदि।
वैश्वानर समो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत ॥ (बाल्मीकि, २३)

समस्त वानर जाति (शरीर) का एक मात्र प्राणनाथ कपीन्द्र है। अतः उस महा-वीर्यवान के जीवन से हमें सब के जीवन की पूर्ण आशा है। उनके विना हम सभी जीते हुए भी मृत-समान ही हैं। इसलिए प्राण-मूर्ति हनुमान के दर्शन-मिलन के लिए हमारा हृदय अतीवाकुल हो रहा है। तभी वीर मारुति भी वहीं आ पहुँचे। वे प्रणाम करके वोले—आर्यवीर, आपकी अनन्त स्नेह-भावना से मैं जीवित हूँ। ऋक्ष-पति आनन्द-विभोर होकर मिले। उन्होंने कहा—कपिशार्दुल, इस समय समस्त वानर वीरों के एकमात्र प्राण-सखा तुम्हीं हो। तुम्हारे ही समर्थ विक्रम से सभी को पुनः जीवन प्राप्त होगा। अतः द्रोणगिरि शीघ्र लाकर उसके द्वारा संप्राप्त यथायोग्य वूटियों से प्राण-दान कर सभी को स्वस्थ करो।

इनके दर्शन मात्र से रणस्थल में समस्त वीरों को जीवन-शक्ति मिलती थी।

लङ्का विजयोपरांत राजदरवार में श्री प्रभु ने ब्रह्मर्षि अगंस्त्य से इस प्रकार कहा कि जिस प्रकार मानवों के समस्त विशिष्ट गुण एकमात्र-प्राण के ही आश्रय से पूर्ण सार्थक होते हैं उसी भाँति शौर्य, दक्षता, बल, वुद्धिमत्ता और राजनीति आदि गुण हनुमान पर ही आश्रित प्रतीत होते हैं—

शौर्यं दाक्ष्यंवलं धैर्यं प्रज्ञतानय साधनम।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृता लयाः॥

अनुमोदन करते ऋषिवर बोले—हे रघुश्रेष्ठ, हनुमान के प्रति आपके सारे विचार पूर्णतया सत्य हैं। वास्तव में बल, गति या बुद्धि में इनकी समता करने वाला ब्रह्मांड में कोई वीर नहीं है। कारण, प्राण ही प्रज्ञा है और प्रज्ञा ही प्राण है। इन दोनों में केवल नाम भेद है—'यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः' (कौषीतकी ३।४)। इसे ही संयुक्त रूप में 'प्रज्ञात्मा' कहते हैं। अतः वास्तव में 'प्रज्ञात्मक प्राण' रूप हनुमान ही हैं।

—:※:—

हनुमद् विरुदावली

भमत विपति भंजन सुखदायक—पुत्र वही जो पिता का, और भक्त वही जो अपने आराध्येश्वर भगवान के सत्यादर्श का पालन करे। श्री राघवेन्द्र के इसी सेवा-व्रत का पूर्णतया पालन के लिए भगवान रुद्र मारुति अनन्त रूप से चिरंजीवी हैं। आप दैहिक, दैविक, भौतिक त्रिताप पीड़ित दीन-हीन-निरावलम्बी जनों के सारे भयों के हरण के लिए सदैव तत्पर रहते हैं—भक्तोदयो भक्तलब्धो भक्त पालन तत्परः। जनमन-रंजन मारुति की भक्तवत्सलता अनुपमेय है। जहाँ कोई भी असहाय का रक्षक नहीं है वहाँ स्मरण मात्र से ही सर्वव्यापी भगवान की भाँति भयभीत व्यक्ति के आपदोद्धरण के लिए व्यक्ताव्यक्त रूप से आप आ खड़े होते हैं।

कह तुलसीदास सेवत सुलभ, सेवक हित संततनिकट।
गुन गनत, नमत, सुमिरत, जपत, समन सकल-संकट-विकट॥

पवन कुमार सेवा करने पर बड़ी सुलभता से प्राप्त होने वाले, सेवकों के कल्याण के लिए सदा पास ही रहने वाले तथा गुण गाने, प्रणाम करने, स्मरण या नाम जपने मात्र से भयानक संकटों को नाश कर देनेवाले हैं। जिसके हृदय में आपकी मूर्ति बसी है उस पुरुष के समीप दुःख पाप स्वप्न में भी नहीं आते—

संताप पाप तेहि पुरुष पहिं, सपनेहुं नहि आवत निकट।

आप अपनी बात के पक्के, हठीले और धीर हैं। यह आनन्दमयी मूर्ति के स्मरण

का प्रगट प्रताप का फल है कि—सारे सङ्कट-शोक-चिंतादि स्वाभाविकतया नष्ट हो जाते हैं। वास्तव में जिस भक्त पर कल्याण-खानि मारुति की कृपा दृष्टि हो गई है उस पर उमा-महेश्वर लक्ष्मण सहित श्रीराम और मातेश्वरी जानकी की भी कृपा सानुकूलता प्राप्त हो जाती है। वास्तव में आपके समान भक्तों को आनन्द देने वाला, शत्रुगणों का नाश करनेवाला तथा जबरदस्त खलों का मुख तोड़ने वाला दूसरा कौन है ? जिस सुभट शिरोमणि का अनन्त पुरुषार्थ गाथा वेदपुराणों में भी प्रकट है। आप 'उथपे थपन हैं। दुष्ट अत्याचारियों के द्वारा राजवैभव आदि जीवन सुखों से उखाड़ फेंके गये सुग्रीव, विभीषण, पांडव आदि समस्त दीन भक्तों को पुनः आपने ही अपने स्थानों में बैठाल दिया। इसके विपरीत (थपे उथपन) वाली, रावण एवं कौरवादि जैसे सिंहासनाधीश अभिमानियों को, उनके स्थान से आपने उखाड़ फेंका। समुद्रोल्लंघन, लङ्का दहन, संजीवनी आनयन आदि कार्य जो सर्वथा असम्भव समझे जाते थे उन्हें भी आपने ही सम्पादित किया। बन्दी रावण से प्रतिबन्धित सारे लोक पाल देव गण ही नहीं, अपितु विश्व के कितने ही विशिष्ट राजकुमारों को बन्दी गृह में वर्षों से असह्य दुःख पीड़ित अवस्था से मुक्त कराने वाला आपके सिवा और कौन महावीर है ? जिसको आप एक बार स्थापित कर देते हैं या जिस पर आपकी कृपा हो जाती है उसे अन्य देव क्या शङ्कर भी नहीं उखाड़ सकते हैं। जिस बने बनाये घर को आपने नष्ट कर डाला, फिर किसी की सामर्थ्य नहीं कि उसे पुनः जैसे का तैसा कर दे। गरीब निवाज के कृपापात्र भक्त तो सदैव शत्रुओं के हृदय में पीड़ा रूप होकर विराजते हैं।

तेरे थपे उथपैन महेस, थपै थिर को कपिजें घर घाले।
तेरे निवाजे गरीब निवाज विराजत बैरिन के उरसाले ॥

यह मूल कारण है कि धर्मार्थकामापवर्गद विभु कपि-केसरी-किसोर रण-बाँकुरे की सेवा करनेवाले सदा अभय रहकर आनन्दमङ्गलमय जीवन व्यतीत करते हैं। आप अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टोडी, पक्षी, युद्ध आदि महान भय तथा ग्रह, प्रेत, चोर, अग्नि, रोग, महामारी आदि के नाशकर्ता हैं। आप शत्रुओं द्वारा किए जाने वाले सारे यंत्र मंत्र, मारण-मोहन, उच्चाटनादि अभिचारों के भी ग्रासकर्त्ता हैं। आप कृत्या देवियों तथा शाकिनी-डाकिनी-पूतना-भूत-प्रेत-पिशाच वैताल आदि जनित सभी आपत्तियों के

हर्त्ता हैं।

जयति पर जंत्र मंत्राभिचार-ग्रसन-कारमन-कूट-कृत्यादि हन्ता।

साकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-वैताल-भूत-प्रमथ - जूत हन्ता॥

भगवान श्रीराम ने ब्रह्मांड पुराण में आपके विषय में कहा है—

दुष्टग्रह निहंता च पिशाच ग्रहघातकः।

वालग्रह विनाशी च धर्मनेता कृपाकरः॥

राम ने स्वयं आपको सर्व संकट मोचन-कर्त्ता कृपालु धर्माध्यक्ष मानकर संस्तुति की है।

भव धन्वंतरि वैद्य—वास्तव में हनुमान भौतिक, आध्यात्मिक दोनों के ही श्रीप्रभु राम प्रतिपादित सर्वोत्कृष्ट दिव्य धन्वंतरि हैं। श्री लक्ष्मण एवं वानर वीरों की आपने संजीवनी से प्राण रक्षा की मर्यादा पुरुषोत्तम ने (भ० पु०) सुग्रीव एवं विभीषण द्वारा हनुमदोपासना कराकर सर्वापत्ति से विमुक्ति सुख-शांति की प्राप्ति की। इस प्रकार आप जानकीपति पूज्य हैं, और जानकीपति सेवक भी हैं। भगवती शिवा ने विश्व त्राण के लिए भगवान शंकर से प्रश्न किया। उत्तर में भगवान ने श्रीराम के ही उद्धरण से कहा कि—एकमात्र सर्वतन्त्र मंत्र विद्या-विशारद-वायु पुत्र कपिनाथ का कवच ही सर्वापत्ति से संरक्षण देनेवाला है—

विभीषण रामेण प्रेम्णा दत्तं च यत्पुरा।

कवचं कपि नाथस्य वायु पुत्रस्य धीमतः॥

महर्षि अगस्त्य विश्व में तन्त्रमन्त्रों के परमाचार्य एवं मारुति के उपासकों में प्रधान हैं। उन्होंने (अ० सं०) अपनी स्त्री लोपामुद्रा को भी हनुमदोपासना की दीक्षा दी थी। द्वापर में आर्त कृष्णा (द्रौपदी) की अतीव प्रार्थना पर भगवान कृष्ण की प्रेरणा से द्रौपदी ने हनुमद् व्रतोपासना कर कृपासूत्र गले में धारण किया था। इससे वह सुख-भागिनी बनी, किन्तु एक दिन अकस्मात् उस पर दृष्टि पड़ जाने पर ज्ञानांध अर्जुन ने कृष्णा की बातों का विश्वास न कर मारुति की निन्दा करते हुए उस सूत्र को वशीकरण का कारण मान उसे गले से उतरवा फेंका। फलतः उसे आगे बनवास का दुःख भोगना पड़ा।

भक्त की पुकार पर पसीजनेवाले—श्री मारुति भक्त की पुकार पर तुरत पसीज

जाते हैं। अध्यात्म रामायण के आधार पर इस विषय की एक कथा दी जा रही हैं। केरल प्रांत में मातृ-पितृ-गृहविहीन एक ब्राह्मण रहता था। निधि में उसके पास एकमात्र श्री राम-लक्ष्मण-जानकी एवं मारुति की धातुमयी मूर्ति थी। निर्धनता से व्याह की बात तो वह सोच भी नहीं सकता था। अतः गृहस्थी की चिंता से उन्मुक्त वह श्री राम का ही अनन्य भक्त बन गया। लोगों ने दया कर नगर के बाहर एक झोपड़ी उसके निवास के लिए बनवा दी। उसने उसी में अपने प्रभु को स्थापित कर दिया। और स्वयं क्रीतदास की भाँति अपने आराध्येश्वर की सेवा में लग गया। प्रभु की दैनिक सेवा का कार्यक्रम नियम बद्ध था। प्रातःकाल प्रार्थना के साथ श्री प्रभु को सपरिवार काष्ट शय्या से उठा कर एक काठ की पेटी में बैठाल कर नदी किनारे ले जाता। वहाँ पुष्प चयन कर माला बना कर स्वतः स्नान कर बालू की ६ वेदिकाएँ बनाकर पत्रनिर्मित श्री राम लिङ्ग आसन के ऊपर क्रम से श्री राम-जानकी–लक्ष्मण-मारुति को विराजमान कराता था। प्रार्थना के साथ फिर उन्हें पीठ पर एकांत झाड़ी में ले जाकर प्राकृत विधि से शौच कर्म, पाद-प्रक्षालन आदि सारे दैनिक कर्म करवाता था। सबको स्नान, अङ्ग प्रक्षालन, वस्त्रादि धारण कराकर वापस ले आता था। भिक्षा से प्राप्त चावल का भात बना पत्रावलि पर रख कर नैवेद्य अर्पित करता था। मध्याह्न कर्मोपरांत वैश्यदेवादि कर, श्री प्रभु की आज्ञा ले वह प्रसाद पाता था। मध्याह्न में उसी काठ पेटी में उन्हें पधराकर बाग ल जाता और अपराह्न बाजार भ्रमण कराया करता था। मार्ग में अशुचि अवस्था में किसी से स्पर्श न हो जाय इसीलिए रास्ता बनाते वह किसी को दण्डा भी लगा देता था। कोई उसका बुरा न मानता था। वह सर्व प्रसिद्ध था। भगवान उसकी पीठ पर विराजमान रहते थे। लोग उसे निस्पृह अनन्य श्री राम भक्त समझते थे। अतः वह जो कुछ भी याचना करता लोग सानन्द प्रदान करते थे। संध्या समय सूने घर में आकर यथास्थान भगवान को रख कर, उनके आगे दीपक जलाता। धूप-दीप, नैवेद्य आदि से पूजन कर कीर्तन प्रदक्षिणा आदि के साथ आरती कराकर वह उन्हें शयन कराता था। भिक्षा से प्राप्त सभी वस्तुओं का वह तीन भाग करता था। दो भाग तो अपने पास और तीसरा भाग अपने निकटवर्ती मित्र के यहाँ जमा कर देता था। इसका उपयोग

वह प्रति शुक्ल मास की नवमी को श्री रामनवमी महोत्सव के रूप में करता था। इसमें व्रत अखण्ड कीर्तन, सपत्नीक नव ब्राह्मणों का पूजन-भोजन आदि के विशेष कार्य होते थे।

एक समय श्रावण मास की एक भयङ्कर रात्रि में मूसलाधार वर्षा हो रही थी। उसी समय उस गरीब भक्त के आवास पर कोई राजा अपने कुछ अङ्गरक्षक सिपाहियों के साथ शरण लेने आ पहुँचा। राजा काफी भींग चुका था। उसने ब्राह्मण से कहा कि वह रात्रि भर घर में ठहर कर प्रातः काल चला जायगा। इस पर ब्राह्मण ने कहा—भाई! इस समय घर में किसी के लिए स्थान नहीं है। इसका कारण पूछने पर उसने बतलाया कि इस समय मेरे भगवान राजाराम अपने पारिषदों के साथ शयन कर रहे हैं। अतः उन्हें जगाने में मैं असमर्थ हूं। यह सुन राजा को अपने अपमान एवं सामान्य धातुमूर्ति की प्रबल प्रतिष्ठा से ब्राह्मण पर क्रोध आ गया। वह अपने रक्षकों के साथ बलात् घर में घुस बैठा। असहाय ब्राह्मण शस्त्रधारियों से कोई प्रतिरोध न कर सका। सपरिवार भगवान को पेटी में डाल और अन्यान्य वस्त्रों की गठरी बना पीठ पर रख लिया। फिर वह अपने प्रभु को लेकर चुपचाप घर के द्वार पर आ खड़ा हुआ। शांति से ब्राह्मण को बाहर होते देख सिपाही लोग निश्चित हो गये। बाहर वर्षा हो रही थी। बाहर खड़ा-खड़ा वह थक गया। अकस्मात उसके मन में आया कि पुराणों में तो मैंने हनुमान का बल सुना था। आज मुझे सब असत्य प्रतीत हो रहा है। जब हमारे भगवान को घर से बाहर निकलना पड़ा तब इनके साथ रहने से लाभ ही क्या? यह सोच घड़े को भूति पर और छड़ी को दिवाल में सटा, क्रोध में ही बाँए हाथ से मारुति की पूँछ पकड़ कर मूर्ति को उसने बड़े वेग से आकाश में उछाल फेंका। मूर्ति के आकाश में जाते ही एक भयङ्कर अट्टहास हुआ, जिसकी हृदय विदारक ध्वनि से राजा एवं उसके रक्षकों के हृदय की गति बन्द हो गई। हनुमान की कृपा से एकमात्र वह भक्त जीवित खड़ा रहा। प्रातःकाल होते ही नगर की सारी स्त्रियाँ अपने-अपने पति को मृत देख दुःख से हाहाकार कर उठीं। उन लोगों ने उस राजा की सहायता की थी। नगर के सारे पुरुषों में एकमात्र ब्राह्मण को स्वस्थ एवं कीचड़ में पड़ी धातुमयी मारुति की मूर्ति देख उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। ब्राह्मण द्वारा रहस्य जानने पर सब ने एक मत हो उन्हें ही अपना

केरल नगरी का राजा बना दिया। ब्राह्मण भी अपने प्रभु श्री राम की आज्ञा से राज्य करने लगा।

तुलसी ने असह्य बाहु-पीड़ा से दुखित हो दीन प्रणत भाव से हनुमान की प्रार्थना की। तभी वे कष्टोन्मुक्त हुए। एक बार समर्थ राम दास को भी महाज्वर से पीड़ित होना पड़ा। बद्रीनाथ–यात्रा में केदार क्षेत्र में पहुँचने पर आप शीतल-जल-वायु प्रभाव से ज्वर-ग्रस्त हो गये। उसी स्थल में असह्य परितप्त ज्वरग्रस्त अवस्था में ही 'भीम स्तोत्र' में आपने मारुति की प्रार्थना की। फलतः रोगोन्मुक्त हो आपको ग्यारहवें दिन प्रत्यक्ष मारुति देव के दर्शन हुए। इस दर्शन में ही मारुति ने आपको प्रसाद रूप में शिररक्षा, कंटोप, मेखला; वल्कल वस्त्र, जपमाला, काष्ठ खड़ाऊ तथा कुबड़ी लकड़ी आदि वस्तुएँ दीं। संप्रति समर्थ सम्प्रदाय में ये ही प्रसिद्ध प्रतीक माने जाते हैं। जिसे कालादि संतप्त करते हैं वह मारुति की शरण में आते ही बच जाता है। आप दूसरों के काल, गुण, कर्मादि को सुधार देने में पूर्ण समर्थ हैं। वास्तव में आप जैसा सुलभ एवं सर्व लौकिकोपचार से हारे लोगों के लिए दूसरा त्राता देव नहीं है। भीषण यंत्र-मंत्राभिचार, दुष्टों की प्रताड़ना और सारे रोगों के आक्रमण आदि आपकी दुहाई मात्र से स्थान छोड़ कर भाग जाते हैं—

घोर जंत्र कूट कपट कुरोग जोग—
हनुमान आन सुनि छाँड़त निकेत हैं।

—:*:—

विद्योपार्जन

सूर्य से विद्या ग्रहण—इन्द्र-वज्र द्वारा हनुमान के आहत होने पर आये सूर्य ने वायु से कहा था कि विद्याध्ययन की कामना से मेरे पास आने पर मैं इन्हें समस्त विद्याओं का पूर्ण वाग्मी बनाऊँगा। अतः समय आने पर पवन देव के अनुरोध से आप विवश होकर सूर्य देव के पास गये। आपको यह विदित था कि गुरु के अभि-मुख होकर विद्या ग्रहण करना ही शास्त्र सम्मत है। आपने यह भी सोचा कि श्रीराम

की सेवा में अनुरक्तता प्राप्त करने में कुलाधीश सूर्य से विद्या-ग्रहण पूर्ण सहायक होगा।

वास्तव में सूर्य से विद्या ग्रहण लोक-धर्म से व्याज मात्र प्रतीत होता है। मारुति की प्रतिभा अप्रतिम थी। आपकी अवस्था एवं बाल चचल प्रकृति से स्वतः आचार्य सूर्य देव भी आरम्भ मे विमोहित हो जाते हैं—भानु सो पढ़न हनुमान गये, भानु मन अनुमानि सिसू केलि कियो फेर फार सो। सूर्य आपके अनुरोध को बाल क्रीड़ा समझ कर आपसे बहाना करते हैं कि मैं स्थिर नहीं रह सकता और बिना आमने-सामने रहे पढ़ाना असम्भव,सा है। यह सुनकर हनुमान ने गुरु को आश्वस्त किया। उन्होंने कहा—"मैं आपके सामने ही हाथ जोड़कर सावधानी से सुनता रहूँगा और पीठ की तरफ उलटे पदों से दौड़ता हुआ पढ़ता रहूंगा; आपकी गति में कोई व्यतिक्रम उपस्थित नहीं होगा। सन्ध्या के उपरान्त दिन भर का सुना हुआ मैं यथावत् आवृत्ति भी कर दूँगा।" हनुमान ने ऐसा ही किया भी। त्रिलोक में सभी चकित रह गये। कहीं हनुमान से च्युति या भ्रान्ति नहीं हुई। इन्द्रादि लोकपालों एवं ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि की आँखें चकाचौंध में पड़ी खलबली-सी मच उठी। किसी की समझ में ही न आया कि वास्तव में आप किस महाशक्ति स्वरूप हैं? अपनी-अपनी भावना से सभी कहने लगे कि यह न जाने बल, न जाने वीररस, न जाने धैर्य, न जाने हिम्मत या न जाने इन सभी के सारतत्त्व रूप तो नहीं हैं? अपनी सुधावाणी से गुरु को आकर्षित कर आपने अप्रतिम गुण-प्रतिभा से (श्रीराम की भाँति) अल्पकाल में ही सूर्य से सारी विद्याएँ ले लीं। आपकी विद्याओं का वर्णन तुलसी के शब्दों में देखा जा सकता है—

जयति वेदांत विद, विविध-विद्या-विशद, वेद वेदांग विद ब्रह्मवादि।
ज्ञान-विज्ञान-वैराग्य-भाजन विभो।
महानाटक-निपुन, कोटि कविकुल-तिलक, गानगुन-गर्व-गंधर्व जेता॥

अल्पकाल में ही आपने परा और अपरा दोनों प्रकार की विद्याओं का समस्त ज्ञान अर्जित कर लिया। वेद-व्याकरण-लोक-विज्ञान में आप पारंगत हो गये। आप लोक-कुशल आनन्द-बिनोद के अप्रतिम मूर्ति तथा सर्वरस-लक्षण-सम्पन्न महानाटकों के निपुण रचयिता और करोड़ों महाकवियों के कुल-तिलक माने जाते हैं। गान विद्या के गर्विष्ठ सभी गन्धर्वों को भी आपने सामगान से जीत लिया है। वेद शास्त्र और व्याकरण

पर विचार और लेखन करने वाले आप ही हैं। काव्य-कौतुक-कला-साहित्यालंकारों से विभूषित, अलौकिक, रहस्यमय, अनन्त और आनन्दमय काव्यों के आविष्कर्ता एवं चौसठ कलाओं के तो आप सिंधु ही हैं। वास्तव में आप साक्षात् वेदमूर्ति ही हैं। सिद्ध, सुरवृन्द एवं योगीन्द्र गण सदैव आपकी सेवा करते रहते हैं तथा शुक-नारद आदि देवर्षि-ब्रह्मर्षि गण सदा आपकी निर्मल गुणावलि गाया करते हैं। आप आनन्द-सिंधु हैं। आप सभी को यथेप्सित और यथावसर अलौकिक दिव्यातिदिव्य परमानन्द प्रदान करते रहते हैं। (अथर्वेद संहिता; पर्व-१३)। हनुमान के सान्निध्य में एक बार सामूहिक रूप से सनकादि योगीन्द्र अगस्त्यादि, प्रमुख ब्रह्मर्षि एवं दैत्येन्द्र प्रह्लाद आदि परम भक्त वैष्णवगण पधारे। उन्होंने स्तुति-पूर्वक कहा कि हे वायु नन्दन, आप वेद, पुराण स्मृति, शास्त्र तथा सभी विद्याओं के ज्ञाताओं में एवं समस्त देवगणों में विशिष्ट ज्ञानवान् हैं। अतः आप हम सभी को यह बतायें कि इन सब में ब्रह्मवादियों के लिए मूल तत्त्व क्या है ? प्रत्युत्तर में हनुमान ने कहा —हे ज्ञानियो, आप लोग भव-बंध विनाशिनी मेरी वाणी सुनें। समस्त वेद-पुराण-शास्त्रादि का जो तत्त्व है वह है राम। भौतिक-ज्ञान, विद्या, कला, नीति, धर्म, वेद विज्ञान, ब्रह्म विज्ञान—ये सब ज्ञान के श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर एवं श्रेष्ठतम वर्ग प्रकार हैं। इसी प्रकार व्याकरण, संगीत, आरोग्य, युद्ध, अध्यात्म-शास्त्रादि पचवर्गों के हनुमान प्रणेता थे। इन्हीं कारणों से—ज्ञानिनामग्रगण्यं-विश्व पूज्य हैं।

प्रणव-प्रतीक —"ॐ" वेद का तत्त्व प्राण है, भगवान महारुद्र, मारुति इसकी प्रत्यक्ष प्रतिकृति हैं।

अकारो दक्षिणः पक्षः उकार स्तूत्तरः स्मृतः।
मकारः पुच्छमित्याहु अर्ध मात्रा तुमस्तकम्॥ (नादबिंदु उपनिषद्)

अर्थात् 'अकार' दक्षिण बाहु, 'उकार' वाम बाहु है, 'मकार' पुच्छ है और 'अर्धमात्रा' ही मस्तक रूप ब्रह्माड है। आकाशीय उड़ान के समय हमें हनुमान के ॐ स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होता है।

हनुमत्सहस्र नाम में आप प्रणवाय नमः, वाङ्मयाय, उद्‌गीथाय, नाद रूपाय, मुमुँ-कार हतारातये; महानादाय, वेदाय, सप्तछन्दसे, सप्त सामाय, अक्षराय, गान विद्या प्रकाशाय, जगद्‌गुरवे, वेदांतवेद्य, उद्‌गीथो वेदवेदांग पारगः आदि विविध नाम स्वरूपों

से अभिवंदित हैं।

सप्त साम-गान के आद्य प्रवर्त्तक—भारतीय संगीत शास्त्र का मूल उद्‌गम 'सामवेद' है। इसका उपवेद 'गांधर्ववेद' है। सामवेद की ऋचाएँ प्रायः गायत्री छन्द पर आधृत हैं। यज्ञों के समय उद्‌गाथादि स्तोत्र इसी छन्द में गाये जाते हैं। 'साम' महान् उत्कृष्ट है तथापि इसमें जो परमाद्‌भुत दिव्य अलौकिकता का गुण ओत-प्रोत है वह गांधर्ववेद में भी उपलब्ध नहीं है। सामवेद में सप्त छन्द रूप से गान-विद्या के प्रकाशकर्त्ता महानाद रूप से एक मात्र हनुमान हुए।

संत समर्थ अपनी वाणी संस्तुति में कहते हैं—

वज्र तनू अति भीम पराक्रम संगित गायन सीमारे'।

इस पद में पहला चरण, आत्मविरोधात्मक तथा कठोर-सा प्रतीत होता है, किन्तु दूसरा चरण अतीव कोमल और आनन्दात्मक भाव का द्योतक परिलक्षित होता है।

प्रथम चरण में अतिभीम, पराक्रमी, महाकठोर, वज्रतनू, पशुरूप बानर मुख की ओर देखने से ऐसी महान आशंका होती है कि ऐसा वानर महान-संगीतज्ञ कैसे हो सकता है।

अतः सर्वसाधारण जनों की दृष्टि में आप महाविकट बलशाली योद्धा या 'वेदांत वेद्य उद्‌गीथो वेद वेदांग-पारगः' हैं। समस्त सामगायक ऋषीश्वरों में हनुमान साम-गाताग्रणी और जगद्‌गुरु माने गये हैं। प्राचीन संगीत शास्त्र के महान मर्मज्ञ आचार्यों द्वारा वर्णित विचारों में शिव, नारद, भरत, हनुमंत ये चार संगीत मत (पद्धति) संप्रति प्रधान और आदरणीय माने गये हैं। इनमें हनुमत्पद्धति का विशिष्ट और उत्कृष्ट स्थान है। हनुमान के सामगान के सम्मुख नारदादि जैसे प्रमुख गायक भी स्वतः तिरोहित हो गये हैं। त्रिभुवन मण्डल में सबसे बड़ा गान-विद्या-गुणों का गर्व था तो एक मात्र समस्त गंधर्व, किन्नर जाति को। वे लोग अपने को जन्मशः विधि नियोजित नादोपासक एवं नृत्य-गान-कला-गुणों का प्रधान आचार्य समझते थे। किन्तु महर्षि गौतम के आश्रम में संगीत समारोह में साम गायक नादमूर्ति हनुमान के परमाद्‌भुत दिव्य नाद ने ही समुपस्थित तुम्बुरु, चित्ररथ, हाहा-हूहू आदि सारे प्रधान-गंधर्वों के जन्म-जात गुण-गर्व को जीत लिया। वे सभी मारुति के गान से पराभूत हो दास बन गये।

महर्षि गौतम की वनस्थली में साम-गायन– एक बार विश्वजयी वाणासुर अपने कुलगुरु शुक्राचार्य तथा अपने पूर्वज भक्त शिरोमणि प्रह्लाद, बलि एवं दैत्यराज 'वृषपर्वा' के साथ त्र्यम्बक पर्वत स्थित महर्षि गौतम की वनस्थली में सम्मान्य अतिथि के रूप में आनन्द-निवास कर रहे थे। एक दिन प्रातःकाल वृषपर्वा दैनिक नियमानुसार भगवान शिव का पूजन कर रहा था। उसी समय ऋषि गौतम का एक प्रिय शिष्य वहाँ आ गया। उसका अन्वर्थ नाम शंकरात्मा था। वह अवधूत वेष में उन्मत्त की भाँति यत्र-तत्र विचरण करता रहता था। वह पूजन के समय वृषपर्वा एवं शिव-मूर्ति के बीच आ खड़ा हो गया। इस उद्धत व्हार से वृषपर्वा क्रोध से भर उठा। उसने जब देखा कि वह किसी तरह नहीं मानता, तो चुपके से तलवार निकालकर सिर धड़ से अलग कर दिया। इसका प्रतिफल बहुत बुरा हुआ।

महर्षि गौतम को इस दुखद समाचार से अतीव क्लेश हुआ। शिष्यवियोग से व्यथित होकर वे दौड़े हुए घटनास्थल पर आये और वृषपर्वा के सम्मुख ही देखते-ही-देखते उन्होंने योग बल से अपने प्राण त्याग दिये। ऋषि को इस प्रकार देह-त्याग करते देख शुक्राचार्य से भी न रहा गया। उन्होंने भी उसी प्रकार अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया। फिर क्या था, क्षण भर में ही प्रह्लाद आदि सभी दैत्य समाज ने अपने अपने प्राण त्याग दिये। बात की बात में ऋषि के आश्रम में शिवभक्तों के शवों का स्तूप-सा खड़ा हो गया। उस अतीव हृदय-विदारक दृश्य से ऋषि-पत्नी अहल्या उच्च स्वर में आर्त्तनाद करने लगीं। उनकी क्रन्दन-ध्वनि कैलाश स्थित भक्त-भयहारी भगवान सदाशिव के कानों में पहुँची। दैवयोग वशात् ब्रह्मा एवं विष्णु भी वहाँ समुपस्थित थे। अतः तत्क्षण सभा विसर्जित कर सभी के साथ भगवान शिव उस वनस्थली में आ पहुँचे। उन्होंने द्रवित होकर समस्त भक्त गणों को पुनर्जीवित तथा स्वस्थ कर दिया। गौतम के साथ सभी भक्तगणों ने भगवान सदाशिव की स्तुति की। भगवान शिव बोले—ऋषिवर ! आपके अलौकिक साहस एवं त्याग पर हम अतीव प्रसन्न हैं। आप यथेप्सित वर माँगें। महर्षि बोले –मेरी एकमात्र प्रार्थना है कि आप त्रिदेव अपने सभी अनुचरों और भक्तों के साथ इस आश्रम में आथित्य सेवा ग्रहण कर मुझे कृतार्थ करें। भगवान शिव ने सर्वसम्मति से यह स्वीकार कर लिया वास्तव में

संसार की समस्त प्रापंचिक विकृतियों से उन्मुक्त त्रिविध वायु संचरित सुरम्य मनोहारिणी शोभा से सभी आनन्द विभोर हो रहे थे। तभी सदाशिव ने भगवान विष्णु के सहयोग से जल विहार की योजना बनायी। सभी देव-दैत्य एवं ब्रह्मर्षि-मुनि-मण्डल अपने-अपने सहयोगियों के साथ जल में उतर पड़े। जो जैसे थे अपने विनोदी प्रकृति के अनुसार जल विहार करने लगे। त्रिदेवों में ब्रह्मा अनमनस्क ही थे। अतः वे शीघ्र स्नान समापित कर सबकी विनोद लीला देखने लगे। वहाँ एक मात्र हनुमान ही ऐसे थे जिन्हें जल विहार में न कोई रूचि थी ओर न सम विचार की उन्हें कोई जोड़ी ही दिखाई दी। अतः वे अनोखे ब्रह्मरसानन्द में लीन श्री हरि-हर की दिव्य जल-विहार-क्रीड़ा देखने में ही मगन हो रहे थे।

वास्तव में इस जल विहार में महांन आकर्षण तो परम विनोदी आनन्द रसाचार्य एवं अभिन्न स्नेही सदाशिव एवं विष्णु भगवान की क्रीड़ा में था। ऐसा स्वच्छन्द और मुक्त वातावरण का आनन्द-योग और कहाँ मिलने वाला था। अतः समस्त मण्डल को पहले स्नान के लिए प्रेषित कर फिर सबसे अलग विशाल सरोवर में दोनों ही महाविभु उतर पड़े। वहाँ 'न भूतो न भविष्यति' ऐसी अनेकानेक परमाद्भुत अलौकिक जल-क्रीड़ा आरम्भ हो गई। इस परम कौतुकमयी लीला के प्रधान दर्शक परम सौभाग्य-शाली हनुमान थे। कुछ क्षणों में ही दूर से हरि-हर की दिव्य जल विहार-लीला का दर्शनाभास प्राप्त होते ही सभी अपना-अपना स्नान भूल गये। जैसे तैसे वेष्ठित परिधान में सारा मण्डल इस परमानन्दमयी लीला दर्शन में झुक पड़ा। सभी आनन्द-स्तम्भित तथा चकित होकर जीवन का चरम लाभ मानकर कृतकृत्य हो रहे थे।

इस दिव्यानन्द से वंचित एक मात्र देवर्षि नारद थे। अकस्मात समाचार मिलते ही वे भी वहाँ आ पधारे। गगन-मण्ल से वे आनन्द-विभोर हो, मध्य में आकर वीणा-बादन के साथ नृत्य-गान करने लगे। उस समय नाद प्रेमी भगवान शिव जल-क्रीड़ा भूल कर जल से बाहर आ गये और नारद के साथ हीं आनन्दमग्न हो तांडव नृत्य करने लग गये। अकेले हो जाने पर भगवान हरि भी जल से बाहर होकर यह दृश्य देखने लगे। गायक-गंधर्व-प्रधान विस्वासु, चित्ररथ, तुम्बरु, हाहा, हूहू आदि गभी अपने समुहों के साथ वहाँ उपस्थित थे ही। अतः उन्होंने भी क्रमशः अपना

कलात्मक गायन आरम्भ कर दिया। एक नूतन संगीत-समारोह का अनोखा आनन्द चारों ओर छा गया। ब्रह्मा, विष्णु एवं गौतम, वसिष्ठ, अंगिरा, अगस्त्य आदि के अतिरिक्त अन्यान्य सभी देव-दानव-दैत्य यक्ष समाज साधारण मुखरित संगीत श्रवण के साथ ही भगवान शंकर के परमाद्भुत ताण्डव नृत्य-दर्शनानन्द में मग्न हो रहे थे।

आनन्द मूर्ति और शांत रूप हनुमान सभी का सूक्ष्म आनन्द ले रहे थे। उस गायन-कार्यक्रम में अकस्मात् अगस्त्यादि जैसे विशिष्ट नाद-ज्ञाताओं ने नादब्रह्मरूप वायुनन्दन को भी सामगान के लिए प्रेरित किया। मारुति अपनी शांत प्रकृति से कहीं भी स्वतः अग्रसर होने वाले नहीं थे, तथापि ब्रह्मर्षियों की सद्भावना एवं आदेश पाकर आप पीछे भी कैसे रहते? सामगाताग्रणी की दिव्य नाद-सुधा लहरी आरम्भ होते ही अप्रत्याशित रूप से सभी तूष्णीभूत हो गये—'तूष्णीं सर्वे समभवन् देवर्षिगणदानवाः'। सभी पूर्ण स्तब्ध हो गये। भगवान शिव भी अपने तांडवनृत्यगान से विराम ले बैठे। देखते ही देखते साम-गायक का क्रमशः ऐसा दिव्य निरतिशय सानन्द प्रभाव पड़ा कि सभी परमानन्द में झूमने लगे। जो दुबले-पतले थे वे संगीत गुण शक्ति से हृष्ट-पुष्ट हो गये। गान-गुण-गर्वी समस्त गंधर्व-किन्नर मण्डल तो पूर्ण हतप्रभ, गर्व-निरस्त हो गान विमुग्ध मूर्छित (विदेह-मूर्ति) से हो गयें। हनुमान ने साम गायन से जब विश्रांति ली तभी सभी उपस्थित मण्डली को चेतना का ज्ञान हुआ। हनुमान को लोग वेदांत विदाग्रणी के रूप में जानते थे। आज उनके अन्य रूप के बोध से सबको हर्ष और विस्मय हो रहा था। अतः सभी अतृप्त अवस्था में विमुग्ध होकर मारुति-गुणगान में चारों ओर आनन्द-निमग्न हो रहे थे।

उसी काल भोजन का समय आ गया। महर्षि गौतम की प्रार्थना से सभी अतिथि अपने-अपने वाहनों से आश्रम की ओर प्रस्थान करने लगे। सब के पीछे रह जाने वाले एकमात्र मारुति एवं सदाशिव थे। पूर्ण एकांत का योग प्राप्त होते ही भगवान शिव बोले—कपिशार्दूल, वास्तव में तुम्हारे दिव्य गायन की माधुरी से मैं अभी अतृप्त ही हूं। यहाँ बैठकर और कुछ सुनने का भी समय नहीं रहा है। अतः मेरी कामना है कि गौतमाश्रम पहुँचने तक तुम मेरे वाहन वृष पर बैठकर शांत चित्त से अवशेष गान मुझे सुनाते चलो। मारुति विनम्र स्वर में बोले—महेश्वर, मैं आपके गान

श्रवण की पिपासा को पूर्ण करने के लिए अहर्निश तैयार हूँ, किन्तु आपके वाहन पर आरूढ़ होकर चलने की क्षमता मुझ में नहीं है।

अतः मेरी प्रार्थना है कि आप स्वयं मेरे कंधे पर विराजमान हो जायें। तभी मैं आपकी भावना समुचित रूप से पूर्ण करने में समर्थ होऊँगा। भगवान महेश्वर अतीव प्रसन्न हो वायुनन्दन के कन्धे पर विराजमान हो गये। चलते समय ही उल्टे मुख गान का अवरोध दूर करने के लिए कपिशार्दूल ने स्वतः अपने वज्रनखों से गर्दन की त्वचा को विदीर्ण कर अपना मुख ईश की ओर घुमा लिया। तत्पश्चात् उन्होंने अवशेष गान आरम्भ कर गौतमाश्रम की ओर प्रस्थान किया। निर्विघ्न गायन चरम सीमा पर पहुँच गया और वे आश्रम में आ गये। उस समय अतिथिगणों के हर्ष का ठिकाना नहीं था। समस्त आश्रमवासी आनन्द-विभोर थे। वे विमुग्ध हो गये। अनुपम नादसुधा-लहरी से सभी सम्मोहित हो गये। उस गायन के प्रभाव से वहाँ के सारे शुष्क काष्ठ हरित और अंकुरित हो उठे।

हनुमान महेश को कंधे पर बैठाये एवं अविरल गान करते हुए समस्त मण्डल के मध्य ब्रह्मा-विष्णु के सान्निध्य में जा पहुँचे। वहीं वे शांत भाव से शिव-पादाभिवंदन के पश्चात पद्मासन लगाकर और अजुंलि बाँध कर बैठ गये। महेश्वर ने सभी के सामने हनुमान का मस्तक पुनः पूर्व की ओर यथास्थिति में घुमा दिया। इसके बाद उन्होंने अपना एक पद कपीश की अंजलि में स्थिर कर फिर दूसरी पदांगुलियों द्वारा क्रमशः मुख से नाभि तक के प्रत्यंगों का स्पर्श करते हुए उसे भी पूर्वपद के साथ अंजलि में रख दिया। इन परमस्नेहार्द्र अवस्था में ही आशुतोष ने मारुति के गले में अपनी प्रसाद-मयी दिव्य मुक्ता माला भी विजय रूप में पहना दी। भगवान शिव के इस अभूत कृपा-प्रसाद पर सभी जय-जयकार कर उठे।

इसी समय परम विनोदी भगवान वासुदेव बोले—हे महेश्वर, सभी लोकों में हनुमान के समान पुण्यशील कोई नहीं है। आपके देव-दुर्लभ तथा मुनिदुर्लभ पद-कमल हनुमान के लिए सहज उपलब्ध हैं। यह इस चपल वानर का विचित्र अहोभाग्य है। शंभो, औरों की तो बात ही क्या? स्वयं मैंने ही हजारों वर्ष नित्य सहस्र कमलों से सविधि भक्ति से आपकी पूजा की और फिर भी आपने कभी श्री पादपद्मों का दर्शन न

कराया ? विश्व प्रसिद्ध है कि महाशम्भु नारायणप्रिय हैं तथा हरि को हर प्रिय हैं, पर आज मुझे प्रत्यक्ष भासित हो रहा है कि मैं भी कपि-सा परम भाग्यशाली नहीं हूँ। नारायण की इस मार्मिक तथा व्यंग्यात्मक सुधावाणी से प्रभावित सदाशिव बोले—भगवन हरे, आप कभी अपने हृदय में ऐसी आशंका न आने दें। मैं सत्य कहता हूँ कि वास्तव में—

न त्वया सदृशो मह्यं प्रियऽस्ति भगवन् हरे।
पार्वती वा त्वया तुल्या न चान्यो विद्यते मम ॥

आपकी तुलना में पार्वती भी ऐसी प्रिय नहीं हैं ; अन्य की तो बात ही क्या ?

मध्याह्न भोजन वेला का अतिक्रमण होते देख महर्षि गौतम की प्रार्थना से सभी भोजन भवन में पधारे। विशाल भवन की शोभा और व्यवस्था का वर्णन ही व्यर्थ है। विश्वकर्मा ने स्वयं सभी मान्य अतिथियों के लिए यथायोग्य कलात्मक आसनों का निर्माण किया था। मध्य मण्डप-स्थल के आसन पर सदाशिव तथा उनके सम्मुख ही भगवान हरि, ब्रह्मा, एवं सर्व प्रिय हनुमान सुखासनों पर सुशोभित हो रहे थे। चारों ओर विभूति-भूषण की विनोदमयी वार्ताओं से आनन्दसुधा की लहरी फैल रही थी। परिवेशकों ने सुवर्ण पात्रों में हजारों प्रकार के व्यंजन पकवान, मिष्टान्न तथा षटरस भोजन परोस दिये। वहाँ नाना प्रकार के कन्द-मूल और फलफूल भी थे। महर्षि ने सदाशिव ने भोजनारंभ की प्रार्थना की। उनकी आज्ञा से सभी से भोजन आरम्भ किया।

दीर्घ-भोजी तथा क्षुधातुर हनुमान सब से पहले भोजन पर टूट पड़े। परिहासमयी वाणी परमेश्वर ने विष्णु से कहा कि जरा देखो तो, हनुमान वानरों की भाँति किस शीघ्रता से भोजन करने लगे हैं। भगवान हरि की दृष्टि फिरते ही महेश्वर ने शीघ्र ही अपनी थाली से एक दही का बड़ा विष्णु की थाली में और पायस का कटोरा हनुमान की थाली में उलट दिया। प्रियता के इस अनुपम निदर्शन से समुपस्थित सभी देव परमानन्द से हर्षित हो उठे। दोनों ही महान् विभुओं ने सानन्द शिव-प्रसाद ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् सदाशिव ने अपना भोजनारंभ किया। महर्षि गौतम स्वयं परिवेशन कर रहे थे। वहाँ सब को यह भली-भाँति प्रतिभासित हो गया कि साम-गान की विद्या में पारंगत होने के कारण ही उपस्थित सभी लोगों में हनुमान सदाशिव

के अतिशय प्रीति-भाजन बन गये। इस प्रसंग का विशद वर्णन पद्मपुराण के पाताल खंड में किया गया है।

—:*:—

वीर-शिरोमणि

जन-रंजन-अरिगन गंजन मुख भंजन खल बर जोर को।
वेद पुरान-प्रगट पुरुषारथ सकल-सुभट सिर मौर को॥

हनुमान के समान भक्तानन्ददाता, शत्रु-नाशक तथा खल-बल-भंजक, शत्रुगणों का विनाश कर्त्ता दूसरा कौन है ? लंकेश रावण अपने युग में विश्व प्रसिद्ध भट चक्रवर्ती था। भविष्य पुराण के अनुसार बाल कपि से ही उसे जूझना पड़ा था। राहु-रक्षा के प्रसंग में उसे लेने के देने पड़े थे। मुठभेड़ का कारण यह था कि सूर्यदेव रुद्रकपिशिशु से मुक्त नहीं हो सके। वे अतीव भयाक्रांत हो अपनी रक्षा के लिए त्राहि-त्राहि कर रोदन करने लगे। उस आर्तनाद से प्रभावित, संसार को रुलाने वाला रावण स्वयं सूर्य की रक्षा में वहाँ दौड़ आया। सूर्य की दीनावस्था और कपि शिशु की विकरालता देख कर हृदय से भयभीत हो जाने पर भी वह आक्रोश और अभिमान से कपि पर टूट पड़ा। उसने मारुति की पूँछ पकड़ ली और उन पर अपनी मुष्टिका से प्रहार करने लग गया। राहु के समान ही इस नवागंतुक शत्रु को देख कपिराज सूर्य को छोड़ कर रावण पर ही टूट पड़े। रावण के मुक्के मारुति के वज्रतनु पर फूल की तरह लगते, किन्तु रावण के शरीर पर इनके पुच्छमुष्टि प्रहार वज्र की भाँति पड़ते थे। अबोध बालक जैसे खिलौना पाकर उसे शीघ्र नहीं छोड़ता और उसे उठाकर बारम्बार पटकता हुआ आनन्द का अनुभव करता है वैसे ही वायुनन्दन ने एक वर्ष तक उसी गगन मण्डल में रावण को खिलौना समझ कर खेल किया। रावण को छठी का दूध याद हो आया। इस अवधि में कितनी बार उसने भागने का प्रयत्न भी किया। सभी भाँति से असफल हो जाने पर अन्ततः अपनी रक्षा के लिए उसने पिता को स्मरण किया। क्षण मात्र में

ही ऋषिवर विश्रवा वहाँ आ पधारे। उन्होंने पुत्र-मुक्ति के लिए वेदरूप भगवान रुद्र मारुति की बहुशः स्तुति की, जिससे आप प्रसन्न हो, रावण को छोड़कर तुरन्त पम्पासर पर आकर स्थाणुभूत होकर स्थिर हो गये। इस प्रकार बाल विनोदावस्था में ही आपने रावण जैसे महाभट चक्रवर्ती को पराभूत कर दिया। युवाकाल के अनन्तानन्त शौर्य के संदर्भ में तो कहना ही क्या है! बाल्मीकि के अनुसार अशोक वाटिका के फल-भक्षण में हनुमान ने वहाँ के रक्षकों एवं लङ्का के एक तिहाई महायोद्धा राक्षसों का संहार कर दिया। वह लङ्का के इतिहास में सर्व प्रथम महारोमांचकारी दृश्य था। रावण को विश्वास नहीं हुआ कि वह वास्तव में वानर है। उसने सोचा कि निश्चित ही यह महाप्रचण्ड, अनन्त बल-शक्ति-सामर्थ्यवान एक महान दिव्य देव है। मैंने विश्व के अनेकानेक ऋक्षपति, बाली जैसे महाविक्रमशाली वानर, भालू तथा अन्य वीरों को देखा है,

नैव तेषां गतिर्भीमा न तेजो पराक्रमः।
न मति र्न बलोत्साहो न रूपं व्यवस्थितम्॥
महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपि रूपं व्यवस्थितम्।
प्रयत्नं महदास्थाय क्रियतां महस्य विग्रहः॥

किन्तु किसी में भी इसके समान गति, तेज, विक्रम, बुद्धि, बल और महोत्साह नहीं दखाई पड़ा :—मारुति का यह प्राथमिक प्रभाव-दिग्दर्शन था, जिस व्याज से वे रावण के दरबार में वार्तालाप करना चाहते थे। तुलसी ने जिस प्रकार मानस के अतिरिक्त विनय पत्रिका एवं विशेषतः 'कवितावली' में आप के विश्वविख्यात भट-चक्रवर्ती रूप का विषद वर्णन किया है वह दर्शनीय है।

महाभारत-युद्ध में अर्जुन के रथ की ध्वजा पर बैठे कपिशार्दूल के सिंहनाद से सारी कौरव-सेना भय से संत्रस्त होकर गिर जाया करती थी। उस समय भीष्म, द्रोण आदि आपकी वंदनात्मक प्रशंसा करते हुए कहते थे कि अनुमानतः त्रिलोक-त्रिकाल में—हनुमान जैसे महाबलशाली, महावीर भट न हुए और न होंगे। भीष्म-द्रोण जैसे महान् कौरव कुल-सेनाधिनायक द्वारा इस प्रकार कपिराज की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनकर सारे सैनिक नतमस्तक हो हाथ जोड़-जोड़ कर उनकी स्तुति किया करते थे :—

नाइ नाइ माथ जोरि-जोरि हाथ जोधा जोहैं,
हनुमान देखे जग जीवन को फल भो ॥

वज्र के समान कठोर शरीरधारी, विकट स्थिति में युद्ध में कोलाहल मचानेवाला एवं करुणा से पूर्ण सुन्दर विशुद्ध मनवाला, धार्मिक और धैर्यवान दूसरा कौन है ? दुष्टों के लिए काल के समान महारौद्र, सज्जनों का पूर्ण रक्षक, स्मरण मात्र से दीन जनों का त्राता, सीता का सुखदायक एवं श्री रघुनायक का दुलारा सहायक और सेवक साहसी पवन कुमार के समान अन्य कौन है ?

शिव-हनुमान-युद्ध—भगवान शिव और हनुमान में युद्ध की बात से किसे परमाश्चर्य न होगा ? किन्तु यह युद्ध किसी पारस्परिक वैमनस्य से नहीं, अपितु एक गूढ़ मार्मिक सिद्धांत के कारण संघटित हुआ था। इस युद्ध का कारण यह बताया जाता है कि भगवान श्री राम के अश्वमेध-यज्ञ में यज्ञ का अश्व विश्वभ्रमण के लिए छोड़ा गया। उसकी रक्षा में शत्रुघन, पुष्कल, लक्ष्मीनिधि आदि बड़े-बड़े वीर एवं विपुल सेनाओं के साथ सहयोग में हनुमान भी थे। इस विश्व-विजयी अश्व के योग से कितने ही देशों के राजाओं से अनुकूलता में प्रीति एवं धन प्राप्त हुए। कतिपय कुटिल और अहंकारी राजाओं से युद्ध भी करने पड़े थे। वह अश्व चलते-चलते देवपुर राज्य की सीमा में प्रविष्ट हुआ। वहाँ का अधिपति परम धर्मनिष्ठ, शिव का परमोपासक राजा वीरमणि था। उसका वीर पुत्र रुक्मांगद वनिताओं के साथ सघन विपिन के एक विशाल सरोवर में जल क्रीड़ा कर रहा था। वहाँ रत्नालङ्कार विभूषित अश्व को एकाकी देखकर वह विस्मित हो गया। कामिनियों के प्रेमाग्रह से उसने उसे पकड़ लिया और राजधानी में चुरा लाया। पुत्र के इस चौर्य कर्म से दुःखित वीरमणि अपने आराध्येश्वर श्री शिव की शरण में गया और यह दुःखद समाचार सुनाया।

शिव ने कहा कि तुम्हारे पुत्र ने मेरे प्रिय और आराध्य श्री राम का यज्ञाश्व अपहृत किया है। पता लगने पर भयङ्कर युद्ध होने की सम्भावना है। किन्तु इससे महालाभ यह होगा कि जिन श्री पद-कमलों की मैं सेवा करता हूं, उनके दर्शन का इस नगरी के लोगों को परम सौभाग्य प्राप्त होगा। राजेन्द्र, आगन्तुक समस्त आपत्तियों से मुक्ति के लिए तुम्हारा महान कार्य यह होगा कि इस अश्व की श्रद्धा से पूर्ण सेवा आरम्भ कर दो

तथा मेरे संरक्षण में अब युद्ध के लिए सावधान हो जाओ। इधर गहन विपिन में अश्व के अचानक गायब हो जाने के समाचार से चारो ओर खलबली मच गयी। शत्रुघ्न आदि सारे वीर चिन्तित हो गये। अपहर्ता का पता नहीं। सुमति राजा द्वारा वीरमणि का परिचय एवं उसी समय देवर्षि नारद से वीरमणि के पुत्र रुक्मांगद द्वारा अश्वापहरण का समाचार मिलते ही युद्ध घोषित हो गया। युद्ध के आरंभ में ही भरतात्मज पुष्कल ने अपने कुशल शास्त्र-प्रहारों से रुक्मांगद को रण में परास्त कर मूर्च्छित कर दिया। मूर्च्छित पुत्र को सेवकों द्वारा राजभवन में भेजकर राजा वीरमणि स्वयं पुष्कल से युद्ध के लिये रण में सामने आये। हनुमान को भी साथ में सहयोग के लिए चलते देख, पुष्कल ने उनसे प्रार्थना की कि "महाकपे, आप जैसे महावीर को एक साधारण मानव राजा के सामने आने की आवश्यकता ही क्या? मुझे क्या डर? रण में अवश्य परास्त करूँगा।" मारुति बोले—"वत्स, तुम्हारी उच्च भावना से मैं अत्यधिक प्रभावित हूँ। तुम अखिल शस्त्रास्त्रों के कुशल ज्ञाता होने पर भी वास्तव में अभी बालक ही हो। तुम्हें यह विदित होना चाहिए कि—यह वीरमणि भगवान शिव-कृपा से ही संरक्षित, अजयी तथा वीर बना निष्कंटक राज्य कर रहा है। यह सोच कर ही मैं युद्ध में तुम्हारा सहायक होना चाहता था। तथापि मैं शुभ-कामनाओं के साथ आज्ञा देता हूँ कि अन्यान्य सभी वीरों को जीतकर तुम रघुकुल की कीर्ति धवलित करो।"

युद्धोन्मुख पुष्कल को रण में अपने सम्मुख देख, वीरमणि ने भी उसे एक सामान्य बालक ही समझा था। किन्तु युद्ध रण-कौशल से अति प्रभावित होकर वीरमणि भी हृदय से पुष्कल की प्रशंसा करने लगा। वीर पुष्कल के वितीक्ष्ण वाण प्रहार से वीर-मणि विरथ हो मूर्च्छित हो गया। भक्तराज के रथच्युत होते ही भगवान शिव स्वयं नन्दी-भृङ्गी-वीरभद्र आदि गणों के साथ रणस्थल में उतर पड़े। वीरभद्र और पुष्कल में युद्ध छिड़ गया। पाँचवें दिन वीरभद्र ने घबड़ा कर अपने अमोघ त्रिशूल-प्रहार से पुष्कल का वध कर दिया। इसके बाद अतीव दुःखित एवं आक्रोशयुक्त शत्रुघ्न रण में कूद पड़े। उनका शिव के साथ लोकसंहारक महाघोर युद्ध आरम्भ हो गया, जो ग्यारह दिनों तक चलता रहा। आकाश-स्थित सारे देवगण आश्चर्य चकित होकर यह

निश्चित नहीं कर पा रहे थे कि किस वीर की जीत हो सकेगी ? बारहवें दिन अकस्मात् शङ्कर-बाण से शत्रुघ्न मूर्च्छित हो गये। फिर क्या था ? सिंहनाद के साथ हनुमान स्वयं शङ्कर के सम्मुख कूद पड़े। हनुमान ने शिव जी से कहा कि "हे रुद्र, इस प्रकार तुम यदि धर्म के प्रतिकूल आचरण कर रहे हो तो तुम्हें शासित करने की मैं इच्छा करता हूं। तुम श्री रामभक्तों के वध में उद्यत हो। मुनियों से सुनी धारणा से मैं यही जानता था कि पिनाकी रुद्र श्री राम के सर्वोत्तम भक्त हैं। किन्तु आज प्रत्यक्षत: मुझे तुम्हारे आचरण से सर्वथा प्रतिकूल देखने में आया। अत: रामभक्ति-विरोधी शर्व, तुम भली-भाँति तैयार हो जाओ। शिव ने कहा, "यह सत्य है कि भगवान श्री राम चन्द्र मेरे आराध्य स्वामी हैं। किन्तु मैं करूँ क्या ? भक्त - वशीभूत होकर ही अपने कर्त्तव्यारूढ़ धर्म से मुझे यहाँ वीरमणि की रक्षा के लिए आना पड़ा है। कपिराज, आप तो जानते ही हैं, सभी को कठिन परिस्थिति में आत्म रक्षा का प्रयत्न तो करना ही पड़ता है।

इस प्रकार स्वधर्मरक्षा की प्रगाढ़ निष्ठा से दोनों ही महा विभु परस्पर युद्ध में संलग्न हो गये। हनुमान ने एक महान पर्वत शिला द्वारा शिव के विशाल रथ को चूर-चूर कर दिया। विरथ शिव को नन्दीश्वर ने अपनी पीठ पर ले लिया। तभी दूसरी महा-शिला पुन: उनके वक्षस्थल पर गिरी। भयभीत भूत-प्रेत-पिशाचादि शिवगणों पर हनुमान की शिलावर्षा और कठोर पुच्छ-प्रहार वज्रपात का कार्य कर रहा था। वे संत्रस्त होकर भाग खड़े हुए। शङ्कर स्वस्थ होकर पुन: एकाकी घोर युद्ध करने लगे। क्रुद्ध रुद्रदेव ने अग्निज्वाला रूप त्रिशूल का हनुमान पर भीषण प्रहार किया। आघात पूर्व ही त्रिशूल को तुरन्त सुजान हनुमान ने हाथ में ले लिया और क्षण मात्र में उसे तिल की तरह चूर्ण कर डाला। त्रिशूल के नाश पर शिव ने शक्ति का प्रहार किया, जिससे कपीश पल भर किंचित विचलित हुए। किन्तु तुरन्त व्यथामुक्त हो उन्होंने एक विशाल वृक्ष से महाव्याल विभूषित शिव के हृदय पट पर ऐसा प्रहार किया कि सारे फणीन्द्र शरीर त्याग, भयग्रस्त हो पाताल लोक भाग गये। शिव अतिशय व्यथित और क्रुद्ध हुए और कहा कि अरे हनुमान, अब तुझे इस महासंग्राम से मैं सदा के लिए जीवनमुक्त कर देता हूँ। उसी क्षण उन्होंने प्राणहन्ता मूसल का प्रहार किया। आकाश में

देवगण हाहाकार कर बैठे। पर हनुमान जैसा रण-कुशल वीर योद्धा कहाँ? काल-रूप-मूसल को सामने आते देख उन्होंने राम का स्मरण किया और विद्युत की भाँति उछल कर निशाने से बच निकले। असफल मूसल भूमि पर गिरकर रसातल में चला गया। महाकुपित हनुमान ने प्रलयंकारी विशाल पर्वत शिलाओं और वृक्षों की मानो वर्षा ही कर दी। शिव के सारे प्रयत्न व्यर्थ होने लगे। प्रतिक्षण के भीषण प्रहार के सम्मुख वे अतीव विह्वल हो अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले—"श्री रघुनाथ चरणानुरागी वानराधीश, तुम धन्य हो!

जगाद प्लवंगाधीषं धन्योऽसि रघुपानग,
महत्कर्म कृतं तेऽद्य यत्तोऽहं सु प्रतोषितः।
न दानेन न यज्ञेन नाल्पेन तपसा महान्,
सुलभोऽस्मि महावेग, तस्मात् प्रार्थय मे वरम्॥

तुम जैसे अद्वितीय वीर के परमाद्भुत युद्धकर्म से आज मैं अतीव प्रसन्न हूँ। वास्तव में दान यज्ञ, ज्ञान या महान तपस्यादि से ऐसा मैं सुलभ नहीं हूँ। अतः महावेग, तुम यथेप्सित वर माँग लो। प्रसन्नात्म शिव से हनुमान बोले कि श्री रघुनात-कृपा से सभी कामनाएँ मुझे सुलभ हैं, तथापि आपकी कृपा और तुष्टि के लिए मेरी यही याचना है कि युद्धहत पुष्कल, मूर्च्छित राम भ्रातृ शत्रुघ्न सहित अन्यान्य समस्त हताहत वीरों की मेरे क्षीरसागर से पुनरागमन तक भेद रूप से रक्षा करें।

अजेय मारुति पुनः पूर्व की भाँति यथासमय द्रोण रक्षकों को परास्त कर संजीवनी लेकर वापस आये। मृत व्यक्ति जी उठे और सभी के भग्न अंग जुट गये। सभी में पूर्ववत बल और शक्ति का संचार हो गया। संजीवित होते ही रथारूढ़ हो सभी प्रधान वीर युद्ध-सन्नद्ध हो गये। पुष्कल,- वीरभद्र, चंड-कुशध्वज, नन्दी - हनुमान, शत्रुघ्न - वीरमणि में परस्पर घोर युद्ध आरम्भ हो गया। वीरमणि के पुनः आहत और मूर्च्छित होने पर शिव ने पुनः सामने हो शत्रुघ्न से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। दोनों ओर से ही दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के भयङ्कर प्रहार होते देख हनुमान ने शत्रुघ्न को प्रभु-स्मरण का परामर्श दिया। शत्रुघ्न आर्त भाव से प्रार्थना करने लगे :—

हा नाथ भ्रातर त्युग्र शिवः प्राणापहारणं।
करोति धनुरुद्यम्य त्रायस्व रण मण्डले ॥

स्तुति के साथ ही दीन जन-परिपालक, नीलोत्पल श्याम रघुकुलनंदन भगवान श्री राम रणस्थल के बीच प्रकट हो गये। प्रभु के साक्षात्कार में ही दोनों ओर से युद्ध विराम हो गया। हनुमान के साथ समस्त राम-परिवार-दल प्रभु-पद-कमलों में नत हो वन्दन करने लगा। उधर भगवान सदाशिव भी भक्तिभाव से गदगद होकर प्रभु की स्तुति करने लगे! वे बोले कि अश्वमेध यज्ञ का कारण एवं आपकी अनन्त महानता का ज्ञान होते हुए भी भक्त-रक्षा की विवशता से मुझे युद्धरत होना पड़ा। मेरे साथ ही इस राज्याधिपति एवं आपके किंकर का परम सौभाग्य है कि आपके दर्शन का परम लाभ हुआ। यहाँ आगमन में आपको जो कष्ट हुआ उसके लिए मैं विनम्र क्षमा प्रार्थी हूँ।

भगवान शङ्कर की प्रशंसा करते हुए राघवेन्द्र ने कहा कि आपके कार्य सर्वथा योग्य एवं धर्म सम्मत हैं। यह तो सभी धर्मनिष्ठ महापुरुषों का स्वाभाविक धर्म है कि अपने आश्रित भक्तों की आपत्ति में रक्षा करें। यही साधुकार्य है। वस्तुतः आप में और मुझ में कोई भेद नहीं है—"ममासि हृदये शर्व भवतो हृदये त्वहम्!" हम दोनों में जो अन्तराय डालने या देखने वाले हैं वे सभी नरकगामी होते हैं। मेरे सभी धर्मनिष्ठ भक्त सदैव अभेद दृष्टि से आपके प्रति श्रद्धा-प्रेम के साथ पूजन करते हैं। प्रस्तुत शांति प्रसंग के बाद भगवान श्री राम अपनी सुधामयी दृष्टि एवं कर-कमलों के स्पर्श से सभी अवधवासी परिवार एवं संरक्षक वीरों को सजीवन स्वस्थ करते हैं। वहाँ की दूसरी ओर भक्त वीरमणि के शरीर पर अपने कर कमल स्पर्श से जीवन प्रदान कर भगवान शिव ने वीरमणि को अपनी परमानुकम्पा से योगियों के ध्यानागम्य भगवान श्री राम का दर्शन करा श्रीचरण-शरणागत करा दिया। पुत्रसहित प्रभुचरणाश्रित वीरमणि ने विपुल रत्न धनों के साथ अश्व समर्पित कर दिया।

ब्रह्मचारियों में अग्रणी—सभी ब्रह्मचारियों में हनुमान की महत्ता विशिष्ट है। ब्रह्मचर्य का चरम ध्येय 'ब्रह्म भावे मनश्चारं ब्रह्मचर्यम्' है! दर्शनोपनिषद में महर्षि जाबालि का कथन है कि ब्रह्म भाव की प्राप्ति में मन ही ब्रह्मचर्य का मूल तप है।

मन को मथने वाला, कामदेव मन में ही बैठकर अनेकानेक प्रपंचों की रचना करता है। 'उर बसि प्रपंच रचै पंचबान'। कामदेव का उद्भव स्थान ही मन है। काम के सारे विकार मन से ही पैदा होते हैं। यही प्राणी के मन को मथ कर पथभ्रष्ट करता है। गीता के छठे अध्याय में श्री कृष्ण द्वारा आत्म संयम योगोपदेश में भी मन को वशीभूत करना ही प्रधान कर्तव्य कहा गया है। अर्जुन कहता है कि मैं अतीव चंचल, प्रमथन स्वभावी, दृढ़, महाबलशाली मन को वशीभूत करना, वायु को वश कर लेने के समान ही दुष्कर समझता हूँ। इसी कारण ब्रह्मचर्य को परंतप कहा गया है। मैत्रोपनिषद का कथन है कि मन दो प्रकार का है—शुद्ध और अशुद्ध। वह काम (विषय) ससर्ग से अशुद्ध और विगतकामता से शुद्ध होता है। कहा भी है, मन एवं मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयो:।

हनुमान के ब्रह्मचर्यत्व में ब्रह्मभाव की प्राप्ति ही नहीं, अपितु सगुण परब्रह्म, रघु-कुलाधीश भगवान श्री राम के सान्निध्य में उनके अविच्छिन्न और आजीवन सेवाव्रत का एक मात्र चरम ध्येय है। तत्वत: महारुद्र, महादेव, महाकाल सदाशिव ने ही हनुमान रूप से अवतार लिया :—

हनुमान स महादेव: काल काल: सदाशिव:।
रावणस्य वधार्थाय रामस्य च हिताय च॥

कामजित—रुद्र रूप से मन्मथ को भस्म करने वाले के रूप में आप विख्यात हैं। हनुमान रूप से आप ब्रह्मचर्य धर्म के महान पालक के रूप में विख्यात हैं। शत्रु-स्वरूपा दशेन्द्रियों को आत्म – वशीभूत कर ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी के रूप में आप माता अंजना के गर्भ से प्रादुर्भूत हुए थे। इस प्रकार पुराणेतिहास में यज्ञोपवीत-ब्रह्मचर्य-संस्कारपूर्ण अवतार ग्रहण करने वाले देव-मानव समाज में शायद ही कोई हुआ है? अत: हनुमान अपने स्वतंत्र महान शक्तिगुणाधार से विश्व के समस्त ब्रह्मचारियों में (विनय) काम जेताग्रणी एवं मन्मथ-मथन ऊर्ध्वरेता-विशेष माने गये हैं। संसार ही नहीं, ब्रह्मलोक तक के समस्त वैभवों से विरागी हनुमान जैसे कुमार ब्रह्मचारी को पाकर सारा जगत कृतकृत्यता का अनुभव कर रहा है। ऐसा परम विरागी, सत्य-धर्म-ज्ञान-निश्चल व्रती एवं सर्वोत्कृष्ट साधक के लिए रामचरण-परमानुरागी होना परम स्वाभाविक है।

उस में इस भौतिक जगत के तुच्छ विषय भोग तथा ऐश्वर्यादि पदार्थों में आकर्षण या उसके वशीभूत होने की भावना कैसे जागृत हो सकती है ? यह भक्ति योग का सर्व-प्रसिद्ध सिद्धांत है। ज्ञान-मार्गी जहाँ दुष्कर यम-संयमादि से चलता है वहाँ सगुणानु-रागी अनन्य दृढ़ भक्त के मस्तक पर प्रभु का वरद हस्त सदैव विद्यमान रहता है। हनुमान अपने दृढ़ ब्रह्मचर्य व्रत से कहीं भी किसी भी कठिन अवस्था में विचलित नहीं हुए। राज्य प्राप्ति पर सुग्रीव ऐश्वर्य-कंचन-कामिनी के क्रीत दास बने, किन्तु दुःख-सुख के एकमात्र संरक्षक सत्यव्रती हनुमान ने अपनी शांत तथा प्रिय एकांत गिरि-गुहा का आवास स्थल नहीं छोड़ा।

महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि अर्धरात्रि में सीतान्वेषण के प्रसंग में मन्दोदरी सहित अनेकानेक परम सुन्दरियों को वस्त्रविहीन, अस्त-व्यस्त तथा निद्राभिभूत अवस्था में देखकर भी हनुमान के मन में विकार पैदा नहीं हुआ। उनके मन में किसी भी समय किंचिन्मात्र की भी विकृति उत्पन्न नहीं हुई। एकमात्र मन ही इन्द्रियों को सद-सद् मार्ग में प्रवृत्त करने का भागी है। वह मन भी इन्द्रियों सहित मेरे वशीभूत है। रावण के अन्तःपुर की इन रमणियों को एकांत में निहारने में दोष ही क्या ? यदि कोई यह कहे कि इन्द्रिय विजयी पुरुष को भी रात के एकांत में स्त्री-दर्शन सर्वथा अनु-चित है तो इस प्रश्न के उत्तर में वे स्वयं कहते हैं कि यह तो मेरा प्रधान कार्य है; इससे मैं विमुख कैसे हो सकता हूँ ? खोई हुई स्त्री स्त्रियों के बीच ही ढूँढी जा सकती है; न कि मृग-पशु-पक्षियों के बीच। इसके अतिरिक्त मैं जो कार्य कर रहा हूँ वह शुद्ध मन से कर रहा हूँ। अतः निष्पाप हूं। वस्तुतः इन्द्रिय की कठिन परीक्षा ऐसे ही अप्रत्याशित संयोगों पर होती है। पद्मपुराण में अश्वमेध के संदर्भ में भरत-पुत्र पुष्कल के जीवित एवं शत्रुघ्न को मूर्च्छा से सचेत करने के अवसर पर भी इनके ब्रह्मचर्य का प्रमाण प्राप्त होता है। वीरभद्र द्वारा मारे गये पुष्कल के सिर-धड़ को संजीवनी से जोड़ते हुए हनुमान कहते हैं—

यद्यहं मनसा वाचा कर्मणा राघवं पतिम्।
जानामि तर्हि एतेन भेषजे नाशु जीवतु।।

यदि मन वचन कर्म से एकमात्र श्री राघव को ही मैं अपना स्वामी जानता हूँ तो इस

महौषधि से पुष्कल पुनर्जीवित उठ खड़े हों। और पुष्कल उठ खड़े हुए। इसी प्रकार शत्रुघ्न को सचेत करते समय आपने कहा कि यदि मैं ब्रह्मचर्य-पालन-हेतु समुद्यत हूं तो वीर शत्रुघ्न क्षण भर में जीवित हो जांय। इस शब्द मात्र से ही शत्रुघ्न क्षणमात्र में जीवित हो उठे। विश्वादर्श इस ब्रह्मचर्यव्रती के लिए ही कवि की आर्षवाणी है :—

अंजनीगर्भ संभूतो वायु पुत्रो महाबल :

आप के त्रिविध रूप हैं। पशुपति, पाश, पशु एवं तत्समन्वयी आत्मा, प्राण तथा पशु (शरीर) इन त्रिविध रूपों में हनुमान की मूर्ति है। आपका बाह्य स्वरूप पशु, पुच्छ (प्राण) पाश दर्शक तथा आत्मा रूप में वस्तुतः पशुपति (रुद्र) है, जो ज्ञान स्वरूप है। प्राण क्रियात्मक है। पशु रूप शरीर रामकार्य रूप वासनात्मक है। इस प्रकार पशुपतिपाश पशु शब्द में साध्य-साधन एवं साधक त्रिक (३) भाव स्थित है। आपका द्वितीत भाव शिव रूप से श्री राम का लक्ष्यार्थ है, हनुमान रूप से रामदास है एवं भक्ति रूप से श्री राघव का मार्ग है आत्मा-वीज-चिति, प्राण-देव-चिति तथा पशु रूप—भूत चिति जैसे ये त्रिविध रूप हैं, वैसे ही अन्य शब्दों में राम, रामभक्त एवं राम-भक्ति ये तीनों जहां सन्निहित हैं, वहीं आप राम सेवक, राम-सेवारूप तथा राम-रूप भी हैं। इस प्रकार की महत्ता संतों द्वारा वर्णित है। अन्तस्थ इन्हीं विशिष्ट कारणों से आप अखिल सृष्टि के नियामक-नियम्य एवं नियमन रूप हैं। आपका स्थूल शरीर (रुद्र रूप) तमोगुण प्रधान, लिंग शरीर रजोगुण प्रधान एवं कारण शरीर सत्त्व-गुण प्रधान है।

—:०:—

लांगूल - महिमा

लांगूल, लूम, पूँछ (पुच्छ) ये सभी पयार्य - वाची शब्द हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से पुच्छ मूल शक्ति एवं समस्त पाशवी प्राणियों का जीवन-प्राणाधार है। समस्त जलचर, स्थलचर एवं नभचर प्राणियों में दृश्य वा अदृश्य रूप में न्यूनाधिक रूप में पूँछ होती है। इसके द्वारा हम सभी प्राणियों के मार्गातिक्रमण में गतिशीलता, आनंद, उत्क्रांति आदि के विभिन्न भाव देख सकते हैं। यह सभी के जीवन में संतुलनकारी है।

अध्यात्म शास्त्र में पुच्छ शब्द प्रतिष्ठा या मूलाधार अर्थों में अभिव्यक्त है, जिसमें सर्वोच्च भाव "महः पुच्छं प्रतिष्ठा, ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा (तैत्तिरीय उपनिषद) है। शरीर भाष्य (१-१-६-१९) में लिखा है—पुच्छवत्पुच्छ प्रतिष्ठा परायण मेकनीउ लौकिक स्यानंद जातस्य ब्रह्मानंद इत्येतदनेन विवक्ष्यते नावयवत्वम्। रुद्रयामल तंत्र में भगवान शिव-पार्वती से कहते हैं कि हे शिवे, त्रिलोक में जैसे हनुमान महान दिव्य देव हैं वैसे ही आप दिव्य हैं। आपके रूप, आसन, निवास आदि सभी दिव्य हैं। आप दीर्घकेशी, दीर्घपुच्छी, दीर्घसूत्री, दीर्घमोजी, दीर्घदर्शी, दीर्घबाहु एवं दीर्घ-शरीरधारी हैं। ये रूप दानव-दारिद्रय के प्रबल भंजक हैं :—

दिव्य देवो दिव्यरूपो दिव्यासन निवासकः।
दीर्घकेशो दीर्घ पुच्छो दीर्घसूत्रोऽपि दीर्घभुक्॥
दीर्घदर्शी दूरदर्शी दीर्घबाहुस्तु दीर्घपः।
दानवारि र्दरिद्रारि र्दैत्यारि र्दस्यु भंजनः॥

लांगूल समस्त वानरों में असाधारणतया दिव्य महाशक्ति का प्रतीक है। ब्रह्म पुराण में इस प्रकार वर्णित है :—

पार्थ ध्वजो वायुपुत्रोऽमितपुच्छोऽमित प्रभः।
ब्रह्मपुच्छः परंब्रह्म पुच्छ रमेष्ट एव च॥

यह साधारण पुच्छ नहीं, अपितु ब्रह्मपुच्छ एवं परब्रह्मपुच्छ रूप होने के साथ ही श्री राम के लिए इष्ट भी है ।

महारुद्र-रूप मारुति हैं तो उनकी मायाशक्ति शिवा लांगूल (पुच्छ) हैं । इस प्रकार शिव-शिवा दोनों ही समन्वयात्मक ब्रह्मचारी रूप में श्री राम परब्रह्म की सेवा में आजीवन अनुरक्त हैं । प्रश्न उठ सकता है कि लांगूल में महाशक्ति शिवा कैसे सन्निहित हुई ? उक्त ग्रन्थ में लिखा है कि भगवान शिव को एक बार वटवृक्ष के नीचे अतीव विचार मग्न देख कर भगवती ने पूछा—प्रभो, आज आप किस गम्भीर विचार में निमग्न हैं ? महेश्वर ने कहा—प्रिये, मेरे विचार का रहस्य यह है कि मैं तुम्हें कैलाश पर ही छोड़कर वानर वेष से भूतल पर अवतार ले रहा हूँ । उसी रूप से राम की सेवा करूँगा । . . . .

भगवती ने इस दिव्य भावना का सादर अनुमोदन किया । उन्होंने कहा कि यह तो अतीव परमानंदमयी बात है । परन्तु ऐसे मंगलमय कार्य में अपनी अर्धांगिनी को छोड़कर आपका एकाकी रहना कहाँ तक समुचित होगा ? कोई भी शुभ मांगलिक कार्य केवल आधे अंग से कहीं भी पूर्ण नहीं माना गया है । मैं आपकी सद्भावना में किसी प्रकार बाधक न बन, साधक रूप से उसे पूर्णतया सफल बनाने की दृढ़ कामना करती हूँ । आप ही बतावें, क्या प्रभा-भानु से, चंद्रिका चन्द्र से तथा छाया शरीर से कभी अलग हो सकती है ? आप पुरुष हैं; मैं प्रकृति हूँ । आप ब्रह्म हैं; मैं आपकी संलग्न शक्ति हूँ । मैं आपकी श्री राम-सेवा की कामना में सहानुगामिनी बनना चाहती हूँ । माहेश्वरी की विशुद्ध भावनाओं से परमाकर्षित सदाशिव बोले कि तुम्हारा विचार धर्म सम्मत तथा समादरणीय है । किन्तु मेरे ब्रह्मचर्य व्रत में तुम्हारा सहयोग किस भाँति उपलब्ध हो सकेगा ? चिंता केवल इसी बात की है । इसका समुचित धर्म-सम्मत निराकरण उपस्थित कर सको तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँगा । भगवती उमा ने कहा—देव, परब्रह्म की अनन्त महाशक्ति उनके साथ अन्तर्हित रहती हैं । उसी भाँति मैं भी आपके ब्रह्म-पुच्छ में संन्निहित हो व्रतसेवा में सहायिका रहूँगी । भगवान शिव ने सहर्ष माया-शक्ति शिवा को लोल लांगूल परब्रह्म पुच्छ में अव्यक्त भाव से निवास करने की आज्ञा दे दी—

शिव होणार भव्य वानर-आम्हासी सेवाकर्म सोपारे अवियोगे तुम चा होइला ।
शक्ति त्यां चे पुच्छ घोर-शक्ति जयाची अनिवार-अंतपार नाहीत याते ।

पुच्छ की शक्ति अनन्त है । पुरुषों की शिखा और स्त्रियों की वेणी दोनों ही शिरःस्थ ब्रह्मांड के दशम ज्ञान केन्द्र स्थल से उत्पन्न हैं । इसे "यशसि श्रियै शिखा' (यजुर्वेद) यश, ज्ञान, श्री आदि का प्रदाता माना गया है । पुच्छ-प्राण का भी विकास इसी ज्ञानक्षेत्र से अधोगत अनुत्रिकास्थी मेरुदण्ड के द्वारा हुआ है । मानव अज्ञान के कारण ही इसे अज्ञान का परिचायक मानने लगे । यह अद्‌भुत माया है कि इसके अन्तस्थ में ज्ञानाधिष्ठान पर मूल स्थिति से स्थिर होने पर भी यह अज्ञान रूप मान लिया गया । निर्गुण का सगुण ही एक अनन्तपुच्छ है जिसे ब्रह्म पुराण में "ब्रह्मपुच्छः परंब्रह्मपुच्छ" यों कहा गया है । इस सूक्ष्म रहस्य को दूसरे शब्दों में कहें कि ज्ञात का अज्ञात ही एक सुदीर्घ पुच्छ है । जैसे इस विश्व ब्रह्मांड का ज्ञाता अंश जहाँ अत्यल्प है वहाँ ही प्रतिकूल में अज्ञात-भाग अनन्त अमर्यादा है । अतः उसी ज्ञात पदार्थ के पीछे स्थित यह अज्ञात रूप पुच्छ है, ऐसा प्रतीत होता है । अज्ञान ही सगुण का आधार है, जो प्रगट में वही लांगूल-पाश है । अज्ञान-नाश, सगुण-लय है ।

रावण ने हनुमान से पूछा—'तुम्हारा मरण कैसे हो सकता है ?' हनुमान ने कहा—'मैं तुम से असत्य नहीं कहता । मेरे शरीर का मरण नहीं है :—

असत्य नाहीं तुझ सी-मरण नाहीं मा भया देहासा ।
मरण आहे पुच्छा सी तै मारिसी ते मीमरे ॥

यदि मरण है तो पुच्छ से, जिसे तू मारेगा तो मैं मर सकता हूँ । इस शब्द के अन्तःस्थ में गूढ़ भाव है । 'प्राण पुच्छ' पुच्छ ही प्राण है । अज्ञान रूप समूल पुच्छ के नाश से सगुण लय-शरीर की मुक्ति हो सकती है । रावण ने यही विचार किया कि वानर को अपने लांगूल रूप अज्ञान के प्रति ही अत्यधिक ममत्व होता है । इसी से उसने कहा—

कपि कै ममता पूँछ पर, सबहि कहेउ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ॥

निष्कर्ष यह है कि अज्ञान रूप पुच्छ को अग्नि द्वारा भस्म करने पर ही आपका विग्रह भी लय हो जायगा । यह अंशतः सत्य है, किन्तु जहाँ अज्ञान या अध्यारोप

लांगूल अनन्त है वहाँ उसे एक साधारण अग्नि से क्या समूल भस्म किया जा सकता है ? यह कार्य वैसा ही अशक्य है, जैसा जगत के सारे अनात्म पदार्थों के साथ अज्ञान का नाश। यदि कोई अपने इन्द्रियमनोवेद्य पदार्थों की कल्पनाओं से आधारित सवल ब्रह्म की अमर्यादित्व सीमा का विचार करता है तो उसकी पूर्णता सर्वथा अशक्य है। कारण, मनोवेद्य से भी अज्ञात सवल ब्रह्म की सीमा कितनी महान, अनन्त और व्यापक होगी, कौन वर्णन कर सकता है ? वहाँ देवगण की वाणी कुण्ठित हो जाती है। इस अनन्त आकाश मण्डल स्थित असंख्य खगोल समूहों की भ्रमणगति के पीछे उनके प्रकाश की गति का चरण कहाँ तक कितने सुदूर में प्रसरित है, इसे कौन बता सकेगा ? वास्तव में उसकी जो शृङ्खला या भाग है वही उनके पुच्छ हैं। पदार्थ की अपेक्षा उसकी छाया दूर तक फैलती है। उसी भाँति अन्तरिक्ष में भ्रमणशील नक्षत्र, योग, करण एवं नवग्रहों के पीछे विस्तृत छाया ही उन सबकी पुच्छ है। उसका माप कौन और कैसे ले सकने में समर्थ हो सकता है ? सूर्य, चन्द्र की अनन्त किरणें कितनी सुदूर जाती हैं, उसका माप किसके लिए सम्भव हो सका है ?

व्यक्ति जो शब्द बोलता है, उसे वह सुन भी लेता है, उसके व्यक्तित्व की माप कोई कैसे बता सकता है ? आधुनिक विज्ञान से रेडियो स्टेशन से बोले गये किसी के शब्द ट्राँजिस्टर में अङ्कित स्थान द्वारा ही सुनकर उसका व्यपकता का अनुभव कर सकते हैं, सारे विश्व का नहीं। इसी प्रकार किसी वस्तु की प्रत्यक्ष भावरूपता में उसके अभाव का काल-मापन कैसे किया जा सकता है ? इच्छा, ान, क्रिया समन्वित इस त्रिगुणात्मक विश्व के संस्कार, अज्ञान, प्रतिक्रिया या सम्भाग रूप लाँगूल पुच्छ कितना लम्बा विस्तृत है, इसका वर्णन करने में कौन समर्थ है ? शिव-महालिंग की मूल सीमा का शोध ब्रह्मा-विष्णु भी नहीं पा सके हैं। यह कथा सर्वप्रसिद्ध है।

शेप (अन्त) अथवा लाँगूल ही अज्ञान-लिंग है या ज्ञान-लिंग को आच्छादन देने वाली वह माया है जो अचित्य एवं अतर्क्य है। मारुति लिंग; माता अंजना के सिवा अन्य सभी के लिए अज्ञात था; एसा पुराणों का कथन है। मारुति विग्रह-विभूति का भले ही कोई अनुमान-प्रमाणों से कदाचित वर्णन कर सके; किन्तु महाप्रतापी लांगूल का वर्णन सर्वथा अनिर्वचनीय है।

पुच्छ माया शक्ति की दिव्य सेवा—जगदानन्द परब्रह्म श्री राम परमाह्लादिनी, महामाया, परमाद्याशक्ति सीता की अनन्तानन्त प्रभा किरणें ही विश्व के अनन्त रूपों में व्याप्त हैं। वही समस्त चराचर प्राणियों में अपने अनन्त गुण-रूपों से एवं अन्तस्थ वाह्य दोनों में ही संस्थित हुई अपना कार्य शक्ति रूप में करती हैं। इन्हीं के लिए कहा है—"या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता"। इनकी कृपा से ही मानव-देव-दानवादि सभी विजय, श्री, यश, शांति, कांति, विद्या, स्मृति, बुद्धि आदि महान गुणों को प्राप्त कर अपने ध्येय के चरम शिखर पर पहुँचते हैं! जैसे बाली, रावण आदि। किन्तु ये महेश्वर या परब्रह्म के सिवा अन्य किसी विश्वभूत प्राणी का स्वायत्ताधिकार मानने वाली नहीं हैं। ये अपनी प्रकृति से पूर्ण स्वतन्त्र हैं। 'शक्ति' शब्द में ही दो महान् विशिष्ट शब्द 'श' और 'कि' इन दो अक्षरों से व्यवहृत हैं। अतः

ऐश्वर्यं वचनश्शक्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री स शक्तिः परिकीर्तिता॥ (देवी भागवत)

'श' ऐश्वर्य और 'क्ति' पराक्रम का उद्‌वोधक है एवं इन्हीं दोनों विशिष्ट गुणों को अपने आराध्येश्वर तथा आराधकों को प्रदान करने वाली शक्ति नाम से प्रसिद्ध हुई हैं। वही त्र्यम्बका महाशक्ति गौरी मारुति की पुच्छ-स्वरूपा हो स्वामी की सेवा के लिए प्रादुर्भूत हुईं। सूर्य ग्रास-गमन काल में अबाध गतिरूपा वही देवी (लांगूल-चक्र द्वारा) हनुमान के शरीर पर छत्र रूप में देदीप्यमान रहीं—

लांगूल चक्रो हनुमान् छुक्ल दंष्ट्रोऽनिलात्मजः।
व्यरोचयत महाप्राज्ञः परिवेषीय भास्करः॥

सूर्य सान्निध्य में आगत समस्त विरोधकों को कपि ने पुच्छवज्रप्रहार से पराभूत कर उनमें अविस्मरणीय भय की स्थापना की।

लङ्का दरबार मे अभिमान के सर्वोच्च राजसिंहासन पर रावण को उपविष्ट देख एवं स्वामी को आसन-विहीन खड़ा देख कर तुरन्त ही गर्व-भंजनेश्वरी लूम शक्ति ने राज्य सिंहासन से ऊँचे मोढ़े रूप पिंडली में परिणत हो (उसी पर स्वामी को विराजमान कर) रावण गर्व को चूर-चूर कर दिया। रावण तेजहत हो गया—भएउ तेज हत श्री सब गयऊ। वह भयङ्कर भय की स्थि[illegible] जाता है। भयग्रस्त, निरुत्तर रावण

मारुति को स्वयं मार सकने में असमर्थ होने पर सेवकों से कहता है—बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ।

पुच्छ भस्म की आज्ञा से ही लङ्का भस्म हुई । विनाश काले विपरीत बुद्धिः । बुद्धि के दो ही रूप हैं—सुबुद्धि और कुबुद्धि । 'सुबुद्धि' 'सुमति' की परिचायिका है और 'कुबुद्धि' 'कुमति' की । इन दोनों के ही अलग-अलग विभिन्न फल प्रत्यक्ष दर्शित होते हैं—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना ॥

सुमति से अनन्त सुखों की उपलब्धि होती है ! कुमति का फल विपत्ति और विनाश है । कुबुद्धि में कारणभूता 'भ्रांति' प्रधान है । रावण इसी भ्रांति का शिकार हुआ । कपि ने स्वयं लङ्का नगरी को भली भाँति जलाकर विश्व में प्रत्यक्षतः रावण को प्रधान दोषी बना दिया । लङ्का से प्रस्थान के बाद उन्होंने अपनी दिव्य माया की पुच्छ-छाया लङ्का में छोड़ दी जिसके कारण घर-घर में सारे राक्षस लूमछाया-दर्शन से ही अहर्निश भयग्रस्त रहा करते थे (समर्थ-रामायण) ।

रावण पराभव काल—'शक्ति' की परमानुकम्पा से ही जीव बलशाली और तेजस्वी होता है । महाप्रतापी दसशीश जब गर्व से अतीव मदोन्मत्त हो शक्ति को भी अपनी अधिकारिणी मान बैठता है और महाशक्ति के अपहरण जैसे कुमार्ग पर पैर रखता है तभी शक्ति रावण का तीन गुणों से साथ छोड़ देती हैं । कुपथ पर पैर रखते ही व्यक्ति के शरीर में तेज, बुद्धि, बल ये तीनों ही लेश मात्र नहीं रहते । शक्ति ही अपने दिये हुए तीन विशिष्ट गुणों का अपहरण कर लिया करती हैं । यहीं से रावण का पराभव काल आरम्भ होता है ।

लङ्का-रणस्थल में लाँगूल की परमाद्भुत लीला देखने योग्य है । अहिरावण के पराभव में प्रधान लांगूल महाशक्ति थीं । हनुमान ने इसी लांगूल महाशक्ति द्वारा भगवान श्री राम जैसे आराध्येश्वर से युद्ध कर माता अंजना के शरणागत भक्त की रक्षा कर उसे जीवन दान दिया । महाभारत-युद्ध में आपने अर्जुन की रथ-ध्वजा पर बैठे ही बैठे कितने ही विकट अवसरों पर इसी दीर्घ लांगूल द्वारा रथ समेत अर्जुन की सतत रक्षा की है । रावण वध लीला की प्रच्छन्न संचालिका सीता थीं । इस गुप्त रहस्य

के एकमात्र ज्ञाता भगवान श्री राम थे। राम और रामवल्लभा में अभिन्नता है। वह आपकी आद्या शक्ति हैं। आपके अन्तर प्रेम के रहस्य के ज्ञाता या भगवत् कृपा के जैसे पूर्णाधिकारी हनुमान हैं वैसा दूसरा कोई नहीं—

पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं।
चितवहिं सब मारुत सुत पाहीं॥

इसी विशिष्ट भाव से अवध-पुष्प वाटिका में एकांत स्थित श्री राम ने आदि माया से मारुति को 'राम हृदय' तत्त्वोपदेश प्रदान कर प्रेरणा दी (अध्यात्म रामायण)। इसमें आधा महाशक्ति मारुति से कहती हैं—वत्स! रघुकुलनायक श्री राम को ही तुम अविनाशी, सच्चिदानन्द परब्रह्म समझो। परमाधीश्वरी 'मूल प्रकृति' मुझे जानो। रामायण संदर्भ में सीता कहती हैं—साकेत लोक में रघुकुल में सारी लीलाएँ मैंने ही पूर्ण सम्पन्न की हैं, तथापि सारे कार्यों के प्रधान लीला - नायक निर्विकार अखिलात्मा श्री राम ही माने जाते हैं—'आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि'। इसका कारण यह है कि राम निर्गुण परब्रह्म हैं—

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानु शोचत्याकांक्षते त्यजति नो न करोति किंचित्।
आनंद मूर्तिरचलः परिणाम हीनो-माया गुणाननु गतोहि तथा विभाति॥

श्री राम न तो चलते, न बैठते, न किसी प्रकार का शोच ही करते हैं और न किसी वस्तु विशेष की किंचित आकांक्षा (कामना) या त्याग ही करते हैं। वे तो परिणाम हीन एकमात्र अचल (कूटस्थ) आनंद मूर्ति हैं। वे केवल सगुण रूप में माया गुणों के अनुगत होने के ही कारण जैसे-तैसे आप प्रभासित होते हैं। अपने अवतार-ग्रहण के साथ ही उन्होंने यह प्रकट सूचित कर दिया था—

आदिशक्ति जेहि जग उपजाया।
सोउ अवतरहि मोर यह माया॥

अतः दोनों ही ओर स्वामी और सेवक की आद्या शक्ति तथा शिवा शक्ति ही ने अंतर्हित रूप से समस्त सेवा कार्य सम्पन्न किया है। इस आदि शक्ति की अनंत महानता का गुह्यातिगुह्य रहस्य समझ सकने में विश्व सर्वथा असमर्थ ही है। इसी अनंत गुणशालिनी शक्ति की वंदना कोई बुद्धिमान कवि इस प्रकार कहता है—

केयं कस्य कुतः केन, कस्मै किं प्रति कुत्र वा ।
कथं कदेत्य निर्णीता तां वंदे शक्ति मद्भुताम् ॥

अर्थात् यह कौन है ! किसकी है ! कहाँ से, किसके द्वारा, किसके लिए, किसके प्रति कैसे, किस अचिंत्य काल में कब प्रकट हुई, इस प्रकार जो निश्चित रूप से न जानी जा सकी है, उस परमाद्भुत शक्ति की वंदना करता हूँ ।

—:※:—

चरित संभाग

नतग्रीव सुग्रीव के रक्षण - निपुण - दुःखैक बन्धु—श्री हनुमान और सुग्रीव में बाल्यकाल से ही परस्पर घनिष्ठ मैत्री थी। विद्याध्ययन के बाद मारुति का जीवन ही सर्वथा बदल गया। वे दूसरे ही आनंद में मग्न हो गये, जिससे सुग्रीव का सम्पर्क ही छूट गया था। किन्तु सुग्रीव का राजवैभवानंद-भोगी भाई बाली से वैर हो गया। निष्कासित सुग्रीव अनेक त्रासों से व्याकुल सारे भुवनों में रक्षा की भावना से घूमा करता था। बालि की भयङ्कर मार से उसके शरीर पर अनेक घाव हो गये थे। मारुति दुःख-संतप्त बालमित्र सुग्रीव की दशा से आर्द्र हो गये। उसे आपने अभय स्थान ऋष्यमूक पर्वत पर लाकर आश्रय प्रदान किया। आपको इस बात का पता था कि बालि को ऋषि मतंग का शाप है कि वह इस पर्वत पर नहीं आ सकता। सुग्रीव ने स्वयं भगवान श्री राम से अपने दुःख वर्णन में (बाल्मीकि में) कहा है कि चारो दिशाओं में कहीं भी बाली के भय से त्राण न मिलने पर ही बुद्धिमान हनुमान के परामर्श से मुझे यह निर्भय स्थान मिला है। मारुति ने सुग्रीव को ऋष्यमूक पर्वत पर लाकर केवल बसाया ही नहीं, अपितु सदैव रक्षा भी की। बालीकृत किसी भी षडयन्त्र-रचना का आभास पाते ही आप अकेले दृढ़ता से उसे निरस्त कर दिया करते थे। वे सुग्रीव के आज्ञापालक मंत्री या सेवक मात्र नहीं थे। उनके मित्र और परामर्शदाता भी थे। राम-भक्त मारुति का शरीर सुग्रीव के संरक्षण में अर्पित था, किन्तु उनका चित्त श्री प्रभु-चरणों में और जिह्वा अहर्निश नाम स्मरण में अनुरक्त थी। आपके भावना-सम्बल की वृद्धि में देवर्षि नारद अत्यधिक सहायक थे, जो बराबर चिन्तन गुहा में आकर रघुकुल-नन्दन श्री राघवेन्द्र के चरित-सुधा-पान से आपके हृदय कमल को प्रफुल्लित करते रहते थे—

राम जनम सुभ काज सब, कहत देव ऋषि आइ।
सुनि-सुनि मन हनुमान के, प्रेम उमँग न अघाइ॥

हनुमान ने सूर्य एवं विधि की आज्ञा से प्रभु-मिलन-केन्द्र जानकर ही ऋष्यमूक पर्वत का चयन किया था। आप प्रभु-सेवा-सान्निध्य-प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा से ही प्रतीक्षा

में आँखें गड़ाए रहते थे। यथासमय शबरी से प्रेषित मैथिली-वियोगी भगवान् श्रीराम अनुज के साथ ऋष्यमूक (लौहगिरि) की तलहटी में पधारते हैं। अतुल बलशाली दो युगल वीरों को पंपासर की ओर से अकस्मात आते देख, उन्हें बालि-प्रेषित समझ कर सुग्रीव अतिशय भयभीत हो उठते हैं। सुग्रीव के अन्य मन्त्रियों की भी वही दशा हो जाती है। तभी हनुमान सबको समझाते हैं—आश्चर्य है कि आप लोगों का चित्त भय से इतना अधिक चंचल हो उठा है कि आप अपने को विचार मार्ग पर भी किंचिन्मात्र स्थिर नहीं रख पा रहे हैं ? यह नीति है कि जो मंत्री या राजा आकस्मिक भय के सामने दृढ़ता, विचार शक्ति, बुद्धि आदि गुणोंका त्याग कर देता है वह प्रजाका कभी समुचित शासन नहीं कर सकता। विचारवान महापुरुषों का कथन है कि चर (गुप्तचर) रूप में बुद्धि-विज्ञान गुणों से पहले दूसरों का हृदयगत भाव समझें। फिर शत्रु-मित्र जनित भावों के अनुसार ही आगे का यथोचित कार्य करें। मेरे विचार से इन युगल महावीर पुरुषों को महान् तेजस्वी देखकर बिना सोचे-समझे ही इनके द्वारा किसी अनिष्ट की आशंका नहीं करनी चाहिये। हनुमान को ही एतदर्थ अग्रसर कर सुग्रीव कहते हैं—

धरि बटु रूप देखु तैं जाई।
कहेसु जानि जिय सयन बुझाई॥

ब्रह्मचारी ब्राह्मण के वेष में जाकर उनके हृदय-भावों को जानकर हमें इशारे से ही समझा देना। यदि वे बालि प्रेषित होंगे तो मैं तुरन्त ही पर्वत छोड़ कर भाग जाऊँगा (अनर्घ राघव)। वाल्मीकीय रामायण में सुग्रीव कहते हैं—

गच्छ जानीहिभद्रं ते बटु र्भूत्वा द्विजाकृतिः।

श्री राम - मारुति - मिलन—वायुनन्दन ब्रह्मचारी तो थे ही। केवल वानर से मानव वेष धारण कर आप तुरन्त श्री प्रभु के सम्मुख आ पहुँचे। उन्होंने भगवान को प्रणाम कर उनके प्रति उचित सद्भाव प्रकट करने के पश्चात् परिचयार्थ चार प्रश्न पूछे। ये प्रश्न गूढ़ अर्थों को वहन करनेवाले और उत्तरोत्तर मार्मिक हैं। तुलसी के अनुसार वे प्रश्न इस प्रकार हैं :—

(१) श्यामल गौर शरीर से क्षत्रिय रूप में वन में भ्रमण करने वाले आपलोग

कौन हैं ? (२) क्या आप त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) में से कोई दो तो नहीं हैं ? (३) क्या आप नर-नारायण हैं ? (४) क्या आप स्वयं साक्षात् भगवान हैं जो भूमि-भार-हरण करने के लिए इस वेष में यहाँ विचरण कर रहे हैं ? इस प्रकार चौथे प्रश्न पर मारुति शांत हो जाते हैं। वे एक ही प्रश्न कर शांत होते, परन्तु ऐसा न कर क्रमशः एक से परे दूसरा प्रश्न करते ही गये, क्योंकि उत्तरोत्तर श्री राघवेन्द्र के दिव्य माधुर्य रसानन्द में ब्रह्म तत्त्वज्ञ की बुद्धि-स्तर विकसित होती गई। अन्ततः अनन्त ब्रह्मांड-नायक परब्रह्म-स्वरूप के आनन्द सिंधु में बुद्धि रसोन्मग्न हो गयी।

पद्धति भी यही है कि पहले स्थूल अनुमान से क्रमशः सूक्ष्मातिसूक्ष्म में बुद्धि के द्वारा चित्तको ले जाया जाय। प्रभु के द्वारा कोई प्रश्नोत्तर बीच में न मिलने से ही जब तक हृदय में पूर्ण संतोष न हुआ तब तक आप भी प्रश्न करते ही गये। दूसरी ओर श्री प्रभु भी प्रश्नों का उतर दें भी कैसे ? नीति है कि किसी के प्रश्नों के बीच में उत्तर न दें। प्रथम तीन प्रश्नों के उत्तर भगवान ने इसलिए न दिये कि आप उनसे महान श्रेष्ठ हैं। अन्तिम 'परतम' अवतार संदर्भ में गोपनीयता की भावना से स्पष्ट उत्तर न दे "कोसलेस दसरथ के जाये" शब्दों से अपने को गुप्त रख नररूप में स्वपरिचय देना आरम्भ किया है। मानस में स्वामी सेवक का अनुपम भाव (अध्यात्म रामायण वत) वर्णित है। बाल्मीकि कुछ विस्तार के साथ इससे भिन्न परिचय आरम्भ करते हैं। यहाँ हनुमान ने वटुरूप में विनम्रता से प्रणाम कर दोनों वीरों की विधि विधान से पूजा भी की है। वाक्य कुशल हनुमान भगवान के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के संदर्भ में प्रशंसात्मक वीर गुणों का वर्णन करते हुए उन्हें मात्र चन्द्र-सूर्य का उपमेय बताते हैं। इन विचारों पर भगवान द्वारा कोई उत्तर न मिलने पर मारुति कहते हैं—"आप लोग मुझसे भाषण क्यों नहीं करते ? यदि आप पहले मेरा परिचय जानना चाहते हैं तो सुनें। मैं पवनसुत हनुमान हूँ। मैं सुग्रीव का सखा और मंत्री हूँ। वानरराज सुग्रीव ने आपके साथ मैत्री की कामना से मुझे भेजा है।" इतना कह कर मारुति शान्त हो जाते हैं।

वाणीकला-सम्मोहित श्री राम—वटु मारुति के संभाषण से सम्मोहित भगवान राम आनन्द-विभोर हो बगल में खड़े लक्ष्मण से बोले—"भाई ! ये महात्मा हनुमान कपिराज सुग्रीव के मंत्री हैं। उनके कल्याण की भावना से ही ये मेरे पास आये हैं।

किन्तु पवनात्मज हनुमान की सुधामयी वाणी कितनी दिव्य और सुसंस्कृत है, यह गंभीर विचार के योग्य है। लक्ष्मण, मेरी धारणा है कि जो ऋग्वेद-विनीत (शिक्षा), यजुर्वेद-धारी (ज्ञान), सामवेद विदुष (पंडित) हो तथा समस्त व्याकरण साहित्य का नित्य स्वाध्यायी हो, वही इस प्रकार निर्भीकता से वार्त्तालाप में पूर्ण समर्थ हो सकता है।

ना नृग्वेद विनीतस्य ना यजुर्वेद धारिणः।
ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥

सारे महान गुण इनमें स्वभावतः भरे हैं। संभाषण कला के तो ये गुणनिधि हैं। कदाचित् इस ओर तुम्हारा ध्यान न गया हो ! इतने संभाषण में कहीं भी इनके शब्दों में व्याकरण से न कोई अशुद्धि आई और न मुख, नेत्र, ललाट, भृकुटी आदि में अभि-व्यंजना वशात कोई दोष आया। न रुक-रुक कर, न शब्दों को तोड़ मरोड़ कर और न बहुत ऊँचे-नीचे, अपितु मध्य स्वरों में जिस शास्त्रीय अलङ्कार विधान से पूर्ण सुमधुर वाणी में वटु ने अपना अभिप्राय संक्षेप में अभिव्यक्त किया है वह इनके पूर्ण पांडित्य एवं अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है। ये संतजनों से सादर अभिनन्दनीय हैं। अतः हे लक्ष्मण, तुम भी इनसे स्नेहमयी मधुर वाणी से बातें करो।" आज्ञानुसार लक्ष्मण बोले—"वायुनन्दन, वानरराज सुग्रीव का बल गुण, शालीनता एवं उनकी विपदा का परिचय हमें कवन्ध से मिल चुका है। हम लोग भी सुग्रीव के साथ मैत्री स्थापना की भावना से इधर आए हैं। यहाँ लक्ष्मण ही श्री राम के परिचय-प्रधान माने गये हैं। 'मानस' में भगवान श्री राम ने स्वयं अपना परिचय हनुमान को दिया है।

भविष्य पुराण में पंपासर म तपोनिधि 'स्थाणु' रूप रुद्र मारुति को ब्रह्मा ने यह वर दिया था कि वैवस्वत मन्वन्तर के २८ वें युग में त्रेता के पूर्व चरण में श्री राम परब्रह्म के साक्षात्कार से भक्ति प्राप्ति के साथ ही तुम्हारा जीवन कृत-कृत्य होगा।

भविष्योत्तर पुराण में श्री राम सम्मिलन संदर्भ में हनुमान सेवक भावना के साथ सर्व कार्य के साधक पूज्य देव व्रतनायक भी माने गये हैं। इसमें राम से मिलने पर मारुति ने कहा कि सूर्य को लील लेने के प्रसंग में मेरे मूर्च्छित हो जाने पर मेरे पिता के कोप-शांत्यर्थ आए ब्रह्मादि देवगणों ने मुझे स्वस्थ करते चिरंजीवित्व का आशीर्वाद दिया था। इसके साथ ही उन्होंने आज्ञा स्वरूप दो वर दिये। प्रथम में उन्होंने कहा था—

"अशेष रामकार्याणि साधय त्वं कपीश्वर"। कपीश्वर, भगवान श्री राम के सारे अशेष कार्य तुम सफल बनाना, जिसका उत्तर दायित्व तुम्हारी सेवा में आधृत है। द्वितीयतः उन्होंने कहा कि "हे कपीश, आज से तुम्हारा हनुमान नाम समस्त व्रतों का नायक रूप से विश्व प्रसिद्ध होगा। जो भी इस हनुमद् व्रत को सविधि करेगा उसके सारे अभिलषित कार्य सफल हो जायेंगे। इसके बाद उन्होंने यह भी आज्ञा दी कि यह बात कार्यार्थी श्री राम से भी सूचित कर देना।" हनुमान ने कहा, "प्रभो, ये विचार मैंने आपके सम्मुख पूर्व स्मृति (याद) से ही निवेदन किये हैं। मैं सत्य कहता हूँ, इसमें असत्यता का किंचिन्मात्र भी लेश नहीं है। आप जगदीश्वर सर्वान्तर्यामी हैं।" आपको यदि प्रतीति हो और रुचे तो विधि की आज्ञा के अनुसार कार्य-सिद्धि के लिए हनुमद् व्रत करें। उसी समय दिव्यवाणी हुई—'यदुक्तं सत्यमेवतत'। इसे सुन कर श्री राघवेन्द्र प्रसन्न हो हनुमदुक्त व्रत करते हैं।

ब्रह्म पुराण—ब्रह्म पुराण में सेवक जहाँ आराध्येश्वर परात्पर स्वामी के श्री चरणों में सेवा की कामना से अनन्य दैन्य भक्ति भाव प्रकट करता है वहीं स्वामी श्री राम अपने सेवक को स्वतः अप्रतिम ब्रह्मांड नायक रूप में मानकर दिव्य सहस्र नामों से सादर स्तुति करते दिखायी देते हैं (जो इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही दर्शित है)। रुद्रयामल एवं शिवतंत्रादि में भी 'शिव' कृत विभिन्न हनुमान सहस्र नाम स्तोत्र साधारण नहीं है। मारुति किस भाँति श्री प्रभु चरणों में आत्मसमर्पण करते हैं तथा भगवान श्री राम किस भाँति समादर स्तुति के साथ सीता के अज्ञात अपहरणकर्त्ता के शोध-विनाश आदि समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व उन्हें प्रदान करते हैं इसका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

बाल सूर्य के समान अतीव तेजवान श्री राम के सम्मुख होते ही कपीश्वर हनुमान दौड़ कर उनके पदकमलों में साष्टांग प्रणाम करते हैं। फिर वे हाथ जोड़कर कहते हैं—योगियों के भी ध्यान में अगम्य, संसार-भय नाशक, पुरुषोत्तम! आपके पाद-पद्म के दर्शन से मैं कृतकृत्य हो रहा हूँ। मेरे योग्य जो भी कार्य हो उसे आप सूचित करें। प्रसन्न हो भगवान राम ने कहा—"कपिश्रेष्ठ, दण्डकारण्ड में मारीच मृग के पीछे जाने पर कोइ विप्र वेषधारी भिक्षु मेरी प्रिया वैदेही को अपहरण कर ले गया। उस जानकी-

अपहर्ता का तुम्हें पता लगाना होगा। तुम ज्ञानवंतों में श्रेष्ठ तथा सात करोड़ महा-मंत्रों से मंत्रित शरीर वाले हो—

त्वया गम्यो न को देशस्त्वं च ज्ञानवतां वरः।
सप्त कोटि महामंत्र मंत्रितावयवः प्रभुः॥

श्री राम ने महारुद्र मारुति की सहस्रनाम से स्तुति भी की है। कपि ने विनय-पूर्वक कहा—अखिल विश्व आपकी ही कृपा का अभिलाषी है; फिर आप मेरी स्तुति क्यों कर रहे हैं ? आप से प्रार्थना है कि मुझे स्पष्ट शब्दों में आज्ञा दें कि मुझे क्या करना है।

यह सुनकर भगवान बोले—कपीश्वर, विश्व के सुख प्रदाता रूप से तुम मेरे सखा बन कर जानकी को अज्ञात स्थल में ले जाने वाले अपहरणकर्त्ता दुष्ट का पता लगाकर उसके वध करने एवं वैदेही को ले आने में तुम दास्य रूप से मेरी सहायता करो। वीर, तुम्हारे द्वारा इस प्रकार कार्य करने से ही मेरा कार्य सफल होगा। उसी समय अवि-लम्ब कपीश्वर ने दास भाव से "ओमिति" कह कर भगवदाज्ञा शिरोधार्य कर ली। इस रूप में आप राम के परम प्रिय बन्धु भी हो गये।

सुग्रीव आपका बाल मित्र और गुरु भाई (सूर्य-पुत्र) होने के कारण अति प्रिय था। उसके दुःख में दुखी होना स्वाभाविक था। अतः आप स्वतः उसके बन्धु हुए। हनुमान इधर राम के सान्निध्य और सेवा प्राप्ति का एकमात्र व्रत लिए बैठे थे। अतएव प्रभु ने सगे भाई के अभेद स्तर में आपको अपना प्रिय प्रेम-बन्धु बना लिया। यह संयोग ऐसा था मानो बिछुड़ा हुआ कोई अभिन्न भाई या सखा अकस्मात् विपत् काल में मिल जाय। ब्रह्म पुराण में प्रकट एवं अन्तर्हित दोनों रूपों से सारा कार्य भार मारुति को सौंप दिया गया। आप तब से भगवान के परम विश्वसनीय सेवक, सखा, अन्तरंग सचिव आदि सभी भावों से समस्त भावी कार्यों के गुप्त-प्रकट संचालक हुए। इसी को तुलसी ने इस रूप में लिखा है—

राम लषन हनुमान मन, दुहुँ दिसि परम उछाहु।
मिला सुसाहिब सेवकहि, प्रभुहि सुसेवक लाहु॥

आसुरी वृत्तिवालों के विध्वंसक—महाबली बाली के वध के मुख्य कारण हनुमान ही थे। यह प्रश्न भी उठता है कि सगे दो भाइयों में सूर्यपुत्र सुग्रीव के हितरक्षक तथा

इन्द्रपुत्र बाली के शत्रु आप क्यों बने ? इसका सामान्य उत्तर तो यह है कि बाली ने अनुज-पत्नी का अपहरण किया और सुग्रीव को राज से अकारण ही हीन दशा में निकाल ही नहीं दिया, वरन् उसे जान से मार डालने के लिए सदैव प्रयत्न करता रहा। सुग्रीव जीवन के लिए व्याकुल था। गूढ़ कारण यह है कि हनुमान अपनी प्रकृति से ही दैवी सम्पत्ति के परिपोषक एवं आसुरी सम्पत्ति के विनाशक हैं। आप ज्ञानेन्द्रियों के मित्र और कामेन्द्रियों के परम शत्रु हैं। इन्द्रियों के स्वामी 'इन्द्र' ज्ञान का प्रकाशक कहलाता है। उसकी प्रकृति 'इन्द्रियाँ' काम जनक विषय भोगेच्छा को प्रकाशित करती हैं। अन्तर्मन, बहिर्मन, अन्तश्चिति; बहिश्चिति, अमृत-मृत आदि ऐसे द्वन्द्व में इन्द्र शक्ति के दो भेद दिखाई देते हैं। उदाहरणत: एक ही विद्युत धन-ऋण प्रकाशक, ध्वनि-वाहक, रोग-निवारक एवं दाहक आदि जैसे विभिन्न गुणात्मक रूप धारण करती है। इसी प्रकार एक ही प्राणशक्ति 'रुद्र-इन्द्र-मित्र' होते हुए भी दृष्टिभेद से बाली-सुग्रीव हैं। इन्द्र शक्ति के कामरूपा इन्द्रिय-मर्त्य अंश से आसुरी सम्पत्ति-रूप बाली का जन्म और इसके विपरीत सूर्य रूप, दैवी संपत्ति से सुग्रीव का जन्म है। दैवी-आसुरी वृत्ति का परिणाम स्पष्ट दिखाने के लिए ही रामायण में बाली-सुग्रीव, रावण-विभीषण आदि और महाभारत में कौरव-पांडवों का युगल रूप दिखलाया गया है। अत: सूर्य-स्वरूप दैवीसंपत्ति में उत्पन्न सुग्रीव का आपने संरक्षण किया तथा उसे प्रभु-शरणागति द्वारा अभय पद प्रदान कराया। उसका इहलोक और परलोक दोनो बन गया। इसके विपरीत इन्द्र-इन्द्रिय जन्य आसुरी-वृत्ति वाले बाली का हनन आपने आवश्यक माना। बलशाली बाली का वध अपेक्षित था। मारुति ने यही नीति लङ्का में भी अपनायी। वहाँ आप विभीषण विरद के वरदाता हुए। प्रभु के पूर्व ही आपने विभीषण से प्रगाढ़ मैत्री स्थापित कर ली थी। इसी कारण आप सपरिवार लङ्काधिनायक दुष्ट रावण, कुम्भकरण, मेघनाद आदि के मर्म स्थानों को तोड़कर उनके सारे दुःष्कर्मों के फलदाता भी हुए। द्वापर-काल में भी महाभारत-युद्ध में दैवीवृत्ति-सम्पन्न पंच पांडवों में श्रेष्ठ अर्जुन के आप सहायक हुए। अर्जुन ध्वजा पर स्थित हो आपने रण में रथरक्षा के साथ अर्जुन को ही नहीं, अपितु भीमादि सभी को विजयी बनाया। वहाँ भी विरोध आसुरी-संपत्ति एवं दैवी संपत्ति का ही था। इस प्रकार आप आसुरी-वृत्ति सम्पत्ति के

विरोधी तथा दैवी वृत्ति के साधु जनों के संरक्षक एवं सन्मार्ग-दर्शक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

मध्यस्थ का महान् उत्तरदायित्व—लोकवेद, आधिभौतिक, आध्यात्मिक आदि सभी संभागों के कुशल विवेकी हनुमान भक्तों के सभालने में प्रधान आचार्य माने गये हैं। तभी तो भगवान ने आपकी मध्यस्थता के कारण सुग्रीव के साथ मैत्री स्थापित की और वाली जैसे दुर्धर्ष शत्रु को मारा। राज्य-पद पाने पर सुग्रीव ने भगवान को चार्तुमास बिताने के लिए प्रवर्षण गिरि पर प्रेपित्त कर दिया। किष्किधा राज-महल में जाने के पश्चात् वह कभी भगवान से मिलने भी न आया। किन्तु मारुति तो दोनों ओर के प्रधान मध्यस्थ बन्धु थे। सुग्रीव चिंता मुक्त हो कंचन-कामिनियों के आनन्द रस में लीन हो जाता है। वहीं प्रभु-कार्यों के प्रधान नायक पवन-कुमार विश्व में फैले सारे 'रिच्छ-कपि-कटक संघट विधार्यो' होने के कारण रीछ-वानरों की सेना का संघटन कर लेते हैं। चातुर्मास समाप्ति के बाद ही किष्किंधा में समुपस्थित हो जाने के लिए वे उन सब का आवाहन करते हैं। सागर को सेतु द्वारा बाँध लेने आदि के सभी कार्यों के प्रधान विधायक भी आप ही हैं। सैन्य संघटन का कार्य कोई साधारण कार्य न था और वह भी समय के पूर्व, जिसका पता कपिराज सुग्रीव को भी नहीं। यह है आपके उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य-वहन का कुशल पांडित्य जो अघटन घटन था। आपने असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया। विषयासक्त सुग्रीव राम-काज भले ही भूल जाँय, पर कपिश्रेष्ठ मारुति से कोई चूक कैसे हो सकती है ?

चातुर्मास बीतने पर आ गया। राम विचार-विनिमय की प्रतीक्षा में ही रह गये। सुग्रीव की ओर से कोई संदेश भी न मिला। अतः स्वमान की दृष्टि में कर्तव्य प्रधान श्री प्रभु कार्य को मानकर ही उभय-हितैषी निराभिमानी पवम कुमार स्वतः किष्किंधा नगर में जाते हैं। राजप्रासाद में सुग्रीव से एकांत में आप सम्मान से मिलने पर नीति के चारो अङ्गों द्वारा समझाते हुए कहते हैं—कपीश; दुःखोन्मुक्त हो आपने सब कुछ पा लिया है, किन्तु जिसके साथ अग्नि-साक्षी द्वारा मैत्री स्थापन कर आपने प्रतिज्ञा की है उसका परिपालन करना ही अब प्रधान धर्म है। अवसर जानने वाले महापुरुष मित्र-कार्य की सम्पन्नता में सदैव सन्नद्ध एवं जागरूक रहते हैं। अतः आप जैसे सन्मार्गी, चरित्रवान राज महापुरुष को भी अपने मित्र-कार्यों को भली-भाँति शीघ्र आरम्भ कर

देना समीचीन प्रतीत होता है। मित्र कार्य में सादर-सोत्साह उद्योग न करनेवाले पुरुष बड़े ही भाग्य-हीन होते हैं। श्री राम और लक्ष्मण का कोप किसी भी समय भयानक अनर्थ की सृष्टि कर सकता है। श्री राम-काज का समय बीता जा रहा है। भगवान रघुकुलाधीश काल जानते हैं, पर बुद्धिमान हैं। इसी से उन्होंने पूर्व समय बीतने की बात नहीं कही। आपको यह भली भाँति ज्ञात होना चाहिए कि वे आपके स्थिर-मित्र तथा समृद्धि के कारण हैं। वे सर्वगुण-शक्ति-संपन्न, दिव्य प्रतिभाशाली वीर महापुरुष हैं। जब तक वे अपनी ओर से कुछ कहें, उससे पहले हम कार्य आरम्भ कर दें तो समय बीता नहीं कहा जा सकेगा। आप शक्तिमान और पराक्रमी हैं। यह समझ कर ही वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कृतघ्न होने पर वे बाली की भाँति आपका शीघ्र वध भी कर सकते हैं—न करोषि कृतघ्न स्त्वं हन्यसे वालि वद् द्रुतम। वे आपके बल के आश्रित नहीं हैं, अपितु मैत्रीकृत प्रतिज्ञावश आपके कार्यों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे विश्व के सारे सुरासुर गणों को अपने अमोघ बाणों से क्षण भर में भस्म कर दे सकते हैं। अतः सपरिवार अपने कल्याण की कामना से समय के भीतर ही राम-काज-प्रतिज्ञा की रक्षा कीजिये। बन्धु-रक्षण-निपुण हनुमान के नीतिमय हितोपदेश से कपिराज सुग्रीव अतीव भयभीत हो बोले—मारुत सुत, वास्तव में—"विषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना।" अतः सुग्रीव ने तुरन्त हनुमान को जहाँ-तहाँ सारी दिशाओं में वानरों को (पंद्रह दिन की अवधि में आ जाने के शर्त पर) भेजने की आज्ञा दे दी।

चतुर सुजान हनुमान ने तुरन्त विश्वसनीय हजारों वानर वीरों को सुग्रीव के आज्ञानुसार विश्व में भेज दिया। इधर गुप्त रूप से प्रतीक्षारत वानर-भालुओं के ससैन्य यूथाधिपतियों को ठीक समय पर किष्किंधा पहुँचने की सूचना दे दी। अपनी नीति कुशलता से आपने समागत श्री रामानुज के अनर्थकारी क्रोध एवं कृतघ्नता जन्य समस्त दोषापराधों से सुग्रीव को बचाकर यथासमय पुनः भगवान का प्रिय भाजन बना दिया। सीता के अन्वेषण के संदर्भ में परस्पर विचार-विमर्श हो ही रहा था कि सारी दिशाओं से अनेक रंग और जाति के वानर-भालुओं की सेना अपने-अपने यूथाधिपतियों के साथ श्री प्रभु के सम्मुख चतुर्दिक मेघ-सी छा गयी। 'नाना वरन दिसि, देखिय कीस बरूथ'। नाना वरन शब्द के संदर्भ में महर्षि वाल्मीकि चार सर्गों में विस्तार पूर्वक

वर्णन करते हैं। अध्यात्म रामायण में (६।१९) कई वर्ग-स्तूप अंजना पर्वत के समान नीले-काले, कई स्वर्ण गिरि के से, कई अतीव लाल मुख वाले, कई बड़े-बड़े बाल वाले, कई श्वेत मणि के से और कई राक्षसों के समान अतीव भयङ्कर युद्ध के प्रबलेच्छु प्रतीत हो रहे थे। इसी प्रकार अन्यान्य रामायणों में भी वर्णित है। इन अपार वानर-भालू सैनिकों की संख्या लगाने वालों के संदर्भ में भगवान शिव पार्वती से इतना ही कहते हैं—

वानर कटक उमा मैं देखा।
सो मूरख जो करन चह लेखा॥

शुक नामक राक्षस चर रावण से कहता है कि वानरी सेना नहीं, अपितु यूथ सेनाधिपतियों की संख्या वहाँ जन-श्रुतियों से सुनी है। वे १८ पद्म हैं—अत्र यूथाधिपतयः पद्मान्यष्टादशस्मृताः (आनन्द रामायण)। तुलसी कहते हैं—

अस मै सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथम बंदर॥

इस प्रकार रामकाज के अंतस्थ संचालक हनुमान सारी व्यवस्था सम्पन्न कर कपिराज सुग्रीव के द्वारा सीता शोध का महान कार्य श्री प्रभु के सम्मुख ही आरम्भ कर देते हैं। वाल्मीकि के अनुसार सुग्रीव भगवान से कहते हैं—नरश्रेष्ठ, समुपस्थित समस्त सेना वीरों को आप अपनी मानकर, समयानुसार जो भी उचित समझें वहाँ आज्ञा प्रदान करें। सुग्रीव से प्रसन्न हो भगवान बोले—कपीश, इस समय पहला कार्य तो वैदेही का पता लगाना है। एतदर्थ आप ही इन महावीरों को समुचित आज्ञा दें। तदनुसार सुग्रीव ने समस्त वीरों के प्रति प्रेमादर्श का अतीव सुन्दर भाव प्रदर्शित करते हुए आदेश दिया कि वे सभी दिशाओं में जाकर जानकी का अन्वेषण करें। इस कार्य के लिए वे एक मास की अवधि देते हैं—'मास दिवस महँ आएहु भाई।' इसके साथ ही वे प्रलोभन भी देते हैं कि जो एक मास के भीतर सीता को देख आने का समाचार देगा वह मेरे लिए भाई-सा प्राण-प्रिय और समान ऐश्वर्यशाली होगा। मेरा महापराधी भी यदि एक मास के भीतर पता लगाकर आवेगा तो उसे कोई भयदण्ड नहीं होगा। किन्तु बिना सुधि के आनेवाले मेरे द्वारा प्राणदण्ड के भागी होंगे। सुग्रीव के आदेशानुसार पूर्व दिशा में यूथ प्रधान विनत, पश्चिम में सुषेण, और उत्तर में शतबलि नामक वानर वीर अपने-अपने यूथों के साथ प्रस्थान कर गये। सुग्रीव को दक्षिण दिशा से ही आशा थी।

इसीलिए इस दिशा के लिए चुने गये विशिष्ट वीरों में प्रधान अंगद, नील, नल, हनुमान, जामवंत आदि वीरों को उन्होंने विशेष सम्मान के साथ भेजा। सुग्रीव ने उन्हें कहा कि— बन्धुओ, शरीर धारण करने का एकमात्र यही सुन्दर फल है कि संसार के सारे प्रपंचों को छोड़कर राम का भजन करें। वास्तव में वही गुणवान महाभाग्यवान है, जिसका श्री राम-चरणों में प्रेमानुराग है। आप सभी इसके योग्य पात्र हैं, जो श्री राम काज में संलग्न होने जा रहे हैं।

कपिराज की आज्ञा से अति प्रभावित सभी वानर वीर उन्हें प्रणाम कर, प्रभु को स्मरण करते हुए अपते जूथों के साथ चल पड़े। सबके पीछे रामकाज साधक पवन कुमार अभिवादन करते हैं (वाल्मीकि)। सुग्रीव को पूर्ण विश्वास है कि प्रभुकार्य-सिद्धि के नायक हनुमान ही हैं। अतः उन्हें वे एकान्त में बोले—"हरिपुंगव, भूमि, अन्तरिक्ष, आकाश, पाताल, जल या देवलोकादि ऐसा कोई भी स्थल नहीं है, जहाँ आपकी अबाध गति न हो। आप-सा तेजस्वी भूतल में नहीं है। मैं अधिक क्या कहूँ। आप अपने विचार से जिस प्रकार जानकी मिलें वह कार्य करें। अध्यात्म रामायण में विदा करते समय सुग्रीव कहते हैं—

अस्मिन कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपि सत्तम।
जानामि सत्वं ते सर्वं गच्छ पंथाः शुभस्तव॥

वाल्मीकि सूचित करते हैं कि सुग्रीव का इन पर अधिक विश्वास देखकर और स्वयं अपने ऊपर हनुमान की दृढ़ आस्था देखकर भगवान ने जान लिया कि कार्य-सिद्धि इनसे ही होगी। तुलसी ने लिखा है—जानि काज प्रभु निकट बोलावा। बटु रूप हनुमान के प्रथम मिलन के अवसर पर इनकी वाणी और गुणों से प्रभावित हो राम ने लक्ष्मण से प्रशंसा करते हुए कहा था—"भाई! जिस राजा के पास ऐसा गुण-सम्पन्न दूत हो, उसके कार्य दूत के वचन से ही सिद्ध हो सकते हैं तथा शत्रु भी उनके वचन से अतीव आकर्षित हो जा सकता है।

समस्त वीरों के चले जाने पर एवं सब से पीछे रह, दोनों विभुओं को प्रणाम कर हनुमान के जाने में मार्मिक रहस्य था। इसके कई विशिष्ट कारण हैं। ये सदैव समाज में अपने को पीछे रख लोगों के विचार-मर्मों को लेकर ही आगे आते थे। यहाँ तो

एकांत में आराध्येश्वर से मिलकर आज्ञा, आदेश, चिह्नादि प्राप्त करने का परोक्ष कार्य प्रधान था।

हनूमान हिय हरषि तव, राम जोहारे जाइ।
मंगल मूरति मारुतिहि, सादर लीन्ह बुलाइ॥ —(रामाज्ञा)

कुछ दूर से ही प्रणाम करने के कारण, भगवान ने मारुति को अपने अति सान्निध्य में बुलाया है। पास आते ही वे जब पुनः श्री चरणों में नमन करते हैं तभी प्रभु शीश पर अपना कर-कमल न्यस्त कर प्रथम शुभाशीर्वाद प्रदान करते हैं—परसा सीस सरोरुह पानी। तुलसी द्वारा जो यहाँ 'सरोरुह पानी' शब्द आया है वह ब्रह्म पुराण के ही भावों का गूढ़ द्योतक-सा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त 'मानस' में ऐसा कहीं शब्द ही नहीं है। अर्थात् श्लेष-युक्त 'कर-कमल' के व्याज से भगवान श्री राम ने सरोरुह (कमल) और पानी (जल) से भगवान रुद्र मारुति का भावनात्मक समादर किया है। पुराणों में भगवान शिव की प्रसन्नता के लिए भगवान विष्णु द्वारा कमल एवं जलाभिषेक पूजन प्रसिद्ध ही है। वही समादर भाव तुलसी ने यहाँ अभिव्यक्त किया है। मानो इस वरद कर-कमल से भगवान ने अहंकारी रावण के अहंकार-नाश का सर्वाधिकार भगवान रुद्र मारुति को समर्पण कर विजय का आशीर्वाद दिया। वास्तव में ऐतिहासिक एवं लोकदृष्टि से समाज एवं राष्ट्र के बड़े-बड़े अधिनायक अपने अहंकार से ही विनष्ट होते देखे गये हैं। अहंकार ही अहंकारी के विनाश का प्रधान कारण होता है। अहंकार के अधिनायक अहंकार शिव ही हैं। अहंकार स्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्यस्ततो भवत्! तत्वतः आप भगवान रुद्र हैं, जो हनुमद् रूप से लङ्का जाकर अहंकार का फल देने को उद्यत हो रहे हैं।

मुद्रिका-संदेश-प्रदान—श्री राम ने हनुमान को विश्वस्त, दूरदर्शी, सुयोग्य, चतुर और अधिकारी जानकर सीता के प्रत्यय के लिए उनके हाथ में अपनी मुद्रिका दे दी—

जानि सिरोमनि जानि जिय, कपि बल बुद्धि निधान।
दीन्ह मुद्रिका मुदित प्रभु, पाइ मुदित हनुमान॥ (रामाज्ञा)

भगवान कहते हैं—"वत्स, इस मुद्रिका से तुम्हारे प्रति सीता का विश्वास होगा। मेरे पास से तुम आये हो यह उसे सान्त्वना मिलेगी—

बहु प्रकार सीतहिं समुझाएहु ।
कहि बल बिरह बेगि तुम आएहु ॥

अनेक प्रकार से मेरे बल-विरह आदि का संदेश देकर समझाना तथा यथासमय शीघ्र वापस आ जाना । इस बल-विरह के सीतासंदेश-संदर्भ में ही राजनीति पक्ष से भगवान ने यह भी कहा कि लङ्का का सारा दुर्ग-विशेष और जानकी को देख शत्रु की वास्तविक स्थिति का पता लगाते आना—"देखि दुर्ग विसेषि जानकी जानि रिपु-गतिं आउ (गीतावली) । ये सारी बातें प्रभु ने नत मस्तक मारुति के कान में ही कही थीं, जिससे सुग्रीव यहाँ भी सर्वथा अनभिज्ञ रहे । भगवान की इस अनुपम कृपा-जनक सेवा-लाभ से हनुमान ने अपना जन्म सुफल माना । इसके बाद हनुमान सुरक्षा के लिए मुद्रिका को अपने गाल की थैली में रख, आनंद मग्न श्री प्रभु को प्रणाम कर प्रस्थान करते हैं—गाले मेलि मुद्रिका मुदित मन पवन पूत शिर नायो । अध्यात्म रामायण के अनुसार चलते समय प्रकट रूप में भगवान पुनः उन्हें मंगलमय आशीर्वाद में कहते हैं—जानामि सत्वं ते सर्वं गच्छ पंथाः शुभस्तव । भक्त ! तुम्हारे बुद्धि-बलादि गुणों को मैं जानता हूँ, जाओ, तुम्हारा मार्ग (यात्रा) मङ्गलकारी होगा ।

सीतान्वेषण विवर प्रवेश—पीछे से मारुति के भी आ मिलने पर सभी वानर वीर वन, नदी, तालाब एवं पर्वत गुहाओं में रामकाज में लीन होकर शरीर-सुधि भूले सीता को ढूँढने में लीन हो गये । मार्ग में कहीं यदि भूले-भटके कोई राक्षस दिखाई पड़ जाता था तो उसे ही (रावणोयमिति ज्ञात्वा) रावण समझ कर सभी मिलकर प्राण ले लेते हैं । यदि कहीं ऋषि मिल जाते हैं तो सभी चारों ओर से उन्हें घेरकर सर्वांतर्यामी समझ कर जानकी-रहस्य की जानकारी के लिए प्रश्न करते हैं । पर्वत-गुहाओं और जल विहीन सघन वन-क्षेत्रों में ढूँढते-ढूँढते वे कई बार थक कर चूर हो गये और प्यास से व्याकुल हो गये । किसी को दिशा-मार्ग तक का ज्ञान न रहा । मारुति समझ गये कि तृषा से व्याकुल वीरों का प्राण अब जाना ही चाहता है ? अतः आप तुरन्त एक विशाल पर्वत शिखर पर चढ़कर चारों ओर देखने लगे । उन्होंने देखा कि भूमि के एक बिल से बहुत पक्षी जल में भीगे निकलते दिखायी दे रहे हैं । कुछ पक्षी उसमें प्रवेश भी कर रहे थे । उसके भीतर जल का अनुमान लगा कर वे नीचे आये

और सभी वीरों को साथ लेकर उसके भीतर चलने का परामर्श दिया। उन्होंने देखा कि भय से कोई आगे प्रवेश नहीं कर रहा है। अतः वे स्वयं आगे हो सभी के साथ उस विवर में प्रवेश करने लगे। एक योजन का अन्धकारमय मार्ग पार कर वे प्रकाश में आ गये। वहाँ एक विशाल और दिव्य उपवन था, जिसमें विकसित सुन्दर सरोवर था। पास ही एक दिव्य मन्दिर था, जिसमें एक तेजपुंजमयी तपस्विनी स्त्री बैठी थी। आश्चर्य-चकित सभी वीरों ने भक्ति-भय-वश उस महामहिमावती देवी को दूर से ही प्रणाम किया। देवी ने आगन्तुकों का परिचय पूछा। हनुमान ने वहाँ तक आने का कारण और राम-कार्य सुना दिया। देवी की आज्ञा से सभी वीरों ने सुस्वादु शीतल जल-पान, स्नान एवं फल-भक्षण किया और निर्भय हो देवी के सामने बैठ गये। हनुमान ने देवी से परिचय पूछा। वह तपस्विनी बोली—"पवन कुमार, करोड़ों वर्ष पूर्व-दिव्य रूप-नाद-कला-प्रवीणा हेमा नाम की विश्वकर्मा की पुत्री थी। सदाशिव की परमोपासिका होने के कारण उसने अपने नृत्यगान की अनुपम कला से भगवान की अथक सेवा की। उसकी भक्ति से प्रसन्न हो भगवान महेश्वर ने उसे वास-स्थान के लिए यह दिव्य विशाल मणिरत्न-मय पुरप्रासाद प्रदान किया। इस स्थल में वह १० करोड़ वर्ष रही। उसी हेमा की मैं सहेली हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। मैं दिव्य नामक गंधर्व की पुत्री हूँ। मुक्ति कामना से मेरी विष्णु-भक्ति की अनन्य आ था देख हेमा मुझे अपने साथ ब्रह्मलोक नहीं ले गयी। उसने जाते समय मुझे आदेश दिया कि बहन, तू यहीं अकेली रह कर भगवान की तपस्या कर। त्रेतायुग में भगवान नारायण दशरथ के पुत्र रूप में अवतरित हो भू भार हरण के लिए वन में भ्रमण करेंगे। राक्षस द्वारा अपहृत उनकी भार्या को ढूँढते हुए वानर वीर गण यहाँ आयेंगे। उस समय उन सबकी पूजा-सेवा-सहायता कर भगवान श्री राम के पास जाकर उनके दर्शन से कृतार्थ हो दिव्य धाम में चली जाओगी। मेरी यह वाणी तुम ध्रुव सत्य मानना कि यहाँ आने पर बाहर होना कठिन है।

इस प्रकार तपस्विनी स्वयंप्रभा का परिचय जानकर; यूथ-प्रधान युवराज अंगद ने कहा—देवि, हम सभी आपकी शरण में हैं। सुग्रीव की दी हुई एक मास की अवधि भी इस बिल में ही समाप्त हो गई और सीता-शोध का कार्य भी सफल न हो सका।

अब आप हम सभी को शीघ्र बाहर निकलकर प्राणों की रक्षा करें। ज्ञानवती देवी ने कहा—युवराज, इस स्थल में आ जाने वाले व्यक्ति फिर यहाँ से जीते जी निकलते नहीं, फिर भी मैं अपनी तपस्या के प्रभाव से तुम सब को बाहर निकाल कर भगवान के दर्शनं को चली जाऊँगी। तुम्हें सीता माता का पता अवश्य लगेगा, चिन्ता मत करो। तुम लोग यहाँ से बिना आँख मूँदे नहीं निकल सकते। अतः तुम सब कुछ देर अपनी आँखें बन्द कर लो, फिर यहाँ से तुम लोग अपने को बाहर निकले हुए पाओगे। आज्ञा पाते ही खड़े हो आँखें बन्द करते ही पल मात्र में उसने सब को समुद्र तट पर पहुँचा दिया। वे अपनी वीरता से विवर से बाहर नहीं हो सकते थे। नेत्र बन्द करते ही बिना श्रम के उन वीरों ने अपने को सिन्धु-तट पर अवस्थित पाया। सभी मुक्त कण्ठ से उस देवी के तप की प्रशंसा करने लगे। इस कथा का मार्मिक विवरण हमें अध्यात्म रामायण में प्राप्त होता है।

युवराज के दुःख से प्रायोपशन—सिंधु तीर पर वसन्त के फूले हुए वृक्षों को देख कर सशंकित हो वीरगण परस्पर विचार करने लगे कि अवधि तो विवर में ही बीत गई और कार्य अब तक कुछ न हुआ। अब करें क्या ? यदि अब भी सन्धान मिल जाय तो प्राण बच सकते हैं, अन्यथा संकट है। यह सुन अश्रु-पूरित नयनों से अंगद बोले—भाइयो, हमारी तो दोनों ही तरह से मृत्यु हुई। माता सीता का पता न लगा सकने की अपकीर्ति करोड़ों मृत्युओं के समान दारुण दुःख देनेवाली है। यहाँ से विफल होकर वापस जाने पर वहाँ सुग्रीव मार ही डालेंगे। वे तो मुझे पिता के वध के बाद ही मार डालते, पर श्री राम ने अपनी कृपा से बचा लिया। व्याकुल युवराज बार-बार कहने लगे—"जिस प्रभु ने मुझे बचाया उन्हीं का काम मुझ से न बन पड़ा। मुझ से बड़ा अभागा और कृतघ्न और कौन हो सकता है। अतः मेरा मरण ध्रुव है। यद्यपि समागत सभी वानर वीर और प्रचण्ड योद्धा थे, तथापि अंगद के दुःख से उन सब की आंखों से आँसू बहने लगे। सभी गम्भीर विचार में मग्न हो गये। सब ने विचारा कि सीता की खोज किए बिना यहाँ से जायेंगे ही नहीं। जायेंगे तो रहेंगे कहाँ ? इस प्रश्न पर बीच में ही तार नामक एक वानर ने सलाह दी कि भाई, युवराज की सी ही दशा हम सब की है। अतः सब की सम्मति हो तो प्राण-रक्षा के लिए वहीं स्वयंप्रभा

स्थल में निर्भय वास करें। इस प्रकार सुग्रीव के प्रति भेद की बातें बढ़ते देख और कुछ लोगों को उत्तेजित पाकर सुविज्ञ मारुति युवराज से बोले—अंगद, तुम बुद्धि में बृहस्पति और बल में अपने पिता बाली के समान हो—

बृहस्पति समंबुद्धया विक्रमे सदृशं पितुः। (वाल्मीकि)

तुम्हें कायरता और भेद-भावना शोभा नहीं देती। तुम अपनी ओर से जी-जान से राम काज की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील रहो। स्वयंप्रभा की वाणी पर विश्वास करो, कार्य अवश्य सफल होगा। धैर्य का त्याग ही जीवन की असफलता है और धीर बुद्धि वाले इसी के बल से भविष्य में विजय-यश की प्राप्ति करते हैं। सुग्रीव तुम से प्रेम करते हैं। अतः वे अवश्य क्षमा करेंगे। भगवान श्री राम अपने दयालु स्वभाव से तुम्हारी रक्षा करेंगे। हम सभी का प्रधान कार्य अपनी पूर्ण आस्था शक्ति से उनकी आज्ञा का पालन है। सुग्रीव की वध-प्रतिज्ञा से प्राण-रक्षा के लिए या रामकार्य से जी चुराकर यदि तार के परामर्श के अनुसार विश्व के किसी भी कोने में जा छिपे तो शत्रुदण्ड-दाता वीर लक्ष्मण के अमोघ बाणों से बच निकलना सर्वथा असंभव है। अंगद ने पहले जीने की अपेक्षा वहीं अनशन कर प्राण-त्याग कर देना ही श्रेष्ठ समझा था। दुःख से हतबुद्धि अंगद को अपने आगे विशाल सिंधु को देख सफलता की कोई आशा नहीं दिखाई दे रही थी। हनुमान के नीतिमय सदुपदेश का प्रत्यक्ष प्रभाव यह हुआ कि विपत्ति काल में अंगद-सहित सभी यूथ पतियों के मंडल में धीरज और साहस का पुनः संचार हो गया।

सम्पाति-मिलन—युवराज अंगद की भावना के अनुसार सभी वीर मरण का निश्चय कर सर्वे मरणे कृत-निश्चयाः (अध्यात्म रामायण) युवराज के साथ ही तट पर आकर पूर्वाभिमुख हो युवराज को घेरकर, दक्षिण की ओर कुशामुख आसन बिछा-बिछा कर प्रायोपवेशन व्रत के लिए, जल का आचमन कर बैठ गये। अंगद के दुःख से आकर्षित वयोवृद्ध ज्ञान-विज्ञान-कुशल जाम्बवंत ने सभी वीरों की आत्म-शांति के लिए श्री राम तत्त्वोपदेश दिया। उन्होंने कहा कि वे सभी भगवान राम के लोकहितैषी कार्यों में उनके सहभागी हैं। वानरों का पारस्परिक कातर कथोपकथन सम्पाति नामक एक गृद्ध सुन रहा था। सम्पाति जटायु का अग्रज था। वह वहीं पार्श्ववर्त्ती पर्वत-गुहा से सारी बातें सुन रहा था, किन्तु अन्धकार में छिपा रहने के कारण उसे कोई देख नहीं

पा रहा था। वह एकाएक बाहर निकल आया। वानर-समूह को देखकर उसने कहा कि भगवान् बड़े कृपालु हैं। बहुत दिनों से पेट भर आहार नहीं मिला था। विधि ने एक ही साथ बहुत दिनों के लिए पूरा आहार भेज दिया। अब ये जैसे-जैसे मरते जायेंगे, प्रतिदिन एक-एक को खाता जाऊँगा। गिद्ध की बात सुनकर सभी वीर डर कर बोले—भाई, अब सत्य ही हमारा मरण हुआ है। यह सभी को खा लेगा। इसमें संदेह नहीं। किन्तु हाय! हमने न तो कुछ राम-कार्य किया, न सुग्रीव का ही कुछ हित किया, जिससे वह श्री राम से उऋण हो जाता और न अपना ही कल्याण किया। इसीलिए गृद्ध द्वारा मृत्यु के निकट हो रहे हैं। सभी गृद्ध को देख भय से उठ खड़े हुए। जाम्बवंत के मन में विशेष सोच हो गया। वे वीर थे। सभी से वृद्ध भी थे। सभी उनका सम्मान करते थे। उन्होंने कहा कि यह गृद्ध भी जटायु की ही जाति का है। धन्य है जटायु! संसार में ऐसा दूसरा कोई नहीं, जिसने राम-कार्य में अपना जीवन दान दे दिया। वह परम बड़भागी हो योगि-दुर्लभ वैकुण्ठ लोक गया। इसमें गूढ़ भाव यह निहित था कि एक गृद्ध जटायु था, जिसने राम-कार्य में अपने प्राण तक दे दिये। दूसरा यह गृद्ध है जो रामदूतों को भक्षण के लिए तैयार बैठा है? जाम्बवान ने सोचा कि इस प्रकार एक जाति भाई की प्रशंसा कर, उसी जाति के अन्य एक व्यक्ति की सहानुभूति प्राप्त की जा सकती है। चतुर नीति यहाँ काम कर गयी। हर्ष-शोकयुत वाणी सुनकर संपाति जटायु का समाचार भली भाँति जानने के लिए आगे बढ़ा। सभी वीरों को भयभीत देख, शोक-संतप्त श्रेष्ठ स्वरों में वह सभी को अभय दान देकर, जटायु-मरण का विस्तृत समाचार जानने की इच्छा करता है। अन्यान्य वानर योद्धाओं को उसका विश्वास नहीं होता। दृढ़ हृदयी युवराज बड़भागी वीर जटायु की सारी गाथा उसे सुना जाते हैं। एक अबला की रक्षा में रावण जैसे वीर को विरथ कर देने वाले जटायु की वीरता के साथ प्राणोत्सर्ग की करनी एवं भगवान के द्वारा उसके प्रति आत्मीयता के प्रकाश आदि की कथा से संपाति हर्ष से विभोर हो अपने कुल को धन्य मान भगवान श्री राम की अनन्त महिमा का गुणगान करने लगता है। उसने वीरों से कहा—"मुझे तुम यहाँ से समुद्र-तट ले चलो, जिससे मैं उसे तिलांजलि दूँ। फिर मैं यह बताने में तुम्हारी सहायता करूँगा कि सीता कहाँ है।"

संपाति को पर्वत गुहा से सिंधु तट पर पहुँचाने वाले हनुमान ही थे। सिंधु में स्नान, तिलांजलि आदि से स्व जाति प्रथानुसार यथोचित क्रिया कर समस्त वानर-वीरों से संपाति ने कहा—"वीरो; जटायु मेरा सगा छोटा भाई था। सतयुग की बात है। जवानी के जोश में एकबार हम दोनों भाई सूर्य के निकट जाने के लिए उड़े। ऊपर मैं उड़ रहा था, नीचे जटायु। अत्यधिक ऊपर जाने पर क्रमशः सूर्य ताप बढ़ते देख जटायु तो हार कर नीचे उतर आया। किन्तु मुझे अपने बल का महाभिमान था और अपने को उससे अधिक बलवान भी समझता था। मैंने सोचा कि यदि मैं भी लौटता हूँ तो दोनों भाइयों का बल बराबर का समझा जायगा। अतः मैं अपने हठ से सूर्य के पास पहुँचने ही वाला था कि सूर्य के अनन्त प्रखर तेज से मेरे पंख जल गये। घोर चीत्कार करते मैं इस विन्ध्य पर्वत पर यहाँ (दक्षिण समुद्र के किनारे) आ गिरा। पास में ही देव-संपूजित एक पवित्र आश्रम था, जिसमें चन्द्रमा नामक (अत्रि के पुत्र) महान् तपस्वी ऋषि रहते थे। शिखर से कष्ट के साथ मैं उस आश्रम में जाकर वृक्ष तले बैठ मुनि के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ ही समय में स्नान किये हुए वे आते दीख पड़े। उनके साथ बहुत सारे भालू, बाघ, सिंह आदि पशुगण एवं सर्प आदि जन्तु भी थे। वे ऐसे दीख पड़े जैसे दाता के साथ याचक हों। आश्रम में आने पर वे सभी वापस हो गये, मुझ पर ऋषिराज की दृष्टि पड़ी। वे बोले—गृद्धराज, मैं तुम्हें पहचान गया। जटायु के भाई संपाति हो ? तुम गृद्धों के राजा और कामरूपधारी भी हो। मुझे अब भी याद हैं कि एक बार तुमने मानव रूप से मेरी चरण-सेवा की थी—

गृद्धाणां चैव राजानौ भ्रातारौ काम रूपिणौ।
मानुषं रूप मास्थाय गृह्णीतां चरणौ मम॥ (वाल्मीकि)

फिर उन्होंने मेरी विकृत दशा का कारण पूछा। अपनी सारी कथा सुनाने के बाद मैंने उनसे कहा—"मुनिवर, मेरा परम सौभाग्य है कि ऊपर से इस स्थल में गिरा। राज्य, भाई, पक्ष और पराक्रम से हीन होकर मुझे जी कर करना ही क्या है ? अभिमान का फल मिल गया। अब मैं पर्वत से गिरकर मर जाना ही कल्याण-प्रद मानता हूँ।" मेरी बातें सुनकर पहले तो उन्होंने अपने दिव्य ज्ञानोपदेश से मेरा देहाभिमान छुड़ाया। फिर कुछ क्षण ध्यान के बाद बोले—संपाति, तुम्हें मरना होता तो ऊपर से नीचे गिरते

ही मर जाते, किन्तु तुम दीर्घजीवी हो। मेरी इच्छा होती है कि आज ही मैं तुम्हें सपक्ष कर दूँ, किन्तु इसलिए मैं ऐसा नहीं करता कि तुम यहाँ रह कर अधिक लोक-कल्याण कर सकोगे।

भविष्य में त्रेतायुग में भगवान स्वयं मानव रूप से अवतरित हो, भू भार हरण करेंगे। उनकी भार्या का निशाचर राज द्वारा अपहरण होगा। उसकी खोज में प्रभु दूत भेजेंगे। उनके दर्शन से तू पवित्र हो जायगा। तुमने सूर्य का अपराध किया है। सूर्यकुल भूषण के दूत की सेवा से ही कृतापराध से मुक्ति होगी। तेरे पंख पूर्ववत् नूतन निकल आयेंगे, चिंता न कर। तेरे द्वारा प्रभु-दूत की यही सेवा होगी कि अपनी आँखों से देख कर तू सीता का स्थान-पता बता देना। मुनि के सदुपदेश से एवं उनकी आज्ञा से इस स्थल में अनन्त काल से आप लोगों के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। आज मुनि की वाणी सत्य हुई। इस आत्मकथा-समाप्ति के साथ ही संपाति के पंख भी निकल आये। नेत्रों में दिव्य-ज्योति के साथ शरीर में शक्ति भी आ गयी। वहीं से आनन्दमग्न संपाति दक्षिण लङ्का पर वितीक्षण दृष्टि डालकर बोला—"वीरो, अब आप मेरे कथानुसार श्री राम काज करें। यहाँ से ठीक दक्षिण दिशा के सामने समुद्र के मध्य चार सौ कोस (शत योजन) की दूरी पर त्रिकूट-गिरि पर लङ्का नामक नगर बसा है। उसका अधिपति रावण राक्षसेन्द्र निःशंक राज्य कर रहा है। वहीं अशोक वाटिका में वृक्ष के तले सीता देवी शोक में डूबी बैठी हैं। यहाँ से ही वहाँ का सारा दृश्य मैं देख रहा हूँ। तुम लोग नहीं देख सकते। गृद्ध की दृष्टि असीम है।

संपाति ने उन्हें समझाते हुए कहा कि आकाश-गामियों के सात स्तर होते हैं। आकाश का पहला मार्ग कुलिंग पक्षियों एवं अन्न कणक खाने वाले कबूतरों का होता है। उससे ऊपर का मार्ग वृक्ष, फल खाने वाले एवं काकादि पक्षियों का है। उससे ऊपर तीसरा मार्ग क्रौंच, कुररी, मासा आदि पक्षियों का होता है। उसके ऊपर चौथे मार्ग से बाजपक्षी चलते हैं और पाँचवें मार्ग से गृद्ध जाते हैं। उसके ऊपर हंसों का मार्ग होता है। अन्तिम और सातवाँ मार्ग गरुड़ का है। हम लोगों का जन्म 'वैनतेय' से है, इसलिए हम लोगों को भी गरुड़ समान ही (दिव्यं चक्षुर्बलं तथा) दिव्य नेत्र और बल प्राप्त है। भोजन के बल तथा स्वभाव से ४०० कोस या उससे भी आगे तक हम

देख सकते हैं। हमलोगों की वृत्ति दूर से देखने पर ही निर्भर है। यही कारण है कि मैं यहीं से जानकी को भली भाँति देख रहा हूँ।

जो चार सौ कोस का समुद्र लांघ कर लङ्का जाय वही बल-बुद्धि निधान रामकाज करने का सफल भागी होगा। प्रत्यक्ष और शब्द दोनों ही प्रमाणों से विचार कर तुम देख लो। प्रत्यक्ष देखने में श्री राम-कृपा से मेरा शरीर कैसा बदल गया! शब्द प्रमाण से सभी को विदित है कि पापी भी उनकी कृपा से भवसागर पार कर जाते हैं। जहाँ लोग उनके नाम स्मरण से "अति अपार भव सागर तरहीं"—अति अपार भव-सागर तर जाते हैं वहाँ तुम लोग प्रत्यक्ष उनके सेवक होकर प्राकृत-तुच्छ सागर को पार न कर लोगे? तुम लोगों का कल्याण हो। हृदय की कायरता त्याग कर, उर में श्री राम मूर्ति धारण कर, समुद्रोल्लंघन का प्रयत्न करो, निश्चित ही सीता के दर्शन प्राप्त करोगे—

स्वस्ति वोस्तु गमिष्यामि सीतां द्रक्ष्यथ निश्चयम्।
यत्नं कुरुध्वं दुर्लंघ्य समुद्रस्य विलंघने॥

इतना कहकर उड़कर उसके चले जाने पर सभी वानर अतीव विस्मित हो उठे। सिंधु की विशालता एवं भयानकता देख सभी वीर पार करने में अपने को असमर्थ पा विषाद से व्याकुल हो उठे। युवराज के द्वारा विशेष उत्साहित किये जाने पर वीरों ने पार जाने की अपनी-अपनी उछाल की गति कही। अधिकांश वीर ५०-६० योजन से अधिक नहीं जा सकते थे। जाम्बवंत ने कहा—भाई, भगवान त्रिविक्रम रूप में जब प्रभु ने अवतार लिया तब मैं युवा और शक्तिशाली था। बलिराज के दान-बंधन में प्रभु ने जो शरीर बढ़ाया वह अवर्णनीय था। ऐसे विराट भगवान की मैंने दौड़कर दो घड़ी में सात प्रदक्षिणाएँ की थीं। अब भी परिणत अवस्था के अनुसार मैं ९० योजन (३६०) कोस जा सकता हूँ। अंगद ने कहा कि समुद्र पार की शक्ति मुझ में है, किन्तु जियं संसय कछु फिरती बारा—उधर से फिर वापस आने में सामर्थ्य है या नहीं यह मैं नहीं जानता। तभी विवेकवान जाम्बवंत ने युवराज का मान रखते हुए कहा कि आपकी शक्ति हम भली भाँति जानते हैं; आप हजार योजन तक जा सकते हैं, पर यह उचित नहीं है। आप हम सब के रक्षणीय हैं। आप प्रेषण-कर्त्ता स्वामी हैं और हम सब

प्रेष्य हैं। आप इस कार्य के मूल हैं। सब भार आप पर ही है ! मूल के रहने से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। आप चिंता न करें। मैं उसे प्रेषित करता हूँ जो इस कार्य को सिद्ध करेगा।

ऋक्षराज द्वारा मारुति-बल-प्रकाश—पवन कुमार की वास्तविक प्रतिभा और शक्ति का पूर्ण रहस्य ऋक्षराज भली भाँति जानते थे। समय आते ही मारुति से ऋक्षराज ने पूर्व स्मृति द्वारा उद्घाटन किया। उन्होंने कहा—"हनुमान, ऐसे शुभ अवसर पर पीछे रह तुम क्या मौन साधे हुए हो ? तुम पवन पुत्र हो। जगत में कौन-सा कठिन कार्य है जो तुम से न हो सके ? तुम्हारा अवतार ही रामकाज के लिए हुआ है। सभी वीरों के संमुख जाम्बवंत ने उन्हें बाल-कर्म एवं मुनि-शाप द्वारा बल-विस्मृति की कथा सुनाई। (जिसका वर्णन जन्म-संदर्भ में हो चुका है)।

जाम्बवंत की प्रेरणा से मारुति अत्यन्त उत्साहित हुए। उन्हें अपना स्वरूप स्मरण हो आया। वे इच्छा करते ही पर्वताकार भयङ्कर विशाल रूप हो गये। वे बारम्बार सिंहनाद करते हर्षातिरेक से वीर गणों को प्रणाम कर रहे थे। हनुमान बोले—आदरणीय वीरो, मैं उस अग्नि सखा मारुत का औरस पुत्र हूँ, जो बड़े-बड़े गगनचुम्बी पर्वतों को पल मात्र में विचूर्ण कर डालते हैं। शत योजन (४०० कोस) का यह समुद्र राम-प्रसाद से मुझे गोपद के समान लग रहा है। इसे लाँघना एक खेल सा ही है। लङ्का महादुर्गम और रावण अजेय भले ही हो, पर मैं तो उसे सेना सहित मारकर, गिरि त्रिकूट को ही उखाड़ कर यहाँ ले आ सकता हूँ। मेरे लिए परमोचित कर्त्तव्य क्या है ? इस संदर्भ में आप लोग मुझे उचित सलाह दें। (वाल्मीकि रामायण में हनुमान के द्वारा अत्यधिक बल-प्रकाश-वर्णित है)।

जाम्बवंत ने कहा—वायुनन्दन ! इस समय अधिक पुरुषार्थ का कार्य नहीं है। तुम लङ्का जाकर बस इतना करो कि सीता को देख कर उनकी खबर प्रभु को दे दो। फिर राजीवनयन श्री राम अपने बाहुबल से कौतुक के लिए वानरी सेना संग लिए हुए निशाचर-समूह का विनाश कर सीता को ले आवेंगे।

समुद्रोल्लंघन—जाम्बवंत के सारगर्भित विचार से हनुमान पूर्ण आश्वस्त हो प्रसन्न तथा शांत हो गये। उन्होंने समस्त वीर मंडली से कहा कि आप लोग अनशन त्यागकर

कन्द-मूल फल खाते हुए इस स्थल पर ही मेरी प्रतीक्षा करते रहें। हर्ष के कारण मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि इस बीच मैं सीता को देखकर शीघ्र वापस आ जाऊँगा।

दुःखं सहित्वा भुक्त्वा च कंदमूल फलादिकं।
भ्रातरो मां प्रतीक्षध्वं तावद्यूयं दृढ़व्रता॥
आगच्छेयं मुदा दृष्ट्वा यावज्जनक-नंदिनीं।
भविष्यत्याशु कार्यंच हर्षः सूचयतीव मे॥

—लोमश रामायण

कपिश्रेष्ठ को ऐसा प्रतीत हुआ कि उनपर भगवान की असीम कृपा है। विदा होते समय उन्होंने सब का अभिवादन किया और सीता सहित दोनों भाइयों की मूर्ति हृदय में स्थिर कर उछल कर सिंधु-तीर के एक सुन्दर ऊँचे पर्वत शिखर पर चढ़ गये। हनुमान के चढ़ते ही पर्वत पृथ्वी में धँस गया, जिससे पाताल का जल ऊपर निकल आया। वाराह घबड़ा गए। शेष कच्छप का भी बल जाता रहा। हनुमान के चारों हाथ पैरों के चपेट से दबकर पर्वत चिपटा हो गया और उनके उछलने पर पर्वत भी चार अंगुल ऊपर को उछल कर नीचे पाताल में तुरन्त चला गया। श्री रघुपति के अमोघ बाण के समान हनुमान के प्रस्थान-वेग से प्रभावित हो, पर्वत के बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ कर उनके पीछे-पीछे एक मुहूर्त तक उड़ते चले गये, जैसे सुदूर जानेवाले विदेशी बन्धु को कुछ दूर तक पहुँचाने जाने वाले उसके बांधव गण जाते हैं। हनुमान को लङ्का जाते देख देव-दानवादि पुष्प वृष्टि करने लगे। ऋषिगण वेदमंत्रों से शांति-पाठ करने लगे। पवन देव मन्द-सुगन्ध शीतलता के साथ गति में जहाँ सहायक थे वहाँ भगवान भास्कर ने अपना तेज मन्द कर दिया था। इस प्रकार सभी की दिव्य सेवा प्राप्त करते हुए मारुति भी प्रभु-प्रताप-द्वारा समुद्रोल्लंघन के लिए अबाध गति से बढ़ते जा रहे थे—

हरषि सुमन बरषत विबुध, सगुन सुमंगल होत।
तुलसी प्रभु लंघेउ जलधि प्रभु-प्रताप करि पोत॥

—रामचरित मानस

मार्ग में दल के दल बादल-समूह उनके वज्र तन के स्पर्श से ही तितर-बितर हो भेंट रूप उनके अङ्ग पर शीतल जल-बिन्दु अर्पित कर रहे थे। कपि शार्दूल के गमन-वेग में

काँख के बीच से निकलने वाले वायु संचार शब्द मानो वर्षा कालीन मेघ-ध्वनि कर रहे थे। उत्तराग्र चक्राकार लांगूल एवं श्वेत दंत-युक्त महाप्राज्ञ अनिलात्मज आकाश में मण्डल-सहित प्रभासित हो रहे थे।

लांगूल चक्रो हनुमाञ्छुक्ल दंष्ट्रोऽनिलात्मजः।
व्यरोचयत महाप्राज्ञः परिवेषीय भास्करः॥ —वाल्मीकि

इस प्रकार मारुतिनन्दन लङ्का की ओर केन्द्रदृष्टि से चले जा रहे थे। आकाश से सिंधु पर पड़ने वाली आपकी छाया दस योजन मोटी एवं तीस योजन लम्बी अतीव सुशोभित हो रही थी।

सिंधु मैनाक-सेवा—राम दूत की अनन्त महाशक्ति से प्रभावित सिंधु ने सोचा कि इक्ष्वाकु कुल के राजा सगर द्वारा मैं बढ़ाया हुआ हूँ और उस वंश के भूषण भगवान श्री राम के ये प्रिय दूत हैं। यदि मैं इस समय अपने कर्त्तव्य के अनुसार मार्ग गत श्रम हरण की इनकी सहायता-सेवा न करूँ तो लोक-दृष्टि से निंदित और कृतघ्न कहलाऊँगा। इसके अतिरिक्त कहीं श्री राम के मन में मेरी उदासीनता से वह बात न आ जाय कि सीता-हरण में समुद्र का भी हाथ रहा है, क्योंकि एक प्रकार से राक्षसेन्द्र रावण मेरे ही गर्भ में निवास करता है। मैं ही विश्व में प्रधानतः उसका अजेय संरक्षक माना जाता हूँ। अतः स्वधर्म पालन में कृतनिश्चय हो वह तुरन्त मैनाक पर्वत से बोला—मित्रवर, आज हम और तुम दोनों ही मिलकर लङ्का जा रहे श्री राम-दूत हनुमान की सेवा कर उऋण हो जाँय। मैं इक्ष्वाकुकुल-द्वारा वृद्धिगत हूँ और तुम पवन द्वारा संरक्षित हुए मुझ में स्थित हो। कपिराज उसी पवन देव के औरस पुत्र हैं। अतः तुम्हारी सहायता से मैं भी कृतार्थ हो जाऊँगा। तुम कामरूप, शीघ्रगामी एवं मुझ से सभी भाँति समर्थ हो। इसीलिए मैं तुम से कह रहा हूँ।

सिंधु की विमल भावना एवं आज्ञा से हिमाचल का एक मात्र परम प्रिय पुत्र स्वर्णमय मैनाक पर्वत तुरन्त सूर्य सम प्रभा से आकाश में उदित हो गया। अप्रत्याशित स्वर्णमय शृङ्गों से युक्त नन्दन वन-सम अतीवाकर्षक वन को मार्ग में सम्मुख देख, महाकपि ने उसे विघ्न रूप माना। उन्होंने तुरन्त अपने वक्षस्थल के धक्के से प्रताड़ित कर दिया। इस पर भी वह आक्रोशित या विचलित न हो अतीव हर्ष नाद करने लगा। तभी

मैनाक मानव रूप से प्रकट होकर बोला—"वानरेन्द्र, मैं तुम्हारे मार्ग का कोई विघ्न कारक शत्रु नहीं हूँ, अपितु तुम्हारे पिता पवनदेव का प्रिय मित्र हूँ। मेरा नाम मैनाक है। सतयुग में सारे पर्वत पक्ष युक्त होते थे। वे सभी गरुड़ की भाँति यथेच्छा से चारो दिशाओं में उड़ा करते थे। उनके इस कार्य से देव-मुनि मनुष्य-गण सभी उनके गिरने या बैठने से भयभीत रहा करते थे। लोक प्रार्थना से इन्द्र ने पर्वतों के पंख काटने आरम्भ कर दिये। जब वे मेरे पास भी आए तभी आपके पिता महात्मा पवन देव ने मेरी सहायता की। उन्होंने मुझे अपने प्रचण्ड वेग से शीघ्र ही समुद्र में लाकर छिपा दिया। मैं काम-रूप-धारी हूँ एवं अपनी महाशक्ति से ही समुद्र में स्थित हूँ। मैं पाताल के विशाल द्वार को रोके रहता हूँ। सिंधु के द्वारा आपके दुष्कर कर्म को जान कर ही मैं आपके सम्मुख मार्ग-श्रम-हरण के लिए उपस्थित हुआ हूँ। अतः आपसे प्रार्थना है कि मित्र-पुत्र होने के नाते मेरे शिखरों पर मेरा आतिथ्य ग्रहण कर विश्राम करते हुए फिर आगे जायँ—निपत्य मम शृंगेषु सुखं विश्रम्य गम्यताम्। इससे सिंधु एवं मुझे दोनों के हृदय में प्रीतिमय शांति होगी। उसी समय समुद्र भी मानव वेष में वहाँ आ पहुँचा। उसने भी कपीश का अभिनन्दन कर मैनाक की भावना का अनुमोदन किया।

प्रसन्न हनुमान ऊपर से ही पितृतुल्य मैनाक के सम्मान में कराग्र से शिखर-स्पर्श कर, प्रणाम करते हुए बोले—"आर्यवर ! आप मेरे पितृ सम वन्दनीय हैं। मेरे प्रति आपका जो प्रगाढ़ स्नेह है उसका मैं आभारी हूँ। आपने प्रीतिवश मेरे लिए इतना ऊपर आकर अपने स्वर्णश्रृङ्ग द्वारा आतिथ्य सामग्री प्रस्तुत की। किन्तु मैंने अनजान में आपको छाती से धक्का दिया। यह महान् दुष्कर्म हुआ। इसके लिए मैं विनम्र क्षमा प्रार्थी हूँ। बस इतनी ही प्रार्थना करूँगा कि क्षमा-प्रदान करें। मैं प्रतिज्ञावश इस समय रामकार्य पूरा किए विना विश्राम नहीं कर सकता। समुद्र और मैनाक दोनों ने ही यथोपचार पूजन कर शुभ कामना के साथ पवन कुमार को विदाई दी। उसी समय वहाँ देवगणों के साथ इन्द्र आकर स्वर्णनाभ (मैनाक) के परमाद्भुत राम दूत-सेवा-कर्म से प्रसन्न हो पूर्व कृत शत्रुता का त्याग कर उसे (मैनाक को) आजीवन अभय सुख का वरदान देते हैं। दूसरी ओर अविलम्ब हनुमान अपने पूर्व मार्ग क्रम से और भी अधिक

ऊँचे हो पचास योजन का मार्ग अतिक्रमण कर जाते हैं। उसी बीच अल्पज्ञ विवेक हीन देवगणों ने पवन कुमार को लङ्का जाते देख, रावण भय से यह समझ लिया कि विशिष्ट देवों के समान कहीं ये भी उसके बंधन में न आ जाँय ? इसलिए इनके बल-वुद्धि को जानने की भावना से उन्होंने दक्षपुत्री, कश्यप-पत्नी एवं नाग माता सुरसा को परीक्षा के लिए भेजा।

सुरसा मिलन—देवों द्वारा प्रेषित सूर्यसमा तेजस्विनी, कामरूप धारिणी, महा-चतुरा सुरसा शीघ्र महाविकराल राक्षसी रूप में हनुमान के सामने मार्गावरोध कर आ खड़ी हुई। वह बोली—"वीर कपीश, ब्रह्मा के वरदान से मुझे लाँध कर कोई नहीं जा सकता। अधिक समय पर आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया है। अतः यदि तुम जाना चाहते हो तो मेरे मुख में प्रवेश कर ही जा सकते हो—अहं त्वां भक्षयिष्यामि प्रविशेदं ममाननम्। मेरे सम्मुख किसी की चतुरता छिप सकती है ? हनुमान उस पर क्रोध न कर समादर के साथ बोले—"देवि ! मैं मृत्यु से या तुम्हारे द्वारा खाये जाने से नहीं डरता। देवताओं ने तुम्हारा उपकार किया कि तुम्हें आहार दिया। तुम देवों का उपकार करो। 'रामकाज' सम्पन्न होने से समस्त देवगणों का उपकार निहित है। पीछे तुम्हारा भी उपकार होगा। सीता का समाचार श्री प्रभु को सुनाकर फिर मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा। तुम मुझे खा लेना। यदि तुम कहो कि इतने समय की प्रतीक्षा में कदाचित् तुम शक्तिहीना हो जाओ तो मैं वचन देता हूँ कि स्वतः मैं तुम्हारे मुख में प्रविष्ट हो जाऊँगा। मैं सत्य कह रहा हूँ। इस समय मुझे जाने दो।"

किसी भी यत्न से न जाने देने पर हनुमान ने कहा कि फिर मुझे खा लो तो मैं देखूँ। जब खा जाने के लिए उसने योजन (चार कोस) भर का मुख फैलाया तो कपि ने उसके मुख में न समाने वाला अपना शरीर उससे दूना बढ़ा लिया। यह देख सुरसा ने जब अपना मुख १६ योजन बढ़ाया तो पवन पुत्र तुरन्त ३२ योजन के हो गये। यह देख सुरसा ने सोचा कि इस दुगुन के क्रम से विजय पाना कठिन ही है। अतः क्रम भंग-कर उसने धोखा देने के लिए अकस्मात जहाँ सौ योजन का मुख बनाया वहाँ बुद्धि सागर कपि शार्दूल ने अति लघु रूप धारण कर सुरसा के मुख में अपने को प्रविष्ट कर लिया। उसके पेट तक जाकर वे पुनः बाहर निकल आये--"वदन पैठि पुनि बाहर आवा।

इस क्रिया से मातृ-भाव की पूर्णता हो गयी। उन्होंने सुरसा को प्रणाम कर विदा माँगी। सुरसा भी अपना रहस्य खोलती हुई बोली—"कपिराज; देवताओं ने मुझे वास्तविकता से तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा के लिए भेजा था। किन्तु तुम्हारे कार्यों से मैंने जो अनुभव प्राप्त किये, उनसे मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि तुम बुद्धि को ही विशेष प्रश्रय देते हो और बल को उसके आश्रयीभूत मानते हो। सामान्य जन बल को प्रधान एवं बुद्धि को गौण स्थान देते हैं। मैं तुम्हारी बुद्धि से ही पराजित हुई। मैं आज तुम पर बलिहारी जाती हूँ कि तुमने मुझे माँ के सम्बोधन से धन्य कर दिया। यह लोकोक्ति संप्रति सत्य है कि माँ अपने बेटे से ही हार मानती है। वत्स, तुम्हारी धारणा से मैं पूर्णतया सहमत हूं कि जीवन के सभी क्षेत्रों में शारीरिक बल से अधिक शक्ति शालिनी बुद्धि-बल ही है। जिस राष्ट्र में तुम्हारे जैसा कुशल बुद्धिशाली मंत्री सेनाधिपति हो, वह थोड़ी सी ही सेना द्वारा बड़े-बड़े महाबली सेनाधारियों को देखते ही देखते परास्त कर दे सकता है। बल-बुद्धि के निधान तुम सारे रामकार्य को भली भाँति पूर्ण करोगे। आशीर्वाद देकर उसके जाते ही हनुमान सहर्ष आगे बढ़े।

सिंहिका उद्धार—घोर कामरूप धारिणी राहु की माँ समुद्र-जल में वास करती थी। वह अपनी कपटमयी माया से आकाश में ऊपर से उड़कर आने वाले सभी जीव-जन्तुओं की छाया को ही जल में पकड़ लिया करती थी, जिससे स्तम्भित हुए वे सभी चुम्बक की भाँति नीचे खिंचे आकर उसके मुख में ग्रास बन जाया करते थे।

सिंहिका नाम सा घोरा जल मध्ये स्थिता सदा।
आकाश गामिनां छायामाकृष्याकृष्य भक्षयेत ॥

—अध्यात्म रामायण

उसने अपने छल से हनुमान की छाया को भी पकड़ा। माया जनित उसके कपट को कपि ने तुरन्त पहचान लिया। जैसे एक विशेष शिकारी पक्षी जल के कुछ ऊपर से ही मछली को देखकर तुरन्त तीव्र गति से नीचे आ, मछली को अपने चोंच में ले पुनः ऊपर चला जाता है उसी भाँति मारुति पुत्र पवन-गति से नीचे आ सिंहिका को अपने व्रज-पाद-प्रहार से मारते हुए समुद्र-पार लङ्का पहुँच गये।

राहु मातु माया मलिन, मारी मारुत पूत। —तुलसी

लङ्का में धूमकेतु—लङ्का के पूर्वी तट पर पहुँचते ही फल फूलों से भरे वृक्षों के सघन वन एवं पशु-पक्षियों के मनोहर कलरव से मारुति प्रसन्न हो उठते हैं। पास ही एक विशाल ऊंचे पर्वत को देख वे निर्भय गिरि शृङ्ग पर पहुँचते हैं। उस पर्वत का नाम सुवेल पर्वत था। यहीं से आपने देवताओं के लिए भी अतीव दुर्धर्ष महापुरी लङ्का पर एक विहंगम दृष्टिपात किया। लङ्का महापुरी समुद्र के बीच विधि-निर्मित थी। वह महाविशाल नगरी सुन्दर, निकुंभिला और सुवेल इन तीन पर्वतों से युक्त त्रिकूटाचल पर बसी हुई थी। देवी भागवत के अनुसार यह एक पीठ स्थान है। वामन पुराण के अनुसार यह क्षीरोद्र समुद्र स्थित है, जहां नारद का विश्राम स्थल भी कहा जाता है। ऐसे अतीव दुर्गम स्वर्णमय त्रिकूटाचल के सुन्दर पर्वत शिखर के मध्य मय दानव ने इसे अपने माया-रूप से सजाया था। यह नाग-लोक की 'भोगावती पुरी' एवं इन्द्र की 'अमरावती' से भी अधिक सुन्दर थी। यहाँ स्वर्णमय मणि-रचित अनेक गगन-चुम्बी भवनादि बने थे। यह माया नगरी शत्रुओं को फँसाने वाली थी। वाह्य सुरक्षा में चारों ओर गम्भीर सिंधु एवं सप्त स्वर्णमय दुर्धर्ष कोटों से आवद्ध महानगरी में निशिचर महाभट समूह अपनी अनन्त सेना के साथ रक्षा में संलग्न थे। नर-नाग-सुर-गंधर्व की मुनि-मन मोहिनी कन्याएँ वाटिका में मुक्त विहार कर रही थीं। चारो दिशाओं से सुदृढ़ तथा रक्षित नगरी में मारुति ने रात्रि समय में ही घुसने का निर्णय किया। संध्या होने आ रही थी, रात्रि में अधिक देर भी नहीं थी।

नगरी-प्रवेश—समय आते ही आप मशक समान अति लघु रूप धारण कर भीतर प्रवेश कर गये। उसी समय राक्षसी रूपालङ्किनी सामने आ खड़ी होती है। वह कहती है—मेरी आज्ञा के बिना मेरा निरादर कर कहां जा रहे हो ? रे शठ, क्या तुम्हें मेरा स्वभाव नहीं मालूम कि लङ्का में छिप कर जाने वाले मेरे आहार होते हैं ? उसके कठोर शब्दों पर क्रुद्ध न होकर कपि ने पूछा—'तुम कौन हो और हमें क्यों डांटती हो ? उन्होंने यही कहा कि मुझे इस नगरी के देखने का बड़ा कुतूहल है। अतः भद्रे, मैं इसे देखकर फिर वापस चला जाऊँगा। इस पर भी जब उसने नहीं माना और हाथ चलाना आरम्भ कर दिया, तब विवश होकर आपने बायें हाथ के अंगुष्ठ से उसे साधारण घूँसा मारा। दूसरे प्रहार के भय से वह अपने गर्वित वचनों पर दुःख प्रकाश करती हुई

क्षमा-प्रार्थना करने लगी। उसके मुख से रुधिर गिर रहा था। कुछ ही क्षण में उसने अपने को सँभाल लिया। उसे कुछ याद आ गयी वह उठ कर बोली—"कपिश्रेष्ठ, मैं यहाँ की अधीश्वरी हूँ। मेरे ही नाम पर यह 'लङ्का' नगरी बसी है। रावण पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने जब लङ्का दे दी तब मैंने पितामह से प्रार्थना की थी कि इन दुष्टों के वास से मुझे महान कष्ट होगा। क्या कभी धर्मात्मा का भी यहाँ राज्य होगा और कब ? इस पर उन्होंने मुझे दिव्य वर दिया कि यह रावण लङ्का पुरी में केवल ५ करोड़ वर्ष राज्य करेगा। फिर उन्होंने कहा कि जब तू किसी कपि के मारने से व्याकुल होगी तभी जान लेना कि अब निशाचरों का विनाश एवं धर्मात्मा द्वारा राज्य होने का समय आ गया—

विकल होसि तैं कपि के मारे।
तब जानेसु निसिचर संघाते॥ —तुलसी

ब्रह्मा की वाणी कभी असत्य नहीं हो सकती। तभी से आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। वायु कुमार ! आपका मुष्टि-प्रहार ब्रह्मा की वाणी को सत्य कर रहा है। यह मेरे लिये शुभ शकुन है। यदि मुझ से अनजाने में आपके प्रति अपराध हुआ। तो मैं क्षमा-याचना करती हूँ। आज मेरे लिए महान पुण्योदय हुआ है कि भगवान श्री राम के दूत हनुमान का प्रत्यक्ष दर्शन कर रही हू। इस प्रकार संत महिमा का गुणगान करती हुई फिर वह मारुति को लङ्का में प्रवेश कर रामकाज करने का अनुरोध करने लगी।

लङ्का लोलुप लंकिनी, काली काल कराल।
काल करालहि दीन्ह बलि, काल रूप पषिकाल॥

वास्तव में जिस पर भगवान श्री राम की कृपा दृष्टि हो जाती है उसके लिए विष अमृत, शत्रु मित्र, समुद्र गोपद, अग्नि शीतल और सुमेरु धूलि-सम हो जाता है। इसके प्रत्यक्ष प्रतीक मारुति हैं। प्रभु-स्मरण कर सीतान्वेषण के क्रम में हनुमान ने लङ्का का कोना-कोना छान डाला। उन्होंने अन्नागार, कोषागार, अश्वशाला, राजशाला, सुरंग, सोपान, भूगर्भ-गृह, अन्तःपुर, प्रवेश-द्वार, निष्क्रमण-द्वार तथा सामरिक महत्त्व के अन्य सभी स्थलों की भली भाँति जानकारी प्राप्त कर ली। फिर वे विश्व-विजयी समस्त

महाभटों के घर-घर जाकर उनके रूप-बल-गति का स्वाभाविक अन्दाज लेते, अर्धरात्रि में रावण के ऐश्वर्य विलास मय नग्न-चित्रों का दर्शन करते भक्त राज विभीषण के द्वार पर आ पहुँचते हैं।

विभीषण-मिलन—सन्त विभीषण के गृह की शोभा निराली थी। वह-नगरी के शेष भाग से सर्वथा भिन्न एवं परमाद्‌भुत थी। वहाँ सुन्दर हरि मन्दिर बना था। उसके द्वार के अगल-बगल दीवाल पर रामायुध धनुष-बाण का चित्र मनमोहक रूप से सुशोभित था। द्वार पर हरी-भरी हरि-प्रिया तुलसी के समूह छाये हुए थे। हनुमान यह देखकर अतिशय प्रसन्न हो उठे—

रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसी के वृन्दतहँ हरषि देखि कपि राइ॥ —तुलसी

सुन्दरं भवनं त्वेकमपश्यन्मारुतात्मजः।
आसीद्यतः पुनर्भिन्नं हरि मंदिरमद्‌भुतम्॥
रामायुधैरंकितमेव गेहमवर्णनीया खलु यस्य शोभा।
तत्रैव नूतनं तुलसी समूहं दृष्ट्वातितुष्टो हनुमान्कपीशः॥

—अगस्त्य रामायण

सारी रात तामसी पुरी में भ्रमण करने के कारण उस विरागी के हृदय में जो क्लान्ति और ग्लानि पैदा हुई थी उससे शान्ति और शुद्धता प्राप्त करने के लिए ही भगवान ने कपिराज को भक्तश्रेष्ठ विभीषण के द्वार पर अरुणोदय वेला में ला पहुँचाया। अपने इष्ट देव के चिह्न को देखकर आपके हृदय में शांति, हर्ष और उल्लास का संचार हुआ। आपके मन में आश्चर्य भी जागृत हुआ कि लङ्का के प्रधान निशाचर-वासियों के मध्य किसी सज्जन का वास कैसे सम्भव हो सकता है ? खलों के बीच सज्जन कैसे ? शंका हुई कि कहीं यह निशाचरी माया तो नहीं है। ठीक उसी समय ब्राह्म बेला में भक्त विभीषण जागकर राम-राम का शब्दोच्चारण करते हैं। कपि ने सोचा कि—"इसी समय इनसे परिचय प्राप्त करना परम श्रेयस्कर होगा। यह लङ्का का मध्य है, रावण का राजप्रासाद पास है। चारों ओर सशस्त्र राक्षसगण घूम रहे हैं। प्रभात होने ही वाला है। अतः यहाँ साधु महापुरुषों से अपनी ओर से मिलने पर स्वकार्य-हानि की कोई

आशंका नहीं है। हनुमान अपने निश्चित विचार से ब्राह्मण वेष में जब प्रातःस्मरणीय मांगलिक श्लोकों का मधुर स्वर में पाठ करने लगे तभी मधुर स्वराकर्षित विभीषण अपने शयन-पीठ से उठकर द्वार पर आ गये। देवरूप ब्राह्मण का दर्शन कर उन्हें सादर प्रणाम कर उन्होंने नम्रता-पूर्वक अपना परिचय प्रदान किया। प्रेम-विह्वल विभीषण ने उनसे पूछा—"विप्रवर्य, आप विशिष्ट हरि भक्तों में से तो कोई नहीं हैं ? आपने बड़ी कृपा की कि मंगलमय बेला में मुझे बड़भागी बनाने आ पधारे।" भक्त विभीषण को अतीव आनन्द विभोर देख हनुमान ने उनसे सारी राम कथा के साथ अपना नाम कह सुनाया। सुनकर विभीषण पुलकित और आनन्द-मग्न हो गये। मारुति विभीषण के प्रेम का अवलोकन कर मन ही मन सराहना कर रहे थे कि इस तामसी शरीर में भी प्रभु के ऐसे भक्त छिपे हैं। इसी प्रकार विभीषण, हनुमान के प्रति कृतज्ञ और विस्मित हो रहे थे कि वानर जाति में जन्म लेकर भी भगवत् सेवा में कितने अनुरक्त हैं। उन्होंने कहा—"मुझे अनाथ जानकर सूर्य कुल नाथ कभी मुझ पर भी कृपा करेंगे ? तामसी शरीर से न कुछ साधन ही बन पड़ता है और न प्रभु-पद-कमलों में गहरी प्रीति ही हो पाती है। कर्म ज्ञान-उपासना के आधार पर ही प्रभु—पद प्राप्ति सम्भव है, जिससे मैं सर्वथा विहीन हूँ। आपके दर्शन से अब मुझे पूर्ण भरोसा हो गया कि मुझ जैसे सेवक पर भी भगवान श्रीराम की अधिक प्रीति है। रघुवीर ने मुझ पर कृपा की है तभी तो हठ-पूर्वक आपने मुझे दर्शन दिया।" विभीषण की सारी दैन्य-पूर्ण-वाणी सुनकर हनुमान बोले—'विभीषण, प्रभु की प्रकृति-रीति सुनें। वे सदैव सेवक पर प्रीति करते हैं। आप ही कहें कि मैं कौन कुलीन वंश में पैदा हुआ हूँ। मैं जाति में पामर, पशु, वानर और अतिकामी, प्रकृति से चंचल तथा प्रभु-प्राप्ति-योग्य सभी साधनों से विहीन हूं। प्रवाद है कि प्रातःकाल (उठने के समय) यदि कोई मेरा नाम (वानर) ले ले तो उस दिन उसे भोजन भी नहीं मिलेगा।

अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुवीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे विलोचन नीर॥ —तुलसी

सखे किं कुलीनो हरिश्चंचलोहं विहीनः परैः कर्मभि र्ब्रूहि भक्त।
तथापी दृशे चाधमे भक्त वंद्यो ह्यकार्षीत्कृपां रामचन्द्रो दयालुः॥

—हनुमद् रामायण

मुझ जैसे अधम पर भी रघुवीर ने कृपा की। भगवान की अनन्त कृपा का स्मरण करते दोनों भक्तों की आँखें जल से भर आती हैं।

शास्त्र-पुराणों एवं संत-महापुरुषों से प्रभु की दयालुता के गुणों को सुनकर भी जो ऐसे स्वामी को जान-बूझकर भुला बैठते हैं, वे संसार में क्यों न इधर-उधर मारे-मारे फिरेंगे ? मारुति से राम-कथा सुनकर विभीषण ने सीता-कथा कह सुनाई। जनकजा अशोकवन में निवास कर रही थीं। हनुमान द्वारा माता के दर्शन करने की इच्छा पर, विभीषण ने उन्हें वहाँ जाने का युक्ति-पूर्ण गुप्त मार्ग बताया। वहाँ से शीघ्र विदा ले पूर्वकृत लघु रूप से हनुमान अशोकवन जा पहुँचे। अशोक बाटिका की अनुपम शोभा थी। पवन कुमार जैसे विरागी भी उसे देखकर एकबार मोहाकर्षित हो उठे। रावण का यह वन इन्द्र-वरुण और ब्रह्मा के वन से भी रमणीय तथा वसन्त का भी शृङ्गार था-

वासव - वरुण - विधि - वन ते सुहावनो,
दसानन को कानन वसंत को सिंगार सी।

वहाँ का सेवा-भार (पुराने पत्तों को ऊपर से ही समुद्र में डालने आदि का कार्य भार) पवन देव के ऊपर था। पवन देव वहाँ सदैव शीतल-मंद-सुगन्ध वायु संचार किया करते थे और फिर भी रावण-भय से डरा करते थे। जल-सिंचन की सारी व्यवस्था माली रूप से मेघमाल करते थे। वन की रक्षा में चारों ओर महाविकराल राक्षस महाभट से संलग्न थे। हनुमान ने उस वन में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी सीता को दुःखमय दशा में देखा। उस समय वही अति सुन्दर उपवन उनको सन्ताप-दग्ध सा जान पड़ने लगा।

जानकी दर्शन— मातेश्वरी को देखकर आप उन्हें मन ही मन प्रणाम करते हैं। उनकी देह-यष्टि बियोग से अतीव क्षीण तथा वेणी जटा-रूप हो गयी थी। नेत्रों को अपने पद्मासन स्थित चरणों में लगाये वे मनसा प्रभु-पद में लीन थीं। वे रघुपति-गुणाबलियों के स्मरण के साथ जिह्वा से राम-नाम जप करती हुई रात्रि-दिवस याम व्यतीत कर रही थीं। शीतल, मन्द, सुगन्ध, वायु भी उनकी विरहाग्नि में भस्म होने के भय से पास नहीं जाता था। इस दीन दशा में जानकी को देख पवनपुत्र दुःख से भर उठे। पर करें क्या ? आप डार ही डार लांघते हुए माता के सिर के ऊपर तरु पल्लवों में छिपकर बैठ गये। फिर वे विचार करने लगे कि मां सीता नीचे मुख किए समाधि

अवस्था में हैं। राक्षसियाँ चारों ओर घेरे बैठी हैं। इस अवस्था में मैं इनका शोक क्यों कर दूर करूँ। उसी समय रावण मंदोदरी आदि स्त्रियों के साथ सुन्दर शृङ्गार किए जानकी के सामने आता है। वह दुष्ट साम-दाम-दण्ड-भेद नीतियों से सीता को विविध रूपों में समझाना चाहता है। सीता किसी भी अवस्था में आत्म-समर्पण करने को प्रस्तुत नहीं होती हैं। वे रावण के चन्द्रहास खड्ग से भी विचलित नहीं होतीं। अन्त में निराश रावण राक्षसियों को बुला कर सीता को अनेक प्रकार से भय और प्रलोभन देने को आज्ञा देकर चला जाता है। उसने घोषणा कर दी कि यदि एक मास के भीतर सीता ने आत्म-समर्पण नहीं किया तो उसका गला काट दिया जायगा। उसके आदेशानुसार राक्षसियों ने बहुत डराया-समझाया, किन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। उन सब राक्षसियों में एक सात्विक वृत्तिवाली भगवद्भक्त निशाचरी भी थी। उसका नाम था त्रिजटा। त्रिजटा ने अपनी विश्वस्त सहेलियों और अनुचरियों को पृथक एकांत में ले जाकर कहा—"यदि तुम सब अपना कल्याण चाहती हो तो सीता की सेवा आरम्भ कर दो। शीघ्र ही लंका पर महान विपत्ति आने वाली है। आज मैंने बुरा स्वप्न देखा है, जिसमें एक वानर ने लङ्का जलाकर विशाल राक्षसी सेना का संहार कर दिया है। दसशीश रावण नगे शरीर, सिर मुड़ाये, भुजा-विहीन हो गधे पर बैठकर दक्षिण दिशा की ओर जाते दिखाई पड़े। मेरा सवेरे का सपना कभी झूठा नहीं होता। अतः तुम सब जानकी की सेवा में ही आत्म-कल्याण समझो।" यह सुनकर सब डर गयीं। वे सीता से क्षमा माँग कर वहाँ से सब को लेकर चली गईं।

सीता राक्षसियों के त्रास से मुक्त हो गयीं, किन्तु एक मास में नीच निशाचर रावण के हाथ से अपने जाने की चिन्ता से व्यग्र होकर त्रिजटा से हाथ जोड़कर बोलीं—"बहन, तू मेरी विपदा की संगिनी है। स्वामी का असह्य वियोग अब सहा नहीं जाता। अतः शीघ्र ऐसा उपाय कर दे, जिससे मैं स्वतः शरीर त्याग दूँ। मेरी प्रार्थना है कि लकड़ी लाकर चिता रच दे, जिस पर मैं बैठ कर प्राणोत्सर्ग कर दूँ।" यह सुन कर त्रिजटा ने उसे सान्त्वना दी: उसने राम के बल, पौरुष और निश्चित विजय का आश्वासन दिया। सीता के बारम्बार हठ करने पर उसने कहा कि यह रात्रि का समय है। अभी अग्नि मिलना सर्वथा असम्भव है। इसी समय जानकी के वाम नयन और

बाहु दोनों फड़कने लगते हैं—

फड़कत मङ्गल अङ्ग सिय, बाम विलोचन बाहु ।
त्रिजटा कह सुनि सगुन फल, प्रिय सँदेश बड़ लाहु ॥
सगुन समुझि त्रिजटा कहति, सुनु सिय अबहीं आज ।
मिलिहि राम सेवक कहिहि, कुसल लषण रघुराज ॥

—रामचरित मानस

सीता से अंगस्फुरण की बात सुनकर त्रिजटा ने उसका फल विचार किया और कहा कि आज ही किसी राम-सेवक सम्मिलन से प्रिय संदेश प्राप्ति का महान् लाभ होने वाला है। यह कह कर सीता को विश्राम के लिए छोड़कर त्रिजटा भी चली गयी। इधर सीता सोचने लगी कि न आग मिलेगी और न मेरा हृदय-शूल मिटेगा। लाख प्रार्थना करने पर भी न तो नभ के दहकते अङ्गारे-से-तारे अग्नि-कण गिराते हैं और न भीषण अग्निपुंजवत चन्द्रमा ही अग्नि-कण गिराते हैं। तब वह व्याकुल होकर अशोक-वृक्ष से अनुनय करती है। वह सोचती है कि अशोक के नूतन पत्ते भी अनल समान ही हैं। उनके पास अत्यधिक अनल है। अग्नि-कण बरसाने के लिए और शोक-हरण करने के लए वह दीर्घकाल तक अशोक से भी प्रार्थना करती है।

मुद्रिका प्रदान—सीता को विरह से अतीव व्याकुल देख कर कपिराज भी दुःखी हुए। वह क्षण उन्हें कल्प समान बीता—

दृष्ट्वात्यन्त वियोगेन व्याकुलां वसुधात्मजाम् ।
व्यतीतः कपि राजस्य समः कल्पेन स क्षणः ॥

—जैमिनि रामायण

कपि ने हृदय में विचार किया कि किसी ने अग्नि न दी, अब अशोक से प्रार्थना की है। यहाँ से कामना-पूर्ति न होने पर हम दोनों की निन्दा होगी, क्योंकि वृक्ष वानर-कुल का घर है और अशोक का स्वाभाविक धर्म शोकनाशन है। अतः दोनों की ही धर्म-रक्षा आवश्यक है। यही एक मात्र अतीव मूल्यवान समय है। यही एकांत का समय समुचित है। माता का ध्यान वृक्ष से मिलने वाली आग पर केन्द्रित है। अतएव आपने ऊपर से माता के सामने मुद्रिका गिरा दी। सीता ने उसे अंगार समझ कर हर्ष

से उठाकर हाथ में ले लिया। हाथ में लेते ही वह आश्चर्य चकित हो गयी। प्रभु की मुद्रिका पहचानकर वह हर्ष और विषाद से व्याकुल हो गयी। प्रिय की वस्तु के मिलने से हर्ष हुआ, परन्तु अनिष्ट की आशंका से उनके मन में आकुलता बढ़ गयी—

तदाऽति चकिता सीता ज्ञात्वा तां राम मुद्रिकां।
आकुला हर्ष शोकांभा मीक्षते तां पुनः पुनः॥

वशिष्ठ रामायण

उस दशा का वर्णन कैसे हो सकता है? उन्होंने सोचा कि किसी माया से ऐसी अलौकिक मुद्रिका का निर्माण तो सर्वथा अशक्य है। चिन्तातुरता से प्रलाप की अवस्था में वे मुद्रिका से बातें करने लगीं। मुद्रिका दिव्य स्वरूपा चैतन्यमयी थी। वह राजा जनक को ब्रह्मा ने प्राप्त हुई थी। जनक राजा ने उसे कन्या-दान में समर्पित किया था। वह जानकी की परन प्रिय बहस समान थी। अतएव उन्होंने मुद्रिका से प्रभु का कुशल-समाचार पूछा। किन्तु शीघ्र उसके द्वारा कोई उत्तर न देने पर ऊपर से कपि ने आकाश वाणीवत मधुर वाणी में कहा—

रामस्त्वद् विरहेण कंकण पदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान। —हनुमन्नाटक

सीता के दर्शन—मातेश्वरी सीता के दर्शन के प्रसङ्ग में हनुमान गम्भीर विचारों के बाद यह निश्चित करते हैं—"मैं बहुत छोटा वानर हूँ, पर मैं मनुष्यों के समान संस्कृत वचन कहूंगा। अन्यथा ये मुझे रावण समझ डर जाँयगी। मेरा रूप देख और वाणी सुनकर एक बार ये डर कर चीख उठीं तो रक्षक राक्षस गणों के दौड़ आने पर युद्ध आरम्भ हो जायेगा। इससे कार्य में विघ्न होगा। अतएव अच्छा यह है कि पहले भगवान श्री राम के गुणों का गान आरम्भ करें, जिससे जानकी की उद्विग्नता का निराकरण हो और उनके मन में शांति हो। इसीसे मुझ पर वे विश्वास करेंगी।" यह विचार कर हृदयाकर्षिणी सत्य-सुधामयी वाणी से वे प्रभु की गुणावली का वर्णन करने लगे, जिसके सुनते ही सीता के सारे दुःख दूर भाग गये। मन शांत होने पर वे एकाग्रता से सब सुनने लगीं। तभी चतुर सुजान वक्ता मारुति ने आकाशवाणी से सीता-हरण तक की सारी कथा कह सुनाई। इससे जानकी के हृदय में दिव्य वक्ता के दर्शन की प्रबल कामना जागृत हो उठी। वे बोलीं—"जिसने श्रवण-सुधामयी सुन्दर कथा

कही है वह सामने प्रकट क्यों नहीं होता ? यह सुनते ही हनुमान वृक्ष से उतर कर माता सीता के चरणों में प्रणाम कर, सकुचाते हुए खड़े हो गये। सीता ने कथा तो मानव-वाणी में सुनी और वेष वानर का देखा। उन्हें शंका हुई कि यह छल-कर्ता न हो। इस आशंका से विस्मित हुई कपि को निकट जान वे मुख फेर कर बैठ गईं। उसी समय विश्वास जगाने के लिए "हनुमान बोले—'मातेश्वरी जानकी, करुणानिधान राम की शपथ कर कह रहा हूँ कि मैं रघुवंश मणि राम का दूत हूँ। मुझे मारुत सुत कपि जान विश्वास करो। माता, यह मुद्रिका मैं ही लाया हूं। भगवान श्री राम ने यह प्रतीक-चिह्न दिया है; जिससे आपको मेरे प्रति विश्वास हो।" फिर हनुमान ने राम के वानर-राज की और अपने सम्पर्क की सारी कथा कह सुनाई। सारी बातें जान कर सीता के मन में पूर्ण विश्वास हो गया कि यह मन-कर्म-वचन 'से राघवेन्द्र का दास है। हरि-सेवक जानकर हृदय में अतीव प्रेमोद्गार हो आया। वे बोलीं—हनुमान, आज मुझ डूबती हुई के लिए तुम जहाज-रूप से बचाने के लिए आ गये हो।

सीता ने हनुमान से सानुज श्री प्रभु की कुशलता पूछी। फिर वे विलाप करने लगीं—हा नाथ, क्या मैं बिल्कुल ही भुला दी गई ? अतीव आर्त भाव से उपालम्भपूर्ण प्रश्नों का समूह उपस्थित हो गया। सबका समुचित उत्तर हनुमान को ही देना था। श्री राम स्वयं जानते थे कि सीता के द्वारा ऐसे अनेक प्रश्न उपस्थित होंगे। इसीलिए समस्त उत्तर-दायित्व से पूर्ण ज्ञानवान् एवं अभिन्न सेवक-मंत्री हनुमान को ही उन्होंने प्रतिनिधि रूप से सीता के पास भेजा था। कपि-श्रेष्ठ ने कहा कि हे माता, आप इस प्रकार दीन वचन क्यों कहती हैं ? आपके प्रति प्रभु का कैसा प्रेम-स्नेह था, वह तो आप जानती ही होंगी, किन्तु अबकी तो मैं भी कह सकता हूँ। प्रवीण प्रभु सभी के हृदय की भावना जानते हैं। वे अपने आश्रित सेवक के दुःख से अतीव दुःखित रहते हैं। यह उन करुणानिधि की स्वाभाविक प्रकृति है। उन्हें तो सुग्रीव द्वारा आपके दर्शन होने का संदेश सुनकर ही बहुत बड़ा सहारा मिल गया था। मा ! आपके वियोग से करुणानिधान का शरीर क्षीण हो रहा है। उनका मन आपके दिव्य प्रेम से आपूरित है। अतएव आप अन्यथा विचार मन में न लावें। राम प्रति मुहूर्त्त आपका ही ध्यान करते हैं। वे शोक-सन्तप्त हैं। वे सोते ही नहीं और सोते भी हैं

तो आपका ही नाम ले-लेकर जग जाते हैं—

नित्यं ध्यान परो रामो नित्यं शोक परायणः।
नान्यं चिंतयते किंचित् स तु प्रेमवशं गतः॥
अनिद्रः सततं राम सुप्तोपि च नरोत्तमः।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुध्यते॥ —हनुमन्नाटक

स्नेहार्णव भगवान श्री राम का प्रेम न्यून है, ऐसा विचार मन में न लाएँ। उनका प्रेम आप से दूना है—

तवादर्शन जेनार्थे शोकेन परिपूरितः।
न्यूनं मामन्यथा मातः स्वचित्तेऽत्यंत कोमले॥
भवत्यां रामचन्द्रस्य द्विगुणं प्रेम वर्त्तते॥ —वाल्मीकि

वे सान्त्वना देने के बाद फिर बोले—"माता, अब धीरज-धारण कर श्री रघुपति का संदेश सुनिये।" प्रभु-सन्देश स्मरण आते ही कपि के नेत्रों में जल भर आते हैं।

श्री प्रभु-सन्देश—हनुमान बोले—"भगवान श्री राम ने आपको सम्बोधित कर कहा है : सीते, तुम्हारी उपस्थिति में जो वस्तुएँ मेरे लिए परमानन्द-दायिनी थीं वे आज तुम्हारे वियोग में विपरीत हो गई हैं। बसंन्त में वृक्षों के नये-सुकोमल लाल-लाल पत्ते आज आग के अँगारे जान पड़ते हैं। ग्रीष्म में निशा कालरात्रि, शीतल चन्द्र सूर्यरूप, शरद में सुविकसित कमल–दल शूल सदृश और वर्षा में मेघों के जल तपते तेल जैसे लगते हैं। तुम्हारा अवर्णनीय दुःख भीतर ही भीतर हृदय को जलाकर भस्म किये दे रहा है।

प्रभु ने कहा है—"प्रिये, मेरे और तेरे प्रेम का रहस्य एक मेरा मन ही जानता है। वह मन भी सदैव तुम्हारे पास ही रहता है। बस इतने में ही प्रीति का मर्म तुम जान लो—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। -
जानत, प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन रहत सदा तोहि पाँही।
जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं॥ —तुलसी

तात्पर्य यह कि शरीर से दुःख सहता हूँ, वचन से कुछ भी किसी से कहता नहीं।

विरहाग्नि से सन्तप्त होकर अहर्निश विदेहावस्था की अनुभूति कर रहा हूं।" प्रभु का सन्देश सुनते ही वैदेही प्रेम मग्न हो तन की सुधि भूल जाती हैं। तभी हनुमान माता को धैर्य धारण कराते हुए कहते हैं—देवि, सेवकों के सुखदाता श्री राम का स्मरण कर, आप रघुपति की दिव्य प्रभुता का ध्यान करें। ये सारे निशाचर-समूह पतंग के समान हैं। राघवेन्द्र के बाण की ज्वाला में ये सभी भस्म हो जाँयगे। आप धैर्य धारण करें। अग्नि निरपेक्ष है। वह पतंगों को जलाने नहीं जाती, वरन् वे ही झुण्ड के झुण्ड मोह-वश स्वतः आकर उसमें जल मरते हैं। उसी भाँति ये निशाचर हैं।

श्री रघुवीर को यदि पहले खबर मिल गई होती तो वे यहां आने में विलम्ब नहीं करते। मैं अभी आपको श्री प्रभु के पास निर्भय लिवा ले जा सकता हूँ, पर 'राम दोहाई' से कहता हूँ कि श्री राम की आज्ञा नहीं है। ऐसा करने में देव-कार्य भी बिगड़ता है। हाँ, मैं विश्वास-पूर्वक कहता हूं कि आप कुछ ही दिन और धैर्य धारण करें। कपि-भालू की सेना के साथ समुद्र में पुल बाँध-कर दोनों भाई लङ्का आयेंगे और निशाचरों को परास्त कर आपको विजय श्री के साथ ले जांयगे। हनुमान की शांत दीन एवं श्रद्धा-मयी लघु मूर्ति देखकर माता जानकी के हृदय में ममत्व का प्रबल भाव जाग्रत हो उठता है। वे कहती हैं—

हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। —तुलसी

यह स्नेह का ही प्रकट प्रमाण है कि आप हनुमान को 'सुत' शब्द की उपाधि से विभूषित कर पूछती हैं—'बेटा हनुमान, क्या तुम्हारे ही समान सारे वानरों की सेना है? इधर तो लङ्का में यातुधान अतीव बलवान और महायोद्धा हैं। मेरे हृदय में परम सन्देह हो रहा है कि युद्ध में वे सब अपनी लघुता-वश समर्थ हो सकेंगे वा नहीं। सीता की शंका का मौखिक उत्तर न दे, उन्होंने अपना वास्तविक रूप ही प्रकट कर दिखाया।

कनक भूधराकार सरीरा।
समर भयङ्कर अति बल बीरा॥

समर में भयङ्कर, अतीव बलवीर और सोने के पर्वत-सा विशाल रूप में हनुमान को देखते ही सीता के मन में पूरा भरोसा हो गया। उन्हें विश्वास हो गया कि ये सारे राक्षसों का संहार कर सकते हैं। श्री राम का प्रताप अवर्णनीय है। उसी से सारा कार्य

सम्पन्न होता है। उसी समय सीता के मन में प्रभु का प्रताप स्पष्टतः उद्भासित हो गया। उन्हें कपि ने एक घटना बताई कि प्रभु कृपा से परम लघु सर्प भी शक्तिशाली गरुड़ को खा जाने में समर्थ हो जाता है। घटना यह थी कि एक बार भगवान विष्णु की शरण में गये सर्पराज को देखकर घमण्डी गरुड़ ने उसे खा जाने की इच्छा की। भगवान ने गरुड़ की उस धृष्टता के प्रतिकार में सर्पराज को पूर्ण समर्थ बना दिया। फिर क्या था ? सर्प ही गरुड़ को खाने के लिए दौड़ा। गरुड़ भय से सारे विश्व में भागने लगे। कहीं भी बचने का उपाय नहीं दिखाई पड़ा। किसी ने शरण नहीं दी। ब्रह्मर्षियों के उपदेश से अन्ततः वे वैकुण्ठ में शरणापन्न हुए। भगवान ने गरुड़ को सर्पराज से क्षमा मँगवा कर ही संरक्षण दिया। गरुड़ द्वारा क्षमा मँगवाने के बाद श्री प्रभु चरणों में प्रणाम करते सर्पराज ने यही कहा—प्रभो, मैं प्रभु-प्रताप का अनुभव करता हूँ, अन्यथा गरुड़ के सामने मेरी हस्ती ही क्या थी ?" भगवान की आज्ञा के अनुसार मारुति ने उनके बल और विरह वर्णन के द्वारा अनेक प्रकार से सीता को आश्वस्त किया। पति का परम प्रिय अनुचर जानकर सीता ने उन्हें बहुशः आशीर्वाद दिया और अन्त में कहा कि भगवान राम तुम पर सदैव कृपा और प्रेम रखें। मातेश्वरी ने हनुमान के प्रत्येक सेवा-कार्य के उपलक्ष्य में (१—मुद्रिका दी, २—रामचन्द्र के गुण वर्णन किये, ३—कथा कही, ४—विश्वास उत्पन्न किये, ५—सन्देश दिये और ६—धीरज दिया) अलग-अलग छः आशीर्वाद प्रदान किये हैं। किन्तु सर्वोत्तम आशीर्वाद (कि प्रभु सदैव तुम पर कृपा करें) कान से सुनते ही हनुमान प्रेम में मग्न हो माता के चरणों में बारम्बार प्रणाम करने लगे। उन्होंने कहा—"आपके इस अमोध आशीष से मैं अब कृतकृत्य हो गया—

अहं मातस्तवा मोघा आशिषो विदितं भुवि। —नृसिंहपुराण

सीता की ही अनुकम्पा से दास अपने को श्री राम का पूर्ण कृपापात्र मान सकता है।

अशोक वन-विध्वंस—मुख्य राम-कार्य सम्पन्न हो गया। अशोक वन के सुन्दर फलों के दर्शन कर कपि की भूख जग उठी। उन्होंने सीता से कहा—मुझे जोरों से भूख लग आई है। वानर वीरों के सामने मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि रामकाज पूरा किये बिना मैं जल-फल-विश्राम ग्रहण नहीं करूँगा। कपि के इस भाव से गद्गद् होकर

स्नेह-वश सीता ने कहा—"वत्स, फल तो खा सकते हो, किन्तु इस वन की रक्षा में बड़े-बड़े सुभट रजनीचर नियुक्त हैं। यही आशंका है !" हनुमान बोले—जननी, आप मेरे फल खाने में यदि सुख मानें तो उन सबका मुझे कुछ भी भय नहीं है। कपि को बुद्धि और बल दोनों में निपुण देखकर जानकी ने सहर्ष आज्ञा दे दी। उन्होंने कहा—जाओ, भगवान श्री राम के चरण-कमल को हृदय में धारण कर अभी मधुर फलों से अपने को तृप्त करो—

निपुणस्य कपेर्बुद्धि-बलं दृष्ट्वा ऽऽह जानकी।
गच्छ श्री रामचंद्रांघ्री धृत्वा स्वहृदये मुदा॥
भुक्ष्त्व मधुना तात मधुराणि फलानि वै॥ —बृहस्पतिपुराण

फिर क्या था ? आप वृक्षों पर कूद-कूद कर एक से एक सुन्दर फलों को चुन-चुन कर खाने लगे और वृक्षों को भी तोड़-तोड़ कर उपवन को रौंदने लगे—

आसिस आयसु पाइ कपि, सीय चरन सिर नाइ।
तुलसी रावण-बाग फल-खात बराइ बराइ॥— तुलसी

अशोक-वन के विध्वंस करने के कई कारण थे। (१) माता सीता के लिए ये शोकसार थे। (२) अपने पिता पवनदेव को रावण की सेवा से मुक्ति दिलानी थी। (३) मेघ-नाद से भी अधिक दुलारे एवं प्राणप्यारे बाग का नाश मानों रावण-मान-भंजन था। (४) रावण के महान बल और प्रबन्धादि की परीक्षा आरम्भ करनी थी। (५) इसके द्वारा रावण-राज परिषद-दर्शन करने की इच्छा थी। (६) अनुपकारी जीवन एवं जड़ योनि से वृक्षों को मुक्ति देनी थी।

उद्यान की विध्वंस-लीला देखते ही चारो ओर से भयानक राक्षस-गण हनुमान पर टूट पड़े। कपि के वज्र-लांगूल-प्रहार से वे एक-एक कर धराशायी होने लगे। राक्षस वीर सहसा चकित हो गये। कपि के अतुलनीय पराक्रम से वे आतंकित हो गये। वे लङ्काधिपति से गुहार करने लगे। उन्होंने कहा, स्वामिन, एक प्रतापवान महाकपि यहाँ आ गया है। उसने मुहूर्त मात्र में सारी अशोक वाटिका नाश कर डाली है। सुन्दर फलों को खाकर, वृक्षों को उखाड़ते हुए, उन्हीं से क्षण भर में सारे रक्षकों को उसने मारकर गिरा दिया है—

महान् कपिः समायातः स्वामिन्नेक प्रतापवान् ।
अशोक वाटिका तेन मुहूर्त्ता देव नाशिता ॥
भुक्तवान् सुफलान्येषु वृक्षाश्चोत्पाटिताः क्षणात् ।
रक्षसां मर्दनं कृत्वा रक्षका भुवि पातिता ॥ —नृसिंहपुराण

इस अशुभ समाचार से क्षुब्ध रावण हजारों भटों को भेजता है। यह देखते ही हनुमान सिंहनाद कर सभी निशाचर भटों का संहार कर डालते हैं। उनमें कुछ अधमरे ही पुनः रावण के पास जाकर समाचार कह सुनाते हैं। पहले भटरूप मंत्री-पुत्र भेजे गये थे। इस बार रावण ने असंख्य सुभटों के साथ पुत्रवीर अक्षयकुमार को भेजा। उसके आते ही उखड़े वृक्ष से प्रहार कर अक्षयकुमार की जीवन-लीला समाप्त कर दी जाती है। कपि गर्जन कर उठे और उन्होंने उसके सहयोगी असंख्य वीर सुभटों को निर्ममता-पूर्वक क्षण भर में मार डाला। जो उछल-कूद कर घबड़ा कर उनके पैरों तले पड़े वे सब धूलि में मिल गये। जो भाग बचे वे ही फिर रावण के पास लौट आये। वहाँ जाकर उन्होंने सारा समाचार सुना दिया। उन्होंने कहा—"प्रभो, अति बलवान मर्कट अत्यन्त दुर्द्धर्ष है। उसने वीर अक्षयकुमार सहित सारी सेना का एक क्षण में ही संहार कर दिया। महापराक्रमी वीर अक्षयकुमार को मार कर कपि श्रेष्ठ ने लङ्कापति रावण के हृदय में विचित्र भय-सा पैदा कर दिया—

महाकपिर्भूमि तले निष्पीडयंतं चकार रक्षसोधिपते र्महद्भयम्। —वाल्मीकि।

कुपित लंकेश ने मेघनाद एवं पांच विशिष्ट सेनाधिपतियों के ऊपर कपि के नाश का भार अर्पित किया। सेनापतियों से मन्त्रणा करते समय रावण ने कहा—"मुझे तो इस महावीर वानर के सामर्थ्य की इयत्ता ही नहीं दिखाई पड़ती है। उसका बल अनुमान से परे है। वह बाणों द्वारा अवध्य प्रतीत होता है। मेरा मन तो कहता है कि यह वानर नहीं है। इन्द्रादि ने इसे अपने महान् तप-बल से हमारे अनिष्ट के लिए यहां भेजा होगा—

नैवाहं तं कपिं मन्ये यथेयं प्रस्तुता कथा। —वाल्मीकि

वानर समझ कर इसकी उपेक्षा न करना। मेरी धारणा है कि कोई महान शक्तिशाली, अदृष्ट, अश्रुत प्राणी वानर रूप में आया है—

महत्सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपि रूपं व्यवस्थितं। —वाल्मीकि

मेरा विश्वास है कि सर्वशक्ति सम्पन्न अजेय मेघनाद ही उसे परास्त कर सकता है। रावण ने मेघनाद को आज्ञा दी कि कपि को मारना नहीं, वरन् बाँध कर ले आना। देखूँ तो, यह कपि कहाँ का है—

देखिय कपिहि कहाँ कर आहीं।

सुर, नर, असुर, नाग और पक्षियों में हमारे सेवकों के समान कोई बलवान नहीं है। वानर रूप में यह कौन शत्रु पैदा हो गया! भातृ-निधन से अतीव कुपित इन्द्रजीत रथारूढ़ हो अशोक वन की ओर चला। साथ में अनेक महाभट थे और विशाल सैनिक-समूह था। उधर मारुति पहले से ही किसी भारी आक्रमण की प्रतीक्षा में बैठे थे। जो जिस प्रकार सामने आता उसकी उसी प्रकार की पूजा होती थी। रक्षकों को हाथ से मल-मल कर भूमि पर फेंक डाला। रथारूढ़ अतुलित योद्धा इन्द्रजीत को दूर से ही आते देख कर उन्होंने समझ लिया कि इस बार दारुण भट आया है। कटकटा कर गरजते हुए दौड़कर उन्होंने अतीव विशाल तरु उखाड़ कर भीतर पहुँचने के पहले ही मेघनाद के रथ को चूर-चूर कर नष्ट कर दिया—

विरथः कृतवान् वीरं मेघनादं महाबलम्। —नृसिंहपुराण

मेघनाद जब माया से अलक्षित होता था उसी समय वे उसके सहायक महाभटों को पकड़-पकड़ कर मसलने लगते थे। यह देख मेघनाद वहाँ आ पहुँचा। दोनों मल्लयुद्ध करने लगे। ऐसा प्रतीत होता था मानो दो गजराज आपस में टकरा रहे हैं। लड़ते-लड़ते दीर्घ काल बीत गया। तब कपि ने वज्र-मुष्टिका का प्रहार किया। फलतः मेघनाद मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके गिरते ही हनुमान एक विशाल वृक्ष पर जा चढ़े। वे यह देखना चाहते थे कि इस बीच कोई आ तो नहीं रहा है। उसने अपने मन में मारुति को अजेय माना। वह उन्हें निशाचरी माया से परास्त करना चाहता था, किन्तु किसी भी प्रकार परास्त नहीं कर सका। भली भाँति (प्रकृष्ट रूप से) भंजन करने वाले 'प्रभंजन' के पुत्र होने के कारण इन्होंने सारी माया का नाश कर दिया। सारी माया वायु के आश्रय से प्रवाहित होती है। जब पवन ही स्वतः विरत या कुण्ठित हो जाय तो फिर माया की गति कैसे नहीं अवरुद्ध होगी? इन्द्रजीत के जीवन में यह

पहला अवसर था जो वह किसी से पराजित हुआ हो। आत्मरक्षा के विचार से और पिता के सम्मुख अपनी लाज की रक्षा के लिए उसने ब्रह्मास्त्र-संधान करने का विचार निश्चित किया। चतुर कपिराज ने यह निश्चित कर लिया कि यद्यपि ब्रह्म-वर प्रभाव से इसका फल मुझ पर घटित नहीं हो सकता, तथापि इस समय रावण-राज-परिषद देखने के सुयोग से ब्रह्मास्त्र की महत्ता मान लेना ही सर्वोत्तम होगा। "एक पंथ दो काज" की दृष्टि से आप तैयार हो बैठे। उसी समय मेघनाद ने कपि पर ब्रह्मबाण चला दिया। पर्वताकार-रूप धारी कपिराज वृक्ष पर से इस प्रकार गिरे जिससे सारा राक्षसी कटक उनके शरीर के नीचे दब कर चूर-चूर हो गया। कपि को मूर्च्छित देखकर उसने उन्हें नाग-पाश से बाँध लिया। वे सचेत होकर मेघनाद के साथ राज-परिषद् जाते हैं। ऐसे समय रहस्यमय लीला से अनभिज्ञ लोगों के मन में महान आश्चर्य हुआ। इसका समुचित उत्तर देते हुए भगवान शिव स्वयं कहते हैं—"भवानी, जिसका नाम जपकर ज्ञानवान पुरुष भव-बंधन काट डालते हैं; उसका दूत क्या किसी बंधन में आ सकता है? भव-बंधन के आगे तो नागपाश कुछ भी नहीं है। रामकाज के लिए कपि ने ही अपने को बँधवाया था।"

रावण-राजपरिषद निरीक्षण—कपि के बाँधे जाने के समाचार से सारे निशिचर निर्भय हो गये। वे उसे देखने के लिए चारों ओर से राजपरिषद की ओर दौड़ पड़े। कपि ने देखा कि चौकोर स्वर्णमणिमय हजारों खम्भों के मध्य रावण का भव्य सिंहासन है। उसका प्रतिबिम्ब सभी स्तम्भों में झलकता था। साधारण व्यक्ति तो शीघ्र समझ ही नहीं सकता कि सत्यस्वरूप रावण इसमें कौन है? दसमुख राज-सिंहासन पर बैठा था। अगल-बगल में रवि, शशि, वरुण, इन्द्र, कुवेर और अग्नि, यम आदि देव हाथ जोड़े अतीव विनम्रता से सभीत खड़े देख रहे थे। रावण के प्रचण्ड प्रताप से प्रभावित या आशंकित न हो कपि वहाँ निःशंक दीख रहे थे जैसे महासर्पों के मध्य गरुड़। रावण उन्हें अपने प्रताप से प्रभावित करना चाहता था, किन्तु उन्हें प्रत्यक्षतः भगवान नन्दी के रूप में देखकर वह भय से काँप उठा—

सोऽपि प्लवंगमभि वीक्ष्य समीर पुत्रं,
चित्रीयमाण हृदयः पिशिताशनेन्द्रः।

कैलाश शैल चल नागसि शापदायी-
नंदीश्वरः स्वयमुपागत इत्यमंस्त ॥ —चम्पू रामायण

अपने मन में वह विचार करने लगा कि कैलाश उठाने के समय जिसने स्वयं मेरे नाश का शाप दिया था वही नन्दीश्वर आज वायु-पुत्र वानर रूप में तो नहीं आ गया है ? यही स्वरूप नन्दीश्वर का भी है। किन्तु अपना यह आंतरिक भय वह किसी भी तरह प्रकट नहीं होने देता था। कपि को बंधन में आया देख वह अतीव प्रसन्न हो गया। उसने सोचा कि भगवान् से विमुख होने के कारण ही इस महाकपि के द्वारा सभी भाँति से अपमानित होना पड़ा। वह नहीं समझ सका है कि सबके मूल में विशिष्ट महाकाल पुरुष हैं, जिनके प्रताप के सम्मुख ब्रह्मांड में ऐसा कौन है जो प्रतिहत न हो जाय ? इस अज्ञान में भी वह हनुमान को अपना अधीश्वर मान बैठा। उसे जानने के लिए ही वह अपने बाह्याडंबर के व्याज से अन्तर्गूढ़ात्मक चार प्रश्न कर बैठा—(१) अरे वानर, तू कौन है ? (२) किसके बल से अशोक वन को तूने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला ? (३) क्या तूने जगत्प्रसिद्ध रावण का नाम नहीं सुना है जो इतना निर्भय हुआ है। (४) राक्षसों को तूने किस अपराध से मारा ? सठ, ये बातें सच-सच बता दे तो तुझे प्राण-दण्ड का भय नहीं है—

समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्यान्वया कपे।
तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे ॥ —वाल्मीकि

वानर, तेरा कल्याण हो ! तू सच-सच बता दे कि इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण या विष्णु इनमें से किसने तुम्हें भेजा है ? वानरों में यह तेज नहीं होता। तू वानर नहीं, वानर रूप-धारी प्रतीत होता है। प्रेषक का नाम सूचित कर देने पर तुझे छोड़कर सारे कामों का बदला हम उसी से लेंगे। अतः तू अपने प्राण-दण्ड का भय छोड़ दे।

वेद-वेदांग-विद, ब्रह्मवादी प्रवक्ता, बलाभिमानी हनुमान रावण के सारे प्रश्नों को सुनकर दूसरे प्रश्न 'केहि के बल' से क्रमिक रूप में अचिंत्य निर्गुण परब्रह्म से आरम्भ करते हुए उत्तर देते हैं। हे रावण, मेरी भारती वाणी को सुन। जिसके बल से माया अनंत ब्रह्मांड समूहों की रचना करती है—

हे रावण, त्वं शृणु भारती मे लब्ध्वा बलं यस्य करोति माया।

जिसके बल से ब्रह्मा-विष्णु-महेश सृष्टि का पालन-सर्जन-संहार करते हैं, जिसके बल से शेष अपने सिर पर एक रज की कनी के समान धरती को धारण करते हैं, जो दीन-देव-धर्म की सदैव रक्षा करते हैं, जो पापियों को दण्डित करते हैं, जिन्होंने खर-दूषण, त्रिशिरा तथा बालि जैसे विश्वप्रसिद्ध अतुलित बल शालियों का सुलभता से ही वध कर डाला, जिसकी प्रिय पत्नी को उनकी अनुपस्थिति में तुम जबरदस्ती हर कर ले आये, मैं उन्हीं रघुकुल भूषण-कोशल-नरेश श्री राम का वानर विशेष दास हूँ तथा दूत रूप से तुम्हें उपदेश देने यहाँ आया हूँ। तुम्हारी प्रभुता मैं जानता हूँ। विश्व प्रसिद्ध सहस्रबाहु से लड़ाई में तुम्हारी प्रभुता प्रकट हुई थी। बालि से होनेवाले समर में भी तुमने अभूतपूर्व यश पाया। मारुति से तीक्ष्ण व्यंग्यपूर्ण बातें सुनते ही रावण भीतर ही भीतर सहम जाता है। वह सोचता है कि कपि द्वारा पोल न खुल जाये। आगे कहीं कोई बात विगड़ न जाय, इस आशंका से तुरन्त ही वह स्वाभाविक हँसी से उसे बहला देना चाहता है। चतुर हनुमान भी सतर्क हो बात बदल देते हैं।

हनुमान ने कूटनीति की दृष्टि से कहा—"लंकेश्वर, मेरी निःशंकता से तुम्हें महान आश्चर्य हो रहा होगा। मुझे यह देख कर महादुःख हो रहा है कि इस सभा में असाधारण बलवान कोई नहीं है। यदि मुझे स्वामी की आज्ञा होती तो मैं शत्रु की शक्ति का अनुमान कर इतनी ग्लानि सहन न करता। काल, कर्म तथा दिक्पालादि सभी जिस प्रभु के करतल गत हैं, उसके शत्रु से उसी के देश में यदि मेरा युद्ध छिड़ जाता तो मेरा जीवन सफल हो जाता। किन्तु मुझे महान दुःख है कि इस बड़े समाज में व्यर्थ ही मैं लज्जा का भाजन बन रहा हूँ—

बड़े समाज लाज भाजन भयो, बड़ो काज बिनु छल तो। —गीतावली

अन्यथा सारे निशाचरों का संहार-कार्य मैं आशंका-रहित होकर सहज ही पूर्ण कर सकता था। इस सभा में अपने समान बली प्रतिभट न देखकर ही निर्भय हूँ।" रावण ने प्रश्न किया था कि तुमने किसके बल से अशोक-वाटिका को उजाड़ा। इस प्रश्न के उत्तर में कपिने कहा कि जिनका महाबल पूर्वतः वर्णन किया है, उन्हीं के बलाश्रय से हमने वन उजाड़ा। फिर भी अपने को निरपराध सिद्ध करने के लिए आपने कहा कि हे लंकेश, अतीव भूख लगने से मैंने फल खाया, वानर स्वभाव से विपिन के वृक्षों का

विनाश किया। अपना शरीर सभी को परम प्रिय होता है। मुझे फल खाते देख कुमार्गगामी राक्षस मुझे मार डालने की कामना से बाणों का भयङ्कर प्रहार करने लगे—

फलानि भुक्तानि बुभुक्षितेन
वै मया कपित्वा द्विपिनं विनाशितम्।
दृष्ट्वा ततोऽहंरभसा समागतान्
मां हंतु कामान्धृत चाप सायकान्॥ —अध्यात्म रामायण

तभी मैंने अपने शरीर की रक्षा में प्रहार किया। जिसने मुझे मारा उसी को मैंने भी मारा। इसके बाद तुम्हारे पुत्र मेघनाद ने मुझे ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित कर और नागपाश से बाँधकर तुम्हारे सामने उपस्थित किया। मुझे अपने बाँधे जाने की लज्जा नहीं है। मैं तो अपने प्रभु का कार्य करना चाहता हूँ। अब मैं हाथ जोड़ कर तुम से विनय करता हूँ। अभिमान छोड़कर तुम मेरी हितप्रद सीख सुनो। तुम अपने कुल-पितामह पुलस्त्य की ओर जरा देखो। वे तथा तुम्हारे पिता कैसे धर्मनिष्ठ भगवदाराधक हैं। तुम भी विद्वान हो। जिस मार्ग से गुरुजन चले हों वही मार्ग कल्याण-प्रद होता है। अतः कुल धर्म न छोड़ो। किसी कार्य-कारण वशात् जो भ्रम तुम्हारे हृदय में उठ आया है उसे त्याग कर शीघ्र भक्तभयहारी प्रभु का भजन करो। सुरासुर और चराचर को खा जानेवाला काल भी उनके डर से अतीव भयभीत रहता है। ऐसे महाप्रभु से वैर न कर मेरे कहने से जानकी को सविनय लौटा दो। रघुवंश-नायक दुष्टों के शत्रु होने पर भी प्रकृति से ही करुणा के सिंधु और प्रणतपाल हैं; शरण जाने पर तुम्हारे सारे अपराधों को क्षमा कर देंगे। श्री राम के चरण-कमलों को हृदय में धारण कर तुम लङ्का का अचल राज्य करो। लंकेश, अब भी समय है। महर्षि पुलस्त्य के विमल-यश-चन्द्र में तुम कलङ्क न बनो। तुमने अपने तपोबल, बाहुबल तथा स्नेहबल से शिव-ब्रह्मा को भी भली भाँति सन्तुष्ट कर लिया है। अब उसके फलस्वरूप तथा अपने ही पोषित राज-समाज, पुत्र-पौत्रादि एवं सेवकों को स्वयं ही विनाश की ओर मत भेजो—

तप बल, भुज बल, कै सनेह बल,
सिव-विरंचि नीकी विधि तोषे।
सो फल राजसमाज सुवन-जन
आपु न नास आपने पोषे॥ —गीतावली

विनाश की ओर ले जाने वाले इन कुमंत्रियों को चित्त में त्रिदोष ग्रस्त जानकर इनकी वात मत मानो—

कह्यो कुमंत्रिन को न मानिये, वड़ी हानि, जिय जानि त्रिदोषे।

यदि भगवान श्री राम कुपित हो गये तो तुम्हारे राज्य, कुल, यश, संपत्ति और शरीर सभी का व्यर्थ ही नाश हो जायगा।

ज्ञानियों में अग्रगण्य एवं "प्रतिवादि-मुख स्तंभी" मारुति की भक्ति, विवेक, वैराग्य और नीति से पूर्ण हितप्रद वाणी से रावण सभी तरह से निरुतर हो गया। वल-तेज से तो प्रभावित था ही, उनकी दिव्यज्ञानमयी वाणी से भी वह अभिभूत हो जाता है। उसने समझ लिया कि विचार खण्डन में और तर्क-वितर्क में शब्दोत्तर देते समय यह महा-बुद्धिमान कपीन्द्र राजसभा में मुझे और भी अधिक मूर्ख बना देगा। अतः अपनी हीनता को बचाने के व्याज से राजसभा में अपने प्रभुत्व का उत्कृष्ट प्रभाव डालते हुए महाभि-मानी रावण हँस कर बोला—

मिला हमहिं कपि गुरु वड़ ज्ञानी।

उसने कपीश से कहा—"खल, तुम्हारी मृत्यु अब निकट आ चुकी है। प्रत्युत्तर में हनु-मान ने कहा—यह उद्घोष उल्टा होगा। काल जिनके पास आ जाता है, उन्हें तुम्हारी ही भाँति मतिभ्रम छा जाता है। यह सुनते ही रावण ने सभासदों से कहा—"इस मूढ़ का प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर लेते?" राजाज्ञा सुन राक्षसगण हनुमान पर आक्रमण करने के लिए उद्यत होने लगे। उसी समय सचिवों के साथ विभीषण वहाँ आ गये। उन्होंने दूत-वध के कार्य को अति निन्दनीय बता कर यह कुकांड रोक दिया। विभीषण लङ्का के सारे प्रजागणों से लेकर रावण तक के परम प्रिय व्यक्ति थे। वे राज-नीति के चतुर सुजान एवं ज्ञान-वेत्ता थे। रावण के राज-समाज में भी इनकी मंत्रणा को मूल्यवान समझा जाता था। यही कारण था कि राजाज्ञा का इन्होंने विशिष्टाधि-कार से प्रतिरोध कर दिया। रावण भी कुछ देर शांत हो समादर से विचार सुनने को उद्यत हो गया। विभीषण राज-सभा में अतीव मूल्यवान समय पर पहुँचे। उन्होंने प्रहार-कर्त्ताओं को इङ्गित से रोक दिया और दूत के अवध्य होने की नीति का विस्तार से वर्णन किया। उन्होंने कहा—हे नृप, महापुरुषों का कथन है कि दूत सभी

कालों में और सर्वत्र अवध्य हैं—

प्रसीद लंकेश्वर राक्षसेन्द्र, धर्मार्थ तत्त्वं वचनं शृणुष्व ।

दूतान वध्याः समयेषु राजन् सर्वेषु सर्वत्र वदंति संतः ॥ —वाल्मीकि

उनके लिए और अनेक दण्ड हैं, पर वध का दण्ड कहीं भी सुनने में नहीं आया। आपके समान शास्त्र-ज्ञान में तथा लौकिक व्यवहारों में भी कुशल कोई दूसरा नहीं है। अतः आप शांति से कार्य करें। फिर, इसके वध से लाभ ही क्या ? दण्ड तो जिसने इसे भेजा है उसे दीजिए। यह दूसरे का भेजा हुआ दूसरे की ही बात कहने वाला है; पराधीन है। अतः वध के योग्य नहीं है। इसके वध से अपनी ही हानि है। इससे आपकी, शत्रु से युद्ध करने की प्रवृत्ति का नाश हो जायगा। इसके वध पर किसी दूसरे का ऐसा साहस नहीं, जो समुद्र पार कर इतनी दूर यहाँ आ सके और फिर इसके स्वामी को समाचार देकर उसे यहाँ आपसे युद्ध के लिए ला सके ? सर्वोत्तम तो यह है कि आप श्रेष्ठ शस्त्रधारी सेना को वहाँ भेजकर उन दोनों राजकुमारों को बन्दी बना लें, पर दूत का वध न करें। आप चाहें तो इसे कोई दूसरा दण्ड दे सकते हैं। इस मंत्रणा पर सभी सभासदों ने उनकी सराहना की। दशकन्धर हँस कर बोला— "तो ठीक है इस वानर का अङ्ग भङ्ग कर ही यहाँ से भेज दो। उसने कहा कि वानरों की सर्वाधिक ममता अपनी लांगूल पर होती है। अतः तेल से डूबे कपड़े इसकी पूँछ में बाँध कर सारे नगर में बाजे-गाजे के साथ घुमाकर आग लगा दो, जिससे सभी लोग भली भाँति इसे देख लें।

वह्निनायोजयि त्वैनं भ्रामयित्वा पुरेऽभितः। —अध्यात्म रामायण

रावण की सारी बातें सुनकर हनुमान मन में मुस्कुराये कि मेरी मनोकामना पूरी होने जा रही है। इस दण्ड के विषय में सुन कर लङ्का के सारे मूर्ख राक्षस अतीवानंद से अपने-अपने घरों से वस्त्र, तेल, घी आदि दे-देकर रचना में सहायता करने लगे—

वसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर खोरि-खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।

—कवितावली

एक ओर राक्षस गण तेल से भरे कपड़े पूँछ के सिरे से लपेटते थे तो दूसरी ओर कौतुकी हनुमान भी अपनी पूँछ ढ़ाते जाते थे। नतीजा यह हुआ कि नगर में वस्त्र, घी, तेल

आदि कहीं रह ही न गया। सब हार गये, किन्तु मूल पूँछ खाली ही रह गई। वे लोग रहस्य भी समझ न पाये। हनुमान मन में विचार करने लगे कि इन सब की जो हानि मैंने की है उसका बदला ये लोग मुझसे न ले सके। अब मैं सारे नगर में इनके द्वारा घुमाया जाऊँगा। इससे मुझे बड़ा लाभ होगा। रात में मैं लङ्का के जितने विशिष्ट भागों को न देख सका था, वे सब गुप्त प्रकट स्थान इस समय देखने में आ जायेंगे। वानर की पूँछ में आग लगाये जाने के तमाशे को देखने आबाल-वृद्ध-वनिता सभी यथा-मार्ग-स्थलों से शीघ्रता में आ जुटेंगे। नवयुवक गण तो कपि को बन्धन में देख शोभा-यात्रा में बाजे-गाजे के साथ नाचते-कूदते ताली बजाते सम्मिलित हो जाँयगे। गालियों की बौछार में हनुमान पर प्रहार करते हुए वे लोग उन्हें अनेक मार्गों से यह कहते हुए घुमाते थे कि यह चोर है—

समन्ताद् भ्रामयामासु श्चौरोऽयमिति वादिनः।
तूर्य घोषै र्घोषयन्त स्ताडयन्तो मुहुर्मुहुः॥

—अध्यात्म रामायण

इस प्रकार नगर में घुमाकर पश्चिम महाद्वार पर ले जाकर उन लोगों ने पूँछ में आग लगा दी। बड़े राक्षसों के साथ ही बालकों ने भी सम्मिलित हो—"ठौर-ठौर दीन्ही आगि" पूछ में जहाँ-तहाँ आग लगाकर कुछ दूर हट कर देखने लगे।

रावण महल पर—कौतुकी कपीश तुरन्त कूदकर रावण के गगन चुम्बित स्वर्णमय राजभवन के कँगूरे पर जा खड़े हुए। उन्होंने पूँछ फैलाकर काल से भी भयङ्कर स्वरूप धारण कर लिया। विकराल क्रोध से लाल-मुख होने के कारण वे करोड़ों अग्नि-सूर्य-से तेज पुंज दीखने लगे। विशाल पूँछ की भयङ्कर ज्वाल-माला तो ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो लङ्का को निगल जाने के लिए काल ने अपनी जीभ फैला दी है। देखते ही देखते सभी पापियों के घर में आग लग गयी।

लङ्का के अहङ्कार का होलिका-दहन :

हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
हट्ट हास करि गरजेउ, कपि बढ़ि लाग अकास॥

उस समय हरि की प्रेरणा से प्रलयकालीन उनचासो पवन अपने पुत्र की सहायता में

बहने लगे। वे कोटि सूर्य के समान परम तेज से देदीप्यमान हो रहे थे। वे अपने विशाल शरीर में भी कपास की भाँति हलकापन महसूस कर रहे थे। वे अट्टालिका से अट्टालिका पर, प्राकारों पर और कँगूरों पर दौड़ने लगे। नगर तो ऐसा जलने लगा मानो रुद्र ने त्रिपुर को भस्म कर दिया हो—"रुद्रेण त्रिपुरं यथा"। वाल्मीकि का कहना है कि सभी ओर से प्रचंड ज्वाल-माल को आते देख भयाक्रान्त राक्षसगण 'हा तात! हा पुत्र! हा कान्त! हा मित्र! हा जीवितेश! आज हमारे सब पुण्य नष्ट हो गये' आदि कहकर चीखने-चिल्लाने लगे :—

हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र
हा जीवितेशांक हतं सुपुण्यम्।
रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवद्भिः
शब्दः कृतः घोरतरः सुभीतः॥

पवन-देव के सहयोग से ज्वाला की विकरालता शनैः शनैः बढ़ती ही जा रही थी। साथ ही राक्षस-राक्षसियों का विलाप और आर्त्तनाद भी बढ़ता ही जा रहा था। वे कहने लगे कि पहले ही हमलोगों ने कहा था कि यह वानर असाधारण है। उनका कहना था कि यह वानर इन्द्र, वरुण, यम, पवन, रुद्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और कुबेर में से कोई नहीं, यह तो साक्षात् काल है—वानरोऽयं स्वयमेव कालः। कतिपय राक्षस बोलने लगे कि स्वयं पितामह चतुरानन ब्रह्मा ही अतिशय क्रुद्ध होकर वानर रूप से राक्षसकुल का संहार करने आ गये हैं? दूसरों का मत था कि अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त, एकमेव साक्षाद् विष्णु ही अपनी माया से भक्तों की रक्षा एवं राक्षस-कुल के विनाश के लिए इस महान तेजवान वानर रूप से आ गये हैं? पूँछ की ज्वालमाला से यह नहीं जान पड़ता था कि वह आग विंध्याचल की दावाग्नि है अथवा करोड़ों सूर्य एक साथ चमक रहे हैं। सर्वप्रथम रावण तथा उसके बड़े-बड़े महागर्वी मंत्रियों और महाभटों के महल भस्म हुए। तत्पश्चात् पापकर्म के सहायक नगर वासियों के घर जलने लगे। महाकवि तुलसी ने उस समय की दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है :— उस समय आतंक से समस्त राक्षसों की ऐसी अवस्था हो गयी कि उन्हें सर्वत्र वानर-ही वानर दिखाई पड़ने लगा। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो तीनो लोक केवल वानरों

से ही भरा हुआ है :—

वीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पंवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए।
अध-ऊर्ध्व बानर, विदिसि-दिसि बानर है,
मानहु रह्यौ है भरि बानर तिलोकिए॥

—कवितावली।

मन्दोदरी-सहित १० हजार रानियों की दुर्दशा देखने ही लायक थी। गजगामिनि मन्दोदरी आदि सारी रानियाँ भयंकर दाह से व्याकुल होकर अन्तःप्रासाद से बाहर की ओर भाग पड़ीं। भागते समय वे प्यास से व्याकुल हो रही थीं। उन्हें अपने वस्त्रों और आभूषणों के गिरने का भी ध्यान नहीं रहा। सभी के सामने एक ही समस्या थी कि किस प्रकार प्राण बच जाँय। सभी रमणियाँ राक्षसों की दुर्बुद्धि पर तरस खा रही थीं। उन्हें कपि से रार बढ़ाने में घोर अमंगल की काली छाया दिखायी पड़ रही थी। वे रावण के अतिरिक्त मेघनाद, महोदर, अतिकाय और अकंपन को भी कोस रही थीं कि उन्होंने अकारण ही कपिराज के साथ वैर किया।

अग्नि के प्रशमन की चेष्टा—धधकती और बढ़ती हुई आग को देखकर तथा धन-जन की अपार क्षति से घबड़ा कर रावण ने सेनापतियों को आज्ञा दी कि सारे सैनिक मिलकर इस वानर को पकड़ लें और बढ़ती हुई आग को समुद्र के जल से बुझा दें। राजाज्ञा पाते ही असंख्य महाबलशाली योद्धागण शूल-सेल-पाश-परिघ-लौहदण्ड-धनुषबाण आदि लेकर दौड़ पड़े। साथ-ही-साथ सैनिकों ने समुद्र से लेकर इतना पानी उड़ेला जितना कि सावन के बादल भी नहीं बरसाते हैं। तभी पवन का ऐसा प्रबल बवंडर उठा कि उसने लाखों की संख्या में असुर सैनिकों को आग में ढकेल दिया। वे लोग शीघ्र ही भस्म हो गये। उसी समय हनुमान ने घोर सिंहनाद किया। फलस्वरूप असंख्य राक्षस सैनिक मूर्च्छित हो गये अथवा भागते हुए सैनिकों के पैरों तले कुचल कर मर गये। बड़े-बड़े सचिव और सेनापति भी भगदड़ में लोगों को ढकेलते-ढकेलते आगे बढ़ आये और रावण से बोले कि इस प्रचण्ड अग्नि के सामने किसी का वश नहीं चलता। उसी समय हनुमान का विकराल रूप देख कर धैर्यवान मेघनाद भी

थोड़ा विचलित हो उठा। उसने अपने पिता से कहा कि पवन को भी जीत लेनेवाला यह कपि इस समय किसी की भी पकड़ में नहीं आता। प्रतीत होता है जैसे वही अग्निदेव हो। जो उसके सम्मुख खड़ा होता है वही भस्म हो जाता है। उसने अपने महाविकराल स्वरूप से काल को भी भयभीत कर दिया है और शरीर की महाविशालता में तो भगवान वामन को भी जीत लिया है। पहले यह कितना साधारण था और अब महाविराट रूप धारी हो गया है। उस समाज में ही बैठे किसी विशिष्ट राक्षस सचिव ने पश्चात्ताप करते हुए कहा—महाराज, जिसका दूत ऐसा प्रचण्ड है उस साहेब (रघुनाथ) का अभी आना बाकी ही है। फिर क्या होगा ? कहा नहीं जा सकता। वास्तव में अब कुशल कहाँ ? श्री राम के रोष को देखकर शिव भी नहीं बचा सकते। अन्य की तो सामर्थ्य ही क्या ? अतः ऐसे महाबली से वैर बढ़ाना व्यर्थ-सा ही प्रतीत होता है।

भयानक अग्नि के न बुझ सकने के समाचार से अतीव कुपित रावण ने प्रलयकालीन मेघों को बुलाकर आज्ञा दी कि लङ्का की आग बुझा डालो तथा वानर को शीघ्र अपने अथाह जल में बहाकर डुबा मारो। मेघराज अपने सभी सहायकों के साथ राक्षसेन्द्र की आज्ञा शिरोधार्य कर घोर गर्जन के साथ मूसलाधार वर्षा करने लगे। किन्तु प्रलयकारी जल-वर्षा का उस महाग्नि ज्वाल-माल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जल पड़ते ही आग भभक उठती थी। बड़वाग्नि, वज्रपाताग्नि तथा जठराग्नि ये जल पाकर बुझना तो दूर रहा इसके विपरीत जल को ही जला डालते हैं। हरि की इच्छा में विघ्नकर्त्ता ब्रह्मांड में कब बच सका है ? महाप्रचण्ड ज्वाला के चारों ओर से उठने पर सदलबल मेघराज जल से शुष्क हो झुलसने लगे तथा अतीव भय से प्राण-रक्षा में वहाँ से भाग खड़े हुए। वे विचारने लगे कि इधर तो ज्वाला से शरीर जला, उधर रावण के पास जाने में ग्लानि से शरीर अलग गला जा रहा है। इससे तो डूब मरना भला है। तथापि सूखे मुख संकोच से नत-मस्तक हुए मेघराज ने साहस बटोर कर रावण से कहा—महाराज ! हमने तो बारहो प्रखर सूर्य देखे हैं, प्रलय काल के अतीव भयंकर अग्निदेव को देखा है तथा भगवान सहस्रमुखी शेष के मुख की विष-ज्वाला को भी देखा है, किन्तु ऐसी भयंकर आग की ज्वाला तो जीवन में अब तक देखने में नहीं आई।

इसके अतिरिक्त कान से भी कभी मैंने यह न सुना था कि पानी भी घी समान हो गया हो। महान आश्चर्य है ! मैं तो अन्त में हार मान बैठा हूँ। मेघराज की बात सुन प्रखर बुद्धिमान वृद्ध राज-मंत्री माल्यवान अन्यान्य मंत्रियों के साथ दुःख-चिन्ता से माथा पीटते हुए बोले कि यह अग्नि नहीं है, वरन् ईश-प्रतिकूलता का विकार है।

इसके प्रतिरोध में रावण ने कहा—मेरे भय से अग्नि, पवन, सूर्य, चन्द्र, यम, काल, इन्द्रादि सभी लोक पाल, डाँवाडोल हुए रात दिन काँपते रहते हैं। महेश्वर, विष्णु भी सदा मुझ से सशंकित रहते हैं। इतना ही नहीं, अपने साहस बल एवं महातप से ब्रह्मा को भी मैंने मोल-खाते लिया है, जिससे वे कभी मेरे प्रतिकूल नहीं जा सकते। आज मेरे समान महाऐश्वर्यवान महाप्रतापशाली दूसरा सम्राट विश्व में नहीं है। आज भी कितने ही अभिमानी राजाओं के बेटे-बेटी तक हमारे यहाँ गिरवी (बंधन में) पड़े हैं। माल्यवान्, तुम्हारी बातें हमें बावलों को सी मालूम हो रही हैं। तुम्हीं बताओं, यह ईश नाम का कौन ऐसा महापुरुष है जो मुझ से प्रतिकूल हो ? राक्षसराज का विरद गान करते हुए माल्यवान बोले—"वास्तव में तीनो लोकों के सभी चराचर व्यक्ति आपके वशीभूत हैं। उन में से कोई ऐसा नहीं है जो आपके प्रतिकूल भावना ला सके। पर इस समय आप यदि अपने हृदय में गहराई से विचार कर देखें तो स्पष्ट हो जायगा कि यह प्रचण्ड अग्नि साधारण अग्नि नहीं है, अपितु श्री राम का क्रोधानल है जो सीता-विरह-जनित-दाह से इतना प्रचण्ड हो उठा है। श्री राम की वामता रूप में हनुमान को तुम प्रत्यक्ष देखो; यह वानर तो एक वहाना मात्र है। तभी तो यह तुम जैसे बाँके शूर-वीर की राजधानी में निःशंक घूम-घूम कर ललकारता हुआ प्रचण्डाग्नि से लंका को जला रहा है। ईश-वामता का यह प्रकट दर्शन है। माल्यवान के असाधारण ज्ञानमय सुगूढ़ विचारों पर रावण की भी आँखें खुल उठीं। वह अपने दृष्टिकोण से विचारने लगा कि ईश तो एकमात्र रुद्र ही हैं। उनसे बड़ा भयानक विश्वनाश कर्त्ता कोई अन्य देव नहीं है। यदि भगवान रुद्र ही मारुति रूप में स्थित हैं, तो फिर मुझ रुद्र-भक्त की नगरी को वे क्यों भस्म किये दे रहे हैं। कुछ क्षण सोच कर वह पुनः कहता है—"अहह ज्ञातम्"—ओहो !! समझ गया। पिनाकधारी दस रुद्र को मैंने अपने दस शिरों की अलग-अलग बलि दी थी और उन्हें प्रसन्न कर लिया था। किन्तु

एकादशवें रुद्र को संतुष्ट न कर सकने के ही कारण वे इस समय 'हनुमान' रूप से कोप कर सारी लंका भस्म कर रहे हैं। यह सर्वथा उपयुक्त ही है, कारण देव-पंक्ति का भेद करनेवाले उपासक का कभी कल्याण नहीं होता।

तुष्टः पिनाकी दशभिः शिरोभि स्तुष्टो न चैकादशमोहिरुद्रः ।
अतो हनूमान् दहतीति कोपा त्यक्तेर्हि भेदों न पुनः शिवाम् ॥

—हनुमन्नाटकम् ।

इस आत्म चिन्तन की दृष्टि से रावण के हृदय में हनुमान की दिव्य महानता का ज्ञान नष्ट हो गया है, जिससे हनुमान को विभिन्न अलौकिक दिव्य रूपों में देखने में वह समर्थ हो सका। इस प्रकार राक्षसाधीश सार्वभौम सम्राट रावण अब हनुमान के अनंतानंत महाप्रभुत्व के सन्मुख हतप्रभ सा हुआ अपने को तुच्छ समझने लगा।

लङ्काधीश का पलायमान प्रताप—भगवान श्री राम के महान भय से राक्षसराज दसकंधर का प्रताप हनुमान की पूँछ में लगाई गई आग से उठी प्रचण्ड ज्वाला के धुएँ के रूप में उड़ गया।

वन्हि र्बभौ वानर पुच्छ जन्मा सदाह्य लंका खमिवोत्पतिष्णुः ।
रामाद् भयं प्राप्य किल प्रतापः पलायमानो दशकंधरस्य ॥

—हनुमन्नाटकम् ।

रावण ने श्रीराम की महाप्रभुता देखने के लिए लूम में आग लगवायी। हनुमान ने उस प्रचण्ड अग्नि से लंकेश को लंका में ही ऐसी लीला दिखाई जिसमें नगर-वासियों से अधिक लंकेश्वर का ही विनाश हुआ।

राज प्रासाद में स्थित सैकड़ों प्रकार के पेय और खाद्य पदार्थों के बड़े-बड़े भंडार जहाँ-तहाँ भस्म हो रहे थे। बहु मूल्य करोड़ों स्वर्णमणिरत्नों के मुकुट, हजारों प्रकार के वस्त्र-रत्न-आभूषणों से भरे सन्दूक-पेटारे तथा बड़े-बड़े रत्नमय सिंहासन आदि निकालने में लगे हजारों कहार भीतर ही भार लिए धधकती ज्वाला में जल रहे थे। जो वस्तुएँ किसी प्रकार भवनों से बाहर इकट्ठी कर भी ली गई थीं, वे सब जहाँ की तहाँ ही जलकर भस्म हों गईं, कारण वायु के भयंकर झकोरों से आग की लपट सारे नगर में फैल गयी थी। राजभवन ही नहीं; अपितु सभी छोटे-बड़े नगर वासियों के भवन,

अटारी, बाजार आदि अग्नि की लपेट में आ भस्म हो रहे थे। जो भी ममता-वश वस्तु निकालने भवन के भीतर गया भी, वह वहाँ से फिर वापस न आ सका। बेचारे मूक पशु-हाथी-घोड़े आदि जो किसी प्रकार निकल कर भाग सके वे तो बचे, अन्यथा सभी भस्मीभूत हो गये। वास्तव में यह साधु-अवज्ञा का प्रत्यक्ष फल था कि लङ्का नाथ रावण की उपस्थिति में ही नगर अनाथ-सा जल रहा था। हनुमान ने सारे नगर को जला डाला, जिसमें एक मात्र भक्त विभीषण का गृह बचा रह गया। कपिने उनके घर को बचा कर अन्य सारे घरों को जला डाला।

विभीषणगृहं त्यक्त्वा, सर्वं भस्मी कृतं पुरम्।

—अध्यात्म रामायण

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि अग्नि प्रभाव से हनुमान कैसे मुक्त रहे? भगवान शिव का कथन है कि जिसने अनल को उत्पन्न किया उसी के दूत हनुमान हैं (जरा न सो तेहि कारन गिरिजा)। इस कारण प्राकृत अग्नि का प्रभाव उन पर कैसे पड़ सकता है?

यन्नाम संस्मरण धूत समस्त पापा रतापत्रयानल मपीहतरन्ति सद्यः।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्ट दूतः संतप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन॥

— अध्यात्म रामायण

मातेश्वरी सीता को त्रिजटा द्वारा हनुमान की पूँछ के जलाए जाने का जब सारा समाचार मिल गया तभी पुत्र के रक्षार्थ वे प्रार्थना करती हुई कहती हैं—"हे अग्नि देव, यदि ब्राह्मणों के दुर्वचन पर भी राघवेन्द्र शांत रहते हैं, यदि तुम वेदमन्त्रयुक्त घृताहुति से संतुष्ट रहते हो, यदि श्री राघव स्वामी के पादारविन्द मे मेरी सत्य निष्ठा है तो राक्षसों द्वारा हनुमान की पूँछ के जलाये जाने पर तुम उसे ताप न देना। सत्प्रार्थना से आग शीतलता-प्रदाता हो जाती है। यहाँ माता का शुभाशीर्वाद ही प्रधान था।

लंकादाह में माता के प्रति चिन्ता—लङ्का-दाह के समय आकाश स्थित देव, ब्रह्मर्षि, गंधर्व, विद्याधर, नागादि गण-महामति मारुति के अप्रतिम महाशक्ति की स्तुति कर रहे थे। उसी समय वायु-कुमार के हृदय में अपने लङ्का-दहन कार्य से अतीव चिन्ता एवं ग्लानि उठ खड़ी हो जाती है। असुरों का विलाप देख वे स्वात्मनिन्दा करते हुए कहते हैं—"हाय! यह क्या किया? धन्य

हैं वे महात्मागण जो परकृत सारे अपराधों को क्षमाकर भूल जाते हैं या उससे उठे हुए महाकोपाग्नि को अपने शांति जल से ठण्डा कर देते हैं। क्रोध अनर्थकारी और सारे पापों का मूल है। मुझे आशा नहीं है कि लङ्का के कोने-कोने लगी प्रचण्ड अग्नि-ज्वाला से सीता बच सकी होंगी ? यदि वे भस्म हो गई हैं तो मैं स्वधर्म लोप से शीघ्र ही इस शरीर को वड़वानल या समुद्री जलचरों को सौंप दूँगा। बढ़ती हुई इस चिन्ता में अकस्मात उनके हृदय में पूर्व के समस्त मंगल-सूचक कारण आ खड़े होते हैं, जिससे वे इस उच्च विचार स्तर पर आ जाते हैं कि माता जानकी स्वयं जहाँ अपने दिव्यातिदिव्य तेजाग्नि से सुरक्षित हैं वहाँ मेरी पुच्छाग्नि उन्हें जला नहीं सकती। कारण "नाग्निरग्नो प्रवर्तते"—अग्नि-अग्नि को कभी नहीं जला सकता ! इसके अतिरिक्त महान् आश्चर्य का प्रभाव तो मैं अपने प्रति देख रहा हूँ कि समस्त वस्तुओं को भस्म कर देने में समर्थ महाग्निज्वाला ने जब मेरी पूँछ को नहीं जलाया तो आर्या महारानी को कैसे जला सकती है ? अतः मेरा पूर्ण विश्वास है कि भगवान श्री राम के अव्याहत प्रभाव एवं वैदेही के पुण्यबल से जब मैं अग्नि-दाह से सर्वथा मुक्त रह गया तो फिर मातेश्वरी के प्रति ऐसी आशंका क्यों ? वे निश्चय ही पूर्णतया सुरक्षित होंगी। यह सोच कर समुद्र में पुच्छाग्नि बुझाकर श्रम रहित हो हनुमान पहले की ही भाँति लघु रूप से माता जानकी के सम्मुख हाथ जोड़कर उपस्थित हुए। उन्होंने जाने की अनुमति माँगी।

लङ्का यज्ञकुण्ड में यज्ञ कर्त्ता—सुब्रह्मण्य हनुमान ने ब्रह्म इत्यादि महापातकवान पौलस्त्य रावण के समागम जन्य महादोष से मुक्ति के लिए यह महायज्ञ किया—

पौलस्त्य पातकी समागमजायमानमेनः पुमान् इव वानर यायजूकः ।
निर्वर्ति ताक्ष विजयो निज वाल वह्नौ, हुत्वा पलाश समिधः सुगति बभूव ॥

—चम्पू रामायण।

महायज्ञ कुण्ड लङ्का नगर में वैभवमयी अनन्त सामग्रियों की समिधा रूप लकड़ियों से अग्नि तीव्रकर अनेकानेक रंग-बिरंगी राक्षसों की आई सेना रूप यथा योग्य जव, तिल, धान, पुंगीफल, साकला के साथ, हवि रूप में लङ्का के महाभिमानी यूथपति सेनाधिपतियों को अपनी शक्तिमान लांगूल-स्रुवा द्वारा यज्ञकर्त्ता हनुमान ने बारम्बार अपने महा हाँक रूपी स्वाहा मंत्रों से महायज्ञ किया। इसी के फलस्वरूप उनका अबाध

प्रत्यावर्त्तन लोक-विश्रुत (सुगतिमय) हुआ। अपने यज्ञ सम्पन्न होने पर समुद्र में अवमृत स्नान इस यज्ञ के अवसर पर आगत सम्मान्य अतिथि अग्नि देव का हनुमान ने सुसम्मान पूर्वक भोजन कराया। इस में उन्हें अतिशय आनन्द का अनुभव हुआ। तले-भुने राक्षसों के सुस्वादु मांस-रूप पक्वान्नों से अग्निदेव परितृप्त हो गये। उत्सव के समय किसी प्रिय पाहुने के भोजन के समय गृह की नारियाँ 'गारी' गाती हैं। लङ्का की शत्रु-भामिनियाँ भी इस दृश्य को देख गालियाँ दे रही थीं।

भगवान विराट पुरुष के धन्वंतराचार्य—भगवान विराट-पुरुष के हृदय-समुद्र में मानों रावण रूप असाध्य राज्ययक्ष्मा का रोग पैदा हो गया था। दिनोंदिन व्याधि भयंकरता से बढ़ती ही जा रही थी। महाकवि तुलसी ने इसका रूपक इस प्रकार किया है :—

रावनु सो राजरोगु बाढ़त विराट-उर,
दिनु-दिनु बिकल, सकल सुख राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर, सिद्ध, मुनि,
होत न बिसोक, औत पावै न मनाक सो॥
रामकी रजाइतें रसाइनी समीरसूनु
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।
जातुधान-बुट पुटपाक लंक-जातरूप-
रतन जतन जारि कियो है मृगांक-सो॥

विराट् पुरुष के हृदय में रावणरूपी राजरोग बढ़ रहा था, जिससे व्याकुल होकर वह दिनोंदिन समस्त सुखोंसे हीन होता जाता था। देवता, सिद्ध और मुनिगण अनेक प्रकार की औषधि करके हार गये; परंतु न तो वह शोकरहित होता था, न कुछ भी चैन पाता था। तब श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से रसवैद्य हनुमानजी ने समुद्र के पार उतर कर और (लङ्कारूपी) शिकारे को ठीक करके राक्षसरूपी बूटियों के रस में लङ्का के सोने और रत्नों को यत्नपूर्वक फूँककर मृगाङ्क (एक प्रकार का रसौषधि विशेष) बना डाला। भगवान विराट पुरुष के अग्नि-मुख में दिव्य भस्म डालते ही राजयक्ष्मा (रावण) जनित महापीड़ा एवं महाताप तत्क्षण शांत होने लगा, जिससे भगवान के कष्ट से दुखी समस्त त्रिलोक के प्राणी सुखी हुए।

लंका-श्मशान में देव सिद्धि— श्मशान जगाने का सिद्धि-कार्य एक महा भयानक साधन है, जिसमें साधक को अनेक विघ्न–बाधाओं का सामना करना पड़ता है। महान साहसी पुरुष ही इस सिद्धि-मार्ग में अग्रसर हो सकता है। सिद्धपीठ-स्थली के मसान पर अमावस्या-पूर्णिमा की अर्धरात्रि में साहसी साधक शव को अर्धभाग भूमि में एवं शेष भाग जल में चित लिटा कर, उसकी छाती पर बैठ कर, काग–बकरे आदि पशुओं की बलि देता है एवं मदिरा-धारा के साथ मंत्र-पुरश्चरण का जप करता है। मंत्र-सिद्धि पर श्मशान की अधीश्वरी महादेवी प्रसन्न हो अभिलषित वर देती हैं। यही श्मशान जगाना है। महासाहसी पवन कुमार ने समुद्र पार कर सिद्ध-पीठ लंका में देवी की प्रसन्नता के लिए श्मशान जगाकर सिद्धि प्राप्त की, जिनके महान साहस से प्रसन्न हो महामायाधीश्वरी सीता देवी ने वायु नन्दन को यथेप्सित अमोघ आशीर्वाद दिया।

मातेश्वरी सीता से बिदाई—बुद्धि-निधि मारुति सीता से अपनी बिदाई की प्रत्यक्ष आज्ञा ग्रहण नहीं करते। वे सारगर्भित शब्दों में कहते हैं, "माता! मुझे कुछ चिह्न दीजिए। सीता इन गूढ़ शब्दों से कुछ संभ्रमित सी हो जाती हैं। इसके निराकरण में वे तुरन्त कहते हैं—"जैसे श्री राघवेन्द्र प्रभु ने मुझे आपके लिए दिया था।" बिदाई की आज्ञा माँगने में भय की आशंका थी कि प्रेमवश शीघ्र मां ने जाने की आज्ञा न दी तो बड़ा असमंजस होगा, साथ ही आज्ञा भंग करते न बन पड़ेगा। अतः विश्वास-प्रतीक में जानकी ने तुरन्त सौभाग्य स्वरूप चूड़ामणि केशपाश से उतार कर हनुमान की करांजली में प्रदान कर दिया। सीता ने कहा कि सर्व प्रथम भोजन कराने (या मुखावलोकन) के समय गुरुवर्य वसिष्ठ की प्रेरणा से श्वसुर ने मुझे यह शिरोरत्न प्रदान किया था। इसे इन्द्र ने चक्रवर्ती राजा को अश्वमेध यज्ञ में भेंट रूप में दिया था। समस्त लोकों में प्रसिद्ध इस दिव्य सौभाग्य-भूषण को श्री राघवेन्द्र-प्रतीक रूप में देखकर मैं सदैव वियोगावस्था में भी नित्य सुख का अनुभव करती रही हूं। उसे ही आज तुम्हें प्रतीक स्वरूप स्वामी को देने के लिये सौंप रही हूँ।" फिर स्वतः श्री प्रभु को प्रणाम करती हुई अपने संदेश में कहती हैं—"तात! मेरा इस प्रकार प्रणाम करते हुए श्री प्रभु से संदेश देना कि प्रभु, आप सभी प्रकार से पूर्णकाम हैं। आप अपने दीन-दयालु बिरद को

स्मरण कर मेरे महान वियोग-संकट को दूर करें। मैं सत्य कहती हूँ कि यदि महीने भर के भीतर नाथ न आये तो फिर मुझे वे जीवित न पायेंगे। रावण के हथियारों से पहले ही मैं अपने शरीर का त्याग कर दूँगी।

इधर वत्स की इस अवर्णनीय दशा से प्रभावित जानकी अंततः हरीश को प्रबोध कर अतीव प्रेम से विदा करते आशीष देती हैं (तिहारोई मन भायो) तुम्हारा मन चाहा ही कार्य होगा। माता के श्री चरणों में मस्तक नमन कर 'करुणा से भरे' (जानकी दशा से), 'क्रोधपूर्ण' (रावण की बातें सुन), 'लज्जापूर्ण' (शत्रु नाश किये बिना लौटने से) और 'भयमुक्त' (प्रभु-आज्ञा बिना लङ्का जला देने से) मारुति मौन रूप से प्रस्थान कर जाते हैं।

मित्र सम्मिलन-जीवन प्रदान—त्रिकूटाचल से छलाँग मारते समय हनुमान लंका से प्रस्थान की सूचना में महाध्वनि से गर्जन करते हैं। उससे वर्त्तमान एवं भविष्य-स्थित सभी निशाचरियों के गर्भ गिर जाते हैं। इस बार मार्ग में कोई बाधा न होने से मारुति मन तथा खगराज की भी गति से परे सदूर आकाश से ही आनन्द-प्रकाशक किलकिला शब्द प्रतीक्षा-रत सारे वानर वीरों को सुनाते हैं। उनके भूमिस्थल पर आने के पूर्व ही—ऋक्षराज सभी वीरों से कहते हैं—वीरो, वह देखो, भानुकुल प्रकाशक मार्तण्ड श्रीराम के प्रताप से हंस हनुमान समस्त शोकांध का नाश कर हृदय-कमल को प्रफुल्लित करते हुए पधार रहे हैं। पुनरागत वीर हनुमद् दर्शन से ही समस्त वीरों ने अपना नवीन जन्म जाना। प्रसन्नवदन, प्रखर तेज पूर्ण सुशोभित रूप में उन्हें देखते ही सभी समझ गये कि "कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा"। अतीवानन्द में विभोर महाबल-शील अंगद, मयंद, नल-नील आदि अपनी बालधि फिराते मुख से अनेकों प्रकार के शब्द निकाल-निकाल तालों के साथ नाचने, कूदने लगे। हनुमान के भूतल पर आते ही कैसा दृश्य उपस्थित हो गया, इसकी एक झाँकी महाकवि तुलसी ने इस प्रकार दी है—

"आये हनुमान प्रान-हेतु, अंकमाल देत
लेत पग धूरि, एक चूमत लंगूल हैं।
एक भूखे जानि आगे आने कंद मूल फल
एक पूजे बाहुबल, तोरि मूल फूल हैं॥

एक बूझैं बार-बार सीय समाचार, कहे
पवन कुमार, भो विगत स्त्रमसूल हैं।
एक कहैं तुलसी सकल सिधि ताके जाके
कृपानाथ सीतानाथ सानुकूल हैं" ॥

प्राणरूप हनुमान को सभी प्रमुख बलशाली वीर अंकमाल (गोदभर आलिंगन) देने लगे। इसके अतिरिक्त कितने ही सुकृतिवान उनकी पद-धूलि मस्तक पर धारण कर रहे थे। कोई लाँगूल चूम रहा था, कोई भूखा समझ उनके सामने कंद-मूल-फल रख रहा था। कोई महावीर के बाहु-बल की पूजा कर रहा था। कुछ लोग सीता का समाचार पूछ रहे थे। हनुमान के दर्शन से अतीव मुदित सभी वीर उन्हें लिए किष्किधा चले। मार्ग में जाम्बवान की विशिष्ट प्रार्थना से लंका का नवीन इतिहास सुनाते रहे। सीता की शील स्नेहमयी-स्वभाव-कथा तथा लङ्का-दाह-जन्य राक्षस-विनाश वार्ता सुनते-सुनते वे सभी क्षणभर में ही किष्किधा-स्थित राज्य के परम रमणीय स्थल मधुबन में आ पहुँचे।

प्रभु कार्य-सिद्धि के आनन्दोपलक्ष में व्रत-निरत भूखे सभी वीरों को अंगद की सम्मति से पवन कुमार ने 'मधुबन' में यथेप्सित-मधु रस एवं फल खाने की आज्ञा दे दी। फिर क्या था ? सारे वानर-भालू वीर नाचते-कूदते हर्षोन्माद से विशाल मधुवन के भीतर कूद पड़े। वहां सभी ने खूब आनन्द मनाया। मधुवन के रक्षाधीश दधिमुख (सुग्रीव के मामा) के अनुचरों ने उन्हें रोका, किन्तु उनकी ढिठाई देखकर भाग खड़े हुए। सहयोगियों के साथ दधिमुख द्वारा वनविध्वंस का समाचार मिलने पर सुग्रीव अतीव हर्षित हो उठते हैं। फिर वे रक्षकाधीश दधिमुख को आज्ञा देते कहते हैं, अंगद ने अपने सहयोगी वीरों के साथ इस समय जो भी कार्य किये हैं उनसे हम प्रसन्न हैं। अतः मेरी प्रतिक्रिया का सन्देश सुनाकर युवराज को शीघ्र यहाँ भेज दो। दधिमुख की विनम्र क्षमा-प्रार्थना पर अंगद अपने समस्त सहयोगियों के साथ किष्किधा प्रस्थान करते हैं।

इधर सुग्रीव विचार करते हैं कि बिना सीता का शुभ समाचार लाये यह साहस नहीं हो सकता कि वन-विध्वंस कर रक्षकों को मारें। निःसन्देह पवन कुमार ने पता लगा लिया है। किसी दूसरे से यह कार्य नहीं हो सकता, कारण उद्योग, बल और प्रज्ञा में वे अतुलनीय हैं। प्रतिष्ठित जाम्बवान जिसके संचालक, महाबली अंगद जिसके

नेता और हनुमान जैसे जहां अधिष्ठाता हों, वहां वह दल कभी अन्याय नहीं कर सकता। निश्चित है कि उन लोगों ने जानकी का पता लगा लिया है; तभी राजकीय उपभोग-वन में आकर साधिकार धृष्टता-पूर्वक वे मधु फल खा रहे हैं। इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि कपि-समाज के साथ अंगद वहाँ आ पहुँचे। सभी वीरों ने एक साथ ही अभिवादन किया। कविराज सुग्रीव सभी से अतीव प्रेम से मिलकर कुशल-समाचार पूछने लगे।

जाम्बवान ने कहा—"कपिराज, आपके पददर्शन से जहां कुशलता है, वहाँ श्रीराम-कृपा से कार्य - सम्पन्न हो गया। नाथ, वास्तव में हनुमान ने यह कार्य सफल कर, समस्त कपि समाज के प्राणों की रक्षा की है। यह सुन सुग्रीव पुनः अतीव हर्ष में मारुति से मिलकर सब के साथ प्रवर्ष गिरि पर स्थित श्री राघवेन्द्र के पास चले।

भगवान श्री राम भद्र सुदूर से ही हनुमदादि वीरों के साथ सुग्रीव को आनन्द-पूर्वक आते देख, कार्य-सफलता की भावना से प्रसन्न हो पर्णकुटी से बाहर निकल आये और शिला पर आ विराजे। साष्टांग प्रणाम करते देख श्री प्रभु ने सभी से अतीव करुणा-प्रीति–युक्त भाव से कुशलादि पूछा। सुग्रीव ने कहा कि आपके श्रीपदकमलों के दर्शन से सब कुशल ही कुशल है। तभी परम ज्ञान वृद्ध जाम्बवान बोले—श्री रघु श्रेष्ठ, जिस पर आप कृपा करते हैं उसको सदैव कल्याण एवं निरंतर कुशल है। हे नाथ, पवन कुमार ने जो अभूतपूर्व कार्य किया है, उसका वर्णन सहस्रमुख शेष के द्वारा भी नहीं हो सकता? इस भावना के साथ जाम्बवान ने पवन तनय के गमन से आगमन तक के सारे चरित श्री रघुपति से कह सुनाये। यह सुनते ही कृपानिधि ने पुनः हनुमान को हर्ष से हृदय में लगाते पूछा— तात! कहो, जानकी किस प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करती हुई वहाँ रह रही है? दोनों ही बातें असम्भव–सी जान पड़ती हैं। मेरे वियोग में तो वे एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती थीं।

जानकी-कुशल-संदेश—भगवान श्री रामभद्र के ये प्रश्न अतीव गूढ़ और मार्मिक थे। जानकी के प्रतिनिधि स्वरूप इस समय उसका समुचित उत्तर हनुमान को ही यहाँ देना है। यह कहा जा सकता है कि भक्त की अगाध प्रीति की इसमें परीक्षा थी। इस प्रश्नोत्तर संदर्भ में सर्व प्रथम यह कह देना अधिक उपयुक्त होगा कि मनु की यह

लोक वाणी—'पितुर्दश गुणा पूज्या माता' को स्मरण रखना है। श्रुति भी यही प्रतिपादन करती है कि पहले मातृ देवो भव और फिर बाद में पितृ देवो भव। इन्हीं लोक-शास्त्र दोनों ही आधारों के पूर्ण प्रतिपालक भगवान श्री राम ने पिता दशरथ के सान्निध्य में यह कहा था कि माता कौशल्या से प्रथम विदाई लेकर आता हूँ तो फिर आपके चरणों में प्रणाम कर वन के लिए प्रस्थान करूँगा। और अपने इसी सिद्धांत का उपदेश उन्होंने लक्ष्मण को भी दिया था। मर्यादा-पुरुषोत्तम के अनन्याश्रयी सेवक एवं धर्मशास्त्रनिधि हनुमान भी परम अनुयायी थे। लोक-जननी अंजना जहाँ पिता से दस गुणा मान्य थीं, वहाँ माता जनक नन्दिनी जानकी शतगुणा ही नहीं, अपितु अनंतानंत गुणा परम प्रिय एवं पूज्यमान थीं। अतः इसी सुदृढ़ मातृ-पदानुरागी स्तर से हनुमान निर्भीकता से मातेश्वरी की जीवन-दशा का वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा कि हे प्रभो, आपके विरह में जानकी की जो दशा हुई है, वह ध्यान देकर सुनिये। जो कुछ भी मैं जानता हूँ, उसे भी पूर्णतया कह सकने में सर्वथा असमर्थ ही हूँ। जिस समय मैंने जाकर जानकी को देखा उस समय वे आपके वियोग में ऐसी व्यथित जान पड़ती थीं मानो वियोग की मूर्ति ही उदास चित्त से बैठी हों। उनके नयन चित्र-से निश्चल, हाथ-पद मानो गढ़े से तथा कर्ण मढ़े हुए से दर्शित हो रहे थे। अतः वे पुकारने पर भी नहीं सुनती थीं। जिह्वा से सतत आपका नाम स्मरण कर रही थीं। वे अशोक वृक्ष तले बैठी अपने शील-व्रत से रक्षित थीं। उनके सान्निध्य में आपकी एकमात्र परम भक्ता त्रिजटा राक्षसी आपके गुणगण के सुमनों से भली भाँति उन्हें पूजती रहती थी। प्रभो, जिस वाटिका में वे निवास कर रही थीं वहाँ के सारे पक्षी; मृग-गणादि उनकी विरहाग्नि से संतप्त हो अपने स्थायी निवास स्थानों को त्याग कर भाग गये थे। उनके प्रखर श्वास-वायु के साथ भूल से भी भेंट हो जाने पर शीतल-मंद-सुगन्ध पवन फिर उस ओर पैर नहीं रखता। मैंने देखा कि इस प्रकार की दशा में वे आपके वियोग में बहुत सी राक्षसियों के साथ अशोक-वृक्ष के नीचे बैठी हुई आपके आगमन की आशा में जीवन काट रही हैं। गूढ़ उत्तर सुन कर प्रभु मौन हो गये। उन्हें मौन देख उनके कर-कमलों में मारुति ने सीता की चूड़ामणि डाल दी। वह देखते ही प्रभु विह्वल हो गये। उसे उन्होंने हृदय से लगा लिया। भाव-विह्वलता के कारण उस समय राम और लक्ष्मण

दोनों ही जानकी की स्मृति में अश्रु-मोचन करने लगे :—

तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सह लक्ष्मणः ।

—वाल्मीकि

उसी भावावस्था में वे हनुमान से बोले कि हे तात, इस चूड़ामणि प्राप्ति पर मुझे प्रतिबिम्बित जानकी-सम्मिलन जैसा सुख हो रहा है । तभी हनुमान ने कहा—नाथ, इसके साथ ही दोनों नयनों में अश्रु भरकर जनक कुमारी ने कुछ प्रार्थनात्मक वचन भी कहे हैं । वह इस प्रकार है—"मेरा कुशल-समाचार राघव से कह कर लक्ष्मण से कहना कि मैंने जो दुर्वचन कहे हैं उन्हें क्षमा कर, जिस तरह भी रघुकुलेश श्री राम मेरा उद्धार करने में समुद्यत हों, वह करो । इस प्रकार लक्ष्मण से क्षमा-याचना के साथ श्री प्रभु-चरण पकड़ कर कहना कि—दीनवन्धु प्रणतारति हरण, मैं मन-कर्म-वचन से आपके चरणों की अनुरागिणी हूँ, किन्तु मैं किस अपराध से त्याग दी गई हूँ ? हाँ ! मैं अपना एक अवगुण मानती या जानती हूँ कि आपसे बिछुड़ते ही प्राण शरीर से क्यों न चले गये । पर नाथ वह अपराध इन नयनों का है, जो प्राण जाने के मार्ग में सतत बाधा डाल रहे हैं । ये दोनों नयन आपके रूप-दर्शन के हित (कामना) से सतत अश्रु की वर्षा करते हैं जिससे यह शरीर विरहाग्नि से जल नहीं पा रहा है ।" कपि ने कहा कि एक-एक पल उन्हें कल्प के समान बीत रहा है । अतः अब शीघ्र लङ्का चल कर अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीत कर जानकी को ले आवें । उन्हें आपके दर्शनों की अत्यधिक लालसा है । वे अपने कमल नयनों से गर्म तपते अश्रुजलों को अपने हृदय पर बराबर डालती रहती हैं । मानों हृदयस्थली पर एक से एक विरह के नये-नये घाव देखकर वे धैर्य पूर्वक उन्हें गर्म जल-धारा से धोती हैं । यद्यपि रात-दिन क्षण-प्रतिक्षण आपके प्रतिबिम्ब का दर्शन करती हैं, तथापि उनके शरीर का दुःसह ताप शांत होने का नाम भी नहीं लेता ।

सीता के असह्य दुःखों को हनुमान की वाणी से सुनकर उनके सभी अंग प्रेम से अतीव पुलकित एवं शिथिल हो गये । तभी आत्मशक्ति को प्रभावित करते हुए हनुमान बोले प्रभो ! इस तुच्छ जातुन-दुष्ट शत्रु रावण को जीतकर, जानकी को ले आना आपके लिए कौन सी बड़ी बात है ? मेरी यह अतिशयोक्ति नहीं है । मैं आपके बल

का नहीं, अपितु एक मात्र प्रताप का प्रत्यक्ष दृश्य लङ्का में देखकर आ रहा हूँ। आपके शत्रु रावण से रक्षित नगर में आपके प्रताप-भय से क्या कहीं श्रृङ्गार की कथा, कुतूहल कथा, गीत वाद्यादि की चर्चा, या मस्त हाथी-घोड़ों की कथा, धनुर्विद्या-शिक्षा आदि की चर्चा होती है? इन सब का तो मारे डर के, कहीं नाम भी नहीं है।

एकैवास्ति मिथः पलायनं कथा त्वद्भीत रक्षः यते।
देव श्री रघुनाथस्य नगर स्वप्नेऽपि नान्या कथा॥

—हनुमन्नाटकम्

वहाँ तो चारो ओर नगर में केवल एक कथा हो रही है। वह है परस्पर लङ्का से भाग जाने की कथा, अन्यथा दूसरी चर्चा तो वहाँ स्वप्न में भी नहीं सुनाई पड़ती। अतः आपके वहाँ पहुँचते ही विजय तो पूर्ण निश्चित है।

इस प्रकार जानकी के प्रति निष्ठित हनुमान के ओजस्वी विचारों से भगवान् पूर्ण आश्वस्त एवं प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा कि वास्तव में तुम्हारे समान मेरा उपकारी दूसरा कोई भी नहीं है। सुग्रीव की विपत्ति में सहायक बन्धु रूप से तुमने उन्हें राजपद पर प्रतिष्ठित कराया और यहाँ मेरे अनन्य सेवक भाव में पूर्ण निष्ठित हो जानकी-शोध के द्वारा महान उपकार किया। तुम्हारे इस उपकार का मैं प्रत्युपकार नहीं देख पाता। मैं तुम्हारा प्रत्युपकार भी क्या करूँ? मेरा मन इसका चिन्तन भी नहीं करता। प्रत्युपकार का विचार करना भी मानो यह मनाना है कि जिसने हमारे साथ उपकार किया है वह भी कभी ऐसी विपत्ति में पड़े, ज़िससे हम बदला चुका दें। मेरी अपनी धारणा तो यह है कि यदि मैं प्रत्यक्षतः तुम्हारे किये एक ही उपकार के निमित्त अपने प्राण का दान भी कर दूँ, तो भी तुम्हारे शेष उपकारों का मैं ऋणी रहूँगा :—

एकं कस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे।
प्रत्यर्थं क्रियमाणस्य शेषस्य ऋणिनो वयम्॥

—हनुमन्नाटकम्

"सुनु सुत! तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि विचार मन माहीं॥"

—रामचरित मानस

मैंने मन में भली-भाँति विचार कर देख लिया कि मैं तुम से उऋण नहीं हो सकता। प्रभु की वाणी सुनते ही वे गद्गद् हो गये। उन्होंने अपने को धन्य माना और प्रभु की कृपा के लिए प्रार्थना करने लगे। उन्होंने व्याकुलता-पूर्वक कहा कि मैं आपका एक मात्र चरणाश्रयी पुत्र ही रहना चाहता हूँ। इस अधिकार से मुझे अब अलग न करें। प्रभो! आप वेद-धर्म-प्रतिपालक हैं। क्या पिता भी कहीं पुत्र का रिनियाँ हो सकता है? अब तक तो लोग शास्त्र-विहित यही बात जानते हैं कि पुत्र ही पितृऋणी होता है। अतः मुझ जैसे संबोधित पुत्र के प्रति आपके ऋणी होने की बात उठती ही कहाँ है? यह कहते हुए हनुमान श्री प्रभु के चरणों पर लोट गये। प्रभु कपि को उठा कर अपने हृदय से लगाते हुए हाथ पकड़कर अपने समीप स्फटिक शिला पर बैठाल लेते हैं। फिर वे पूछते हैं—कपि, यह तो बताओ कि सारे देवताओं से भी अजेय एवं राक्षसाधीश रावण से पालित उसकी उपस्थिति में ही ऐसी लंका नामक महापुरी को तुमने कैसे भस्म कर डाला? प्रभु को प्रसन्नात्म जान हनुमान अभिमान-रहित भाव से बोले :—

निःश्वासेनैव सीताया राजन् कोपानलेन ते।
दग्धा पूर्णा तु सा लंका निमित्तमात्रम भवत्कपिः॥

—हनुमन्नाटकम्

लङ्का-दहन का कारण तो सीता का प्रबल निःश्वास और आपकी क्रोधाग्नि है, जिसकी संयुक्तता ने अप्रत्यक्ष रूप से लंका को पहले ही जला डाला है। वहाँ कपि तो एक निमित्त मात्र हुआ। मैं तो एक साधारण शाखा मृग हूं। शाखा मृग बानर जाति की यही बड़ी बहादुरी है कि एक डाल से दूसरी डाल पर कूद जाय।

साखामृग कै बड़ि मनुसाई,
साखा ते साखा पर जाई।

हनुमान अपने शरीर का माप भगवान को दिखाते हुए कहते हैं कि—

अष्टांगुल मयः कायः पुच्छो मे द्वादशांगुलः।
बाहू मे पश्य भो नाथ कथं रत्नाकरं रेत्॥

हे नाथ, देखिये, आठ अंगुल का मेरा शरीर है और बारह अंगुल की पुच्छ और मेरी भुजाओं को भी देख लीजिये। यह शरीर शतयोजन रत्नाकर समुद्र को कैसे पार कर

सकता है ? वास्तव में समुद्रलंघन, स्वर्णमयी लङ्का-महापुरी-दहन, निशाचर गणों का बध अशोक वन उजाड़ने आदि का समस्त कार्य पूर्णतया सम्पन्न - कर्त्ता तो आपका महान प्रताप ही है। इसमें नाम मात्र की भी मेरी कोई प्रभुता नहीं है। प्रभो ! जिस पर आपकी सानुकूलता है उसे संसार में कुछ भी कठिन नहीं है। तुच्छ व्यक्ति भी आपके प्रभाव से असम्भव को भी सम्भव बना सकता है।

प्रभु-पद में दृढ़ प्रेम की अनुभावना से हनुमान याचना करते हुए बोले—नाथ, आप मुझे अपनी कृपा से अतीव सुखदायिनी अविचल अनपायनी भक्ति दीजिए। कपि की परम सरल वाणी से प्रसन्न प्रभु ने उसी समय एवमस्तु शब्द से उन्हें अभिलषित फल प्रदान कर दिया। सब जय-जयकार करने लगे। हनुमान सभी के परम प्रिय प्राणदाता थे। इसके साथ ही नभस्थित समस्त देवगण भी अतीवोत्साह से प्रसन्न हो जयकार करने लगे। सब ने मिलकर लङ्का पर आक्रमण करने का निश्चय किया। शुभ मुहूर्त्त निकाला गया। विजया दशमी निकट थी। पंडितों की सम्मति से शुभ मुहूर्त्त जानकर सुग्रीव ने शीघ्र ससैन्य प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी। उसी समय देवगण भी इस कौतुकी लीला से हर्षित हो आकाश से पुष्पों की विपुल वर्षा करने लगे। भगवान की अनुमति पाते ही कपिपति सुग्रीव ने तुरत समस्त वानर - भालुओं के सेनापतियों को बुलाया। अनेक रंग-वेशों तथा अतुल बलशाली सेना-यूथों के साथ अनन्त संख्याओं में देखते ही देखते वहाँ उपस्थित हो श्रीपद कमलों में अभिवादन करते सारे सैनिक एकत्र हो आनन्द से अति हर्षित हो सिंह-गर्जन करने लगे। भगवान् श्री राम ने सारी वानरी सेना पर कृपादृष्टि फेरी :—

राम कृपा बल पाइ कपिंदा।
भये पक्ष जुत मनहुँ गिरिंदा॥

लंका-विजय-यात्रा—भगवान श्री राम अतीव हर्ष के साथ आश्विन शुक्ल विजय-दशमी को रावण विजय के लिए प्रस्थान करते हैं। उस समय अनेकों शुभ सगुन होते हैं। नेत्र फड़कने पर भगवान कहते हैं कि मेरे इस दाहिने नयन का ऊपरी भाग फड़क रहा है। यह शुभ सूचक है। इसी प्रकार लङ्का में वैदेही की वाम भुजा फड़कने लगी :—

उपरिष्टादि नयनं स्फुरमाणमिमं ।
अकस्मादेव वैदेह्या वाहुरेक: प्रकंपते ।।

ठीक विपरीत विनाश सूचक अपशकुन रावण को होने लगते हैं। अत: जानकी एवं रावण दोनों ही अपनी-अपनी भावनाओं से प्रभु के आगमन होने का अनुभव करने लगते हैं।

सुव्यवस्थित, सुवुद्धि आयुध, गिरि-विटप धारी वानर, भालुओं के अपार सेनाधिपतियों एवं उनके सेनायूथों का वर्णन करने की शक्ति ही किस में थी? सभी को मार्ग अतिक्रमण की पूर्ण स्वतंत्रता थी, कारण एक साथ सभी का चल सकना सर्वथा असंभव ही था। जिस से आकाश और भूमि दोनों ही मार्गों से इच्छानुसार सेना चल रही थी। भगवान श्री राम को हनुमान उनकी इच्छा से अपने कन्धे पर विराजमान कराये आकाश मार्ग से चल रहे थे। इसी प्रकार लक्ष्मण अंगद के स्कन्ध पर बैठे प्रभु के पीछे-पीछे चल रहे थे :—

यास्याभि वलग्ध्येऽहं वलोध मभि हर्षयन् ।
अधिरुह्य हनूमंत मैरावत मिवेश्वर: ।।
अंगदे नैष संयातु लक्ष्मणश्चांत कोपम: ।।

—वाल्मीकि

अपार रीछ-वानर-कटकों के भयङ्कर भार से भूमि डगमगाने लगी तथा दिग्गज चिंघाड़ने लगे। पर्वत चंचल हो गये। समुद्र में खलबली मच गई। सूर्य, चन्द्र, देवाधिगण, मुनि, नाग, किन्नर आदि के मन में अतीव हर्ष हो रहा था कि अब सब के दु:ख दूर होने जा रहे हैं। महाविकट वानर, योद्धा गण दाँत कटकटाते करोड़ों के करोड़ों जूथो में मिलकर दौड़ते हुए हर्षातिरेक में कभी कोसलनाथ के गुण-गान करते हैं तो कभी बीच-बीच में प्रबल, प्रतापवान राजा राम की जय-जय करते जाते हैं। इस प्रकार भगवान श्री राम ससैन्य समुद्र तट पर पहुँच गये। वहाँ वीर वानर-भालु सारे वनों में घूम-घूम कर यथेष्ट फल खाने लगे। सभी कल्पद्रुम श्री प्रभु की सेवा में सतत अनुरक्त रहते थे। जहाँ वे जाते थे वहीं उन्हें फल-फूल यथेष्ट परिमाण में मिलते थे। वे जिस ओर जब चितवन फेरते थे तभी ऋतु के बिना ही सारे तरु फलों से फलीभूत हो जाते थे एवं शिलाओं से जल के

झरने प्रबल रूप में बहने लगते थे :—

विनहिं ऋतु तरुवर फरैं, सिला द्रवहिं जल जोर ।
राम-लखन सिय करि कृपा जब चितवहिं जेहिं ओर ॥
—दोहावली

कालमुखी लंका में महाचिन्ता की व्याधि—लङ्का-दहन द्वारा हनुमान ने राम-प्रताप प्रत्यक्ष कर दिखाया था । रावण ने अपने साथ ही सारे राष्ट्र को काल के मुख में डाल कर महाचिंता की व्याधि से जनजीवन को हताश और शक्ति-विहीन तथा व्याकुल बना दिया था । इसका उपचार सर्वथा दुःसाध्य ही था । लङ्का दाह के भयानक विनाश एवं हनुमान के अप्रतिम महाप्रताप से अति प्रभावित लङ्का के साधारण जनों से लेकर बड़े-बड़े महायोद्धा तक चिंताग्रस्त हो गये थे । हनुमान के जाने के बाद से ही नित्य-यत्र तत्र उल्कापात आरम्भ हो गया था । सभी नगर वासी बाजार, मार्ग, घर, नदी-समुद्र घाटी पर यही चर्चा करते रहते थे कि रावण अपने मंत्रि-मंडल के साथ अब बारह बाट जायगा । विनाश के १२ बाट हैं :—

मोहो दैन्यं भयं ह्रासो हानिग्लानिः क्षुधा तृषा ।
मृत्युः क्षोभो वृथाऽकीर्ति र्बाटा ह्येतेहि द्वादश ॥

इस प्रकार—समुझि तुलसीस कपि कर्म घर घर घेरु विकल सुनि सकल पयोधि बांध्यो ।
बसत गढ़ लंक लंकेश नायक अछत लंक नहि खात कोअ भात रांध्यो ॥
—कवितावली

लङ्का में भगवान श्री राम के द्वारा मारीच, सुबाहु, खर, त्रिशिर, दूषण, बालि आदि के एक बाण से ही मारे जाने की कीर्ति-चर्चा चल रही थी । तभी समाचार मिलता है कि समुद्र पर पुल बाँध कर समस्त वानरी सेना के साथ लङ्का में आकर सुबेल गिरि पर राम ने डेरा डाल दिया है । इस पर सारे पुरवासी इतने व्याकुल हो जाते हैं कि लङ्का जैसे अजेय गढ़ में बसते एवं लंकेश नायक रावण के रहते हुए भी वे राम प्रताप से संत्रस्त और किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं ।

वीर योद्धा सचिवों के विचार—लङ्का दहन एवं हनुमान के अतुल पराक्रम दर्शन से ही देव-विजयी महाभिमानी योद्धासचिवों के भी भलीभाँति उत्साह लुप्त हो चुके थे :—

लंक दाहु देखे, न उछाहु रह्यो काहून को
कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपिहैं।
बाँचिहैं न पाछे त्रिपुरारिहू मुरारिहू के
को है रणरारि को जो कोशलेश कोपिहै ॥

—कवितावली

आपस में सभी विचार करते कहते हैं—भाई, अब देर नहीं है। महाविकराल विशाल शरीरधारी अतुल बलशाली भालु-वानर वीर बड़े-बड़े पहाड़ों की शिलाओं से समुद्र को पार कर उस राह से लङ्का आनेवाले ही हैं। फिर वे विश्व प्रतापी तेजवान मंडलीक रावण की सारी लीक मिटा देंगे। मंत्रिमंडल में विशिष्टगण अपने पद रोपकर कहने लगे—मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि जिस समय रण में कोशलेश कोपकर बाणों की वर्षा करने लगेंगे उस समय त्रिपुरारि भी आकर राक्षस-समाज की रक्षा नहीं कर सकेंगे। यह बात ध्रुव समझें। विभीषण द्वारा प्रजा हितैषी विचारपूर्ण परामर्श देने पर सभा से ही नहीं अपितु, लङ्का से उन्हें अपमान के साथ निकाल देने के पूर्व राक्षसेन्द्र रावण की यह हठ धर्मी वाणी सभी को विदित हो गई है—जनक के कुल में उत्पन्न हुई जानकी तथा मधुदैत्य के नाशक, विष्णु के अवतार राम दोनों को ही मैं भली भाँति जानता हूँ। इसके अतिरिक्त यह रावण अपना बध भी उनके हाथों होना निश्चित मानता है। किन्तु जहाँ एक मुख वाले को भी अपनी बातों का हठ होता है वहाँ मैं तो दश मुख वाला हूँ। अतः सब कुछ जानते हुए भी मैं सीता को समर्पित नहीं करूँगा। यही मेरी प्रतिज्ञा है :—

जानामि सीतां जनक प्रसूतां जानामि रामं मधुसूदनं च।
बधं च जानामि निजं दशास्य स्तथापि सीतां न समर्पयामि ॥

—हनुमन्नाटकम्

मयतनया साम्राज्ञी की महाचिन्ता—मन्दोदरी मात्र परम सुन्दरी नहीं, अपितु वेद, धर्म शास्त्रादि की ज्ञाता, महा विदुषी, चतुर राजनीतिज्ञ एवं राष्ट्र की परमहित-कारिणी, गुप्त संचालिका थी। वह विभीषण की नीति की पूर्ण पोषक तथा सहयोगिनी थी। रावण उसके अदम्य गुणों से हीं प्रभावित एवं पराभूत था। वह राजरानी के

अतर्क्य विचारों के सम्मुख इस कठिन परिस्थिति में भी हँसकर या मौन होकर उसके वितीक्ष्ण शब्दों को सुन लेता था। लङ्कादाह के बाद भगवान श्री राम की एवं हनुमान की अनन्त शक्तियों के संदर्भ में घर-घर में चिन्ता पूर्वक चर्चा चल रही थी। रावण को अपने देश के विनाश की न तो परवाह थी और न चिन्ता थी। किन्तु मन्दोदरी के हृदय में स्वसुखशांति से अधिक प्रजा के प्रति चिन्ता थी। इसलिए वह प्रजा के गुप्त से गुप्त मनोभाव जानने में ध्यान देती थी। वह समझती थी कि भूतकाल में प्राप्त सारे विजय पराक्रम का श्रेय केवल रावण का नहीं, अपितु प्रजा जन के समवेत प्रेमबल का प्रतीक था। किन्तु आज सीतापहरण एवं हठ धर्मिता से सब कुछ छिन्न-भिन्न हो गया है। जहाँ प्रजा-सेना का मनोबल टूटा हे वहाँ अकेला राष्ट्रनायक कुछ भी नहीं कर सकता। देश का आत्मबल प्रधान माना गया है। वह प्रत्यक्ष अनुभव कर रही थी कि श्री राम-दूत हनुमान के कृत कर्मों के स्मरण से निशाचरियों के नित्यशः गर्भ गिरते जा रहे हैं, जिसमें प्रजा का समूल नाश है। राष्ट्रनायिका होने के कारण उससे अपने देश का समूल नाश होने का दृश्य नहीं देखा जाता था। इसी से वह अहर्निश अत्यधिक चिंतित होकर विनाशपथगामी पति को बराबर नीति का हितोपदेश देने में संलग्न थी। युद्धारम्भ से पूर्व अंगद से धर्षित होने पर संध्याकाल में अनेकों मार्मिक उद्धरणों से सचेत करती वह दशमुख से बहुत कुछ कह जाती है। तुलसी के शब्दों में वह कहती है:—

पालिबे को कपि भालु चमू यम काल करालहू को पहरी है।
लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे को कहरी है॥
तीतर तोम तमीचर सेन समीर को सूनू बड़ो बहरी है।
नाथ भलो रघुनाथ मिले रजनीचर से न हिये हहरी है॥

—कवितावली

वह रावण को सदा कहती थी कि कुमति छोड़ दो। देश का तथा तुम्हारे साथ सारे परिवार की भलाई अब कोशलनाथ से मिलने में ही है। कैलाश उठानेवाले विश्व प्रशंसनीय वीर होकर भी जब तुम रामानुज लक्ष्मण के द्वारा आश्रम के चारों ओर एक छोटी-सी रेखा को नहीं ल घ सके, फिर उनके बड़े भाई रघुनाथ से युद्ध करने की बात कहाँ से सोच रहे हो? रावण प्रत्युत्तर में एक शब्द भी नहीं बोल सका। बस

एकमात्र मन्दोदरी द्वारा कथित 'लङ्का की सारी सेना हृदय से भयभीत हो गई है' इन शब्दों से वह अत्यधिक क्षुब्ध हो, यथा समय दरबार में आ—

रोष्यो रन रावन, बोलाए वीर बानदूत ।
जानत जे रीति सब संजुग समाज की ॥

रणनीति कुशल विश्वजयी सेनाधिपतियों को शीघ्र चतुरंगिणी सेना के साथ वानर-भालुओं की कटक से लोहा लेने की आज्ञा दे देता है। जिनके मन में वीरता का भारी गुमान है, जिनके शरीर रण में भय से कभी ढीले नहीं पड़े ऐसे नवयुवक छैल-छबीले निशाचर वीर, हिरन के समान तेज दौड़नेवाले रंग-बिरंग घोड़ों पर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो बड़े गर्व के साथ रण भेरी बजाते लङ्का-गढ़ से बाहर चले ।

भारी गुमान जिन्हैं मन में कबहूँ न भये रन में तनु ढीले ।
तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले ॥

—कवितावली

वानर वीरों की रण क्रीड़ा—अंगद द्वारा प्रेषित शांति प्रस्ताव की अवहेलना होने पर भगवान के सान्निध्य में सुग्रीव-विभीषण एवं जाम्बवन्त ने (चारों गढ़ द्वार के लिए) कपि-कटक के चार व्यूह रचकर चारों दिशाओं में नियत कर दिये। पश्चिम में चक्राव्यूह, दक्षिण में नराव्यूह, पूर्व में संडाव्यूह और उत्तर में महाप्रबल गरुड़ाव्यूह रूप में सेना सुव्य-स्थित की गई। यह सुदृढ़ व्यवस्था लङ्का से वापस आये अंगद द्वारा गढ़ की रचना-समाचार से एवं विभीषण के विचार से की गयी। इस सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि बाल्मीकि, अध्यात्म और हनुमन्नाटकादि कई ग्रन्थों में अंगद से लङ्का-गढ़ का समाचार पूछा जाना नहीं पाया जाता। इन सभी में हनुमान के ही द्वारा सारी गुप्त बातें जानने का वर्णन प्राप्त होता है। भगवान श्री राम ने उनसे वहाँ पूछा है कि दुर्गम लङ्का में कितने दुर्ग, कितनी सेना, कितने द्वार, कितने गुप्त रक्षा यन्त्र आदि हैं। चारों प्रकार के दुर्गों का वर्णन करने के बाद अन्त में हनुमान ने यह भी कह दिया है कि प्रभो, "शतघ्न्यः संक्रमाश्चैव नाशिता मे रघूत्तम" (जितने भी दुर्गम मार्ग एवं तोपें आदि थीं उन सब को मैं तोड़-फोड़कर आया हूँ)। ये विचार प्रवर्पण गिरि पर ही प्रकट हो चुके हैं। ये प्रश्न अंगद से पूछे जाने के कारण गूढ़ार्थक हैं। जान पड़ता है जो

अंगद को लङ्का भेजें जाने के पहले हीं विभीषण ने यह बता दिया था कि हमारे मन्त्री पक्षी रूप से शत्रु सेना में जाकर रावण द्वारा प्रधान गढ़ों की सारी विहित सुव्यवस्था विधान का समाचार इस प्रकार ले आवें। वैसे उनके द्वारा प्रेषित चरों ने भी सारी सूचनाएँ ला दी थीं :—

भूत्वाशकुनयः सर्वे प्रविष्टाश्च रिपोर्बलम् ।
विधानं विहितं यच्चतद् दृष्ट्वा समुपस्थिता ॥

पूर्व द्वार पर प्रहस्त, दक्षिण द्वार पर महावीर महार्श्व और महोदर, पश्चिम द्वार पर अस्त्र-शस्त्रधारी कुशल वीरों के साथ इन्द्रजीत और उत्तर द्वार पर स्वयं रावण स्थित था। मध्य लङ्का में विरूपाक्ष सभी के साथ चतुरंगिणी सेना लेकर अवस्थित था। विभीषण के इसी प्राप्त समाचार के आधार पर यहाँ भी पूर्ण द्वार पर प्रहस्त के समक्ष नील, दक्षिण में महापर्श्व महोदर के समक्ष अंगद, पश्चिम द्वार पर मेघनाद के समक्ष हनुमान और उत्तर में रावण के समक्ष लक्ष्मण के साथ श्री राघवेन्द्र खड़े हो गये। इसके अतिरिक्त मध्य स्थली में सारी विशिष्ट सेना के लिए सुग्रीव, विभीषण और जाम्बवान ये तीनों ही प्रधान संरक्षक बनाये गये। सभी भगवान की आज्ञा की राह देख रहे थे। राम उभयात्मक दृष्टि से जिस गर्व से राक्षस सेना को आते देख रहे थे उसी भाँति अपने बानर-भालु वीरों के मन में उठतीं हुई प्रबल युयुत्साकी लहरों का भी वे अनुमान कर रहे थे। इसी समय अकस्मात् श्री प्रभु के आज्ञात्मक इंगित से हनुमान हृदय में ऐसे प्रसन्न हुए मानो शिकारीने वाज पक्षी के सिर पर बंधी-ढकने की टोपी को खोल दिया हो और वाज सन्मुख शिकार को देखकर प्रसन्न हो जाय। उनके साथ ही सुमेरु पर्वत-सम विशाल शरीरधारी रीछ-वानरों का समूह राक्षसी सेना के संहार में संलग्न हो गया। रीछ-वानर लोग शिला-खंडों, वृक्षों और नख-दन्त के द्वारा ही राक्षसों का संहार कर रहे थे। उस समय महा-वीर हनुमान क्रीड़ा-निरत सिंह की भाँति कूद-फाँद कर सहज झपेट द्वारा हाँक दे-देकर छटे हुए बड़े-बड़े गुमानी गणनीय शस्त्रधारी राक्षस-योद्धाओं को चुन-चुन कर भूमि पर पटकने लगे।

अगणित बलवीर-रणधीर निशाचर बढ़ते हुए वानर-भालु वीरों को देख किले के कँगूरों से उत्तेजक बाजा बजाते अस्त्र शस्त्रों के प्रहार के साथ रावण की दुहाई देते पर्वत-

शिलाओं को नीचे गिराने लगे। वानर वीर गण सहज में ही उछलकर उन्हें अपने हाथों में थाम्ह कर फिर लौटाकर ऊपर फेंकने लगे। ऐसे समय में प्रबल वानरी सेना के साथ हनुमान राजा राम के जय-जयकार से छलाँग मारते, दुर्घट मार्गों की भी परवाह न करते और पर्वतों को हाथ से तोड़ते हुए मार्ग बना लेते थे। आनन्द में ही फिर वे एक-एक राक्षस को पकड़ कर आकाश में उछाल कर भूमि पर गिरा देते और उन्हीं पर कूद पड़ते थे। उनके असह्य भार से उतनी ऊँचाई से पथरीली, कठोर भूमि पर गिरने से वे राक्षस वीर टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे। वानर भालुओं के इस भयानक दृश्य से सारे नगर में हाहाकार मच गया। बालक और अबला-वृन्द एक दूसरे को पकड़कर भय से पीड़ित हो आर्तनाद करने लगे :—

इतीव सर्वा रजनीचर स्त्रियः परस्परं संपरिरम्य बाहुभिः।
विषेदुरार्तातित भयाभिः पीड़िता विनेदु रुच्चैश्चतदा सुदारुणम् ॥

—वाल्मीकि

श्री रामानुयायी वीरों को पहले युद्ध में आरम्भ में ही विजय मिली। यह स्वाभाविक ही था :—

रामतेजः समाविश्य वानराः बलिनोऽभवन्।
राम शक्ति विहीनाना मेवं शक्तिः कुतो भवेत् ॥

समस्त छोटे से बड़े वानर-भालु वीरों में अपने स्वाभाविक बल शक्ति के साथ ही अदम्य उत्साह भर आया था। उधर रावण अपनी सेना को उत्साहित करना छोड़कर आतंकित कर रहा था। उसने घोषणा कर रखी थी कि रण में न जानेवालों को और रण से भागनेवालों को मैं स्वयं मार डालूँगा। मेरे मन्त्री, बांधव तथा मेरे हित की इच्छा करनेवाले सभी शूरवीर मेरी आज्ञानुसार शीघ्रता से युद्ध के लिए रण में जाँय। जो प्राण-रक्षा भय से युद्ध में नहीं जायेंगे या जो रण-विमुख हो, भाग कर आयेंगे ऐसे सभी को आज्ञा की अवहेलना के अपराध में मैं स्वयं प्राण दण्ड दूँगा :—

मंत्रिणो बांधवाः शूरा ये च मत्प्रिय कांक्षिणः।
सर्वे गच्छंतु युद्धायत्वरितं मम शासनात् ॥

ये न गच्छन्ति युद्धाय भीरवः प्राण विप्लवात् ।
तान्ह निष्याम्यहं सर्वान् मच्छासन पराङ्मुखान ॥

—अध्यात्म रामायण

लङ्का का पश्चिम द्वार अभेद्य था । वहाँ स्वयं इन्द्रजीत काल के समान खड़ा था । उस द्वार के टूटते ही राक्षसी सेना का नैतिक बल लुप्त हो जाता । यह सोचकर और अपना दल लेकर हनुमान प्रबल काल के समान गर्जन कर तुरन्त पर्वत शिला हाथ में लिये उछलकर लङ्का के पश्चिमवर्ती गढ़ के ऊपर पहुँच गये । दौड़कर उन्होंने पहले पर्वत-प्रहार से मेघनाद के रथ को चूर-चूर कर सारथी को मार डाला । फिर रथ से बाहर निकलते ही मेघनाद की छाती पर लात मार कर उसे मूर्च्छित कर, पूर्व का बदला लेते हुए पश्चिम द्वार तोड़ दिया । इस प्रकार उन्होंने अपने दल को विजयश्री दिला दी । उधर दूसरा सारथी मेघनाद को अतीव व्याकुल देख, तुरन्त अन्य रथ में डाल कर घर ले गया । इस प्रकार प्रथम-युद्ध की विश्रान्ति हुई ।

दो कपि महावीरों की लीला—वायु-कुमार दक्षिण द्वार-विजय के बाद जैसे ही छलाँग मार कर रावण-भवन पर पहुँचते हैं, वैसे ही बालि कुमार भी उन्हें अकेले गये जान वहाँ आ पहुँचते हैं । युगल वीर कोशलाधीश की जय-ध्वनि के साथ ही कलश-सहित महल को धक्का देकर गिरा देते हैं । इस दृश्य से निशाचरराज भयभीत हो उठता है । राजरानियाँ दोनों ही प्रसिद्ध उत्पाती कपि वीरों को देख भय, शोक और पश्चात्ताप से अतीव व्याकुल होकर छाती पीटने लगती हैं । थोड़ी देर बाद दोनों क्रीड़ा-विनोदी एक दूसरी ही लीला आरम्भ कर देते हैं । ध्वस्त महल के स्वर्ण खम्भों को लेकर उन्होंने आपस में निर्णय किया कि अब उत्पात-लीला आरम्भ की जाय । स्वर्ण-स्तम्भों के साथ शत्रु-सेना के बीच कूद कर दोनों वीर शत्रु-मर्दन करने लगे । किसी को लातों से, किसी को थप्पड़ों द्वारा ताड़ित करते कहते जाते थे—"भजहु न रामहि सो फल तेहू" । कभी-कभी निशाचरों को दूसरे के साथ रगड़कर मल देते थे । फिर उसके मर जाने पर, सिर को धड़ से मरोड़ते फेंकने लग जाते थे, जो रावण के आगे गिरकर ऐसे फूटते थे, जैसे दही के बड़े घड़े फूटे हों । जहाँ कहीं बड़े-बड़े महामुखियों को पाते जाते थे, दोनों ही वीर उसके पैर पकड़-पकड़ कर श्री प्रभु के सामने फेंकते जाते

थे। विभीषण द्वारा उन सत्रों के नाम बताये जाने पर भगवान श्री राम उन्हें भी अपना वैकुण्ठ धाम देते थे।

जिस दिव्य अलभ्य गति की याचना योगी लोग करते हैं, वही खल, ब्राह्मण-मांस-भोजी राक्षसगण सहज में प्राप्त कर रहे थे। पार्वती की इस महान आशंका पर भगवान सदाशिव कहते हैं—उमा, करुणानिधि भगवान श्री राम का चित्त अतीव कोमल है। ये निशाचर गण वैर-भाव से भी सतत मुझे स्मरण करते रहते हैं, ऐसा हृदय में विचार कर वे उन्हें सर्वोत्तम परमागति देते हैं—भवानी, तुम्हीं कहो भला ऐसे कृपालु कौन हैं ? दोनों ही कपि वीर संप्रति लङ्का में ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे दो मन्दराचल समुद्र-मन्थन कर रहे हों। बाहुवल से शत्रु-सेना का दलन कर, सन्ध्या होने का समय जान, दोनों ही वीर भयानक लीला सम्पन्न कर, गढ़ से बाहर कूदकर श्री प्रभु चरणों में प्रणाम करते हैं दोनों को आनन्द-स्वस्थ देख श्री प्रभु ने अपनी कृपामयी सुधा-दृष्टि से ही उन्हें श्रम रहित और परम सुखी बना दिया।

लक्ष्मण के प्राण-रक्षक—मेघनाद के द्वारा वीर-घातिनी शक्ति से मूर्च्छित वीर लक्ष्मण के रण से लाये जाने पर भगवान श्री राम हृदय-विदारक शोक प्रकट करने लगे। वह दृश्य अतीव मार्मिक था। पवन कुमार आवेश में आकर श्री राम से बोले कि इस समय यदि मुझे आज्ञा मिले तो मैं चन्द्र को निचोड़ कर उससे अमृत लाकर ही आपको सिर नमाऊँ। यदि इससे भी काम नहीं हो तो 'भुवन कोश' को फोड़ कर सूर्य को बाहर निकाल दूँ और उस छिद्र पर शीघ्र ही राहु को तवेरूप में रखकर उसे बन्द कर दूँ, जिससे सूर्य के उदय होने का भय ही दूर हो जाय। यही नहीं, मैं देव-वैद्य-अश्विनी कुमार को यहाँ ले आऊँ ? नीच मृत्यु को मूषक की भाँति पटक कर सभी के मरने का भय ही सदा के लिए काट दूँ ? प्रभो, आपकी कृपा से मैं इन सारे कार्यों को क्षण मात्र में ही पूर्ण कर दूँगा। श्री राम धैर्य धारण कर प्रशंसात्मक वाणी में बोले—"वायु नन्दन, तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य है। वास्तव में तुम यह सभी कुछ करने में पूर्ण समर्थ हो, किन्तु इस समय एक वैद्य की आवश्यकता है। इस पर तुरन्त जाम्बवान ने कहा कि पूर्ण कार्य-कुशल राजवैद्य सुषेण यहाँ ही लङ्का में रहते हैं। उन्हें ले आने के लिए किसी को भेजें। रघुवीर ने वायुनन्दन को आज्ञा दी। उन्होंने कहा कि अभी

ही तुम वैद्य सुषेण को यहाँ ले आओ। यद्यपि वे लङ्कापति के अनुचर हैं, तथापि वे भिषक मेरा अकल्याण न सोच सत्य परामर्श देंगे। मुझे ऐसा पूर्ण विश्वास है। प्रभु की आज्ञा से पल मात्र में हनुमान लघु रूप से लङ्का में जा, पलंग पर शयनस्थ वैद्य को देख भवन समेत ही उन्हें उठा ले आये :—

वैद्यं सुषेण मधुनैव तदानय त्वं लंका पतेरनु चरोऽपि यतो भिषक्सः।
नैवान्यथा वदति राम गिरा हनुमान-पर्यंक सुप्त मचिरेण तमानिनाय॥

वैद्यश्रेष्ठ सुषेण से करुणार्द्र रघुकुलेश ने उपचार पूछा। उन्होंने कहा कि लक्ष्मण के शरीर में इस समय मृत्यु के कोई लक्षण नहीं हैं। हृदयगति के साथ श्वास भी कार्यरत है। मात्र मूर्च्छा प्रधान है। शीघ्र उपचार के लिए सूर्योदय के पूर्व ही द्रोणाचल पर स्थित चन्द्र कांति से सिंचित चार प्रकार की बूटियों को मंगा लिया जाय। वे हैं मृत संजीवनी (मृत को जिलाने वाली), विशल्यकरिणी (अंग-व्रण-नाशकर्त्री) सुवर्ण-करिणी (घावों से हुई विवर्णता को दूर कर शीघ्र सुन्दर अङ्ग बना देने वाली) तथा संधान करणी (घावों को शीघ्र भर देने वाली)। ये औषधियाँ प्राप्त हो जाँय तो वीर लक्ष्मण के शीघ्र स्वस्थ हो जाने में कोई आशंका नहीं है। बूटियों का वह स्थान यहाँ से साठ लाख योजन सुदूर है। कोई महान् गतिमान वीर आपकी सेना में हो तो वही इस महौषधि को सूचित समयावधि में लाकर कार्य को सफल बना सकेगा।

भगवान श्री राघवेन्द्र जानते हैं कि इस महान् कार्य को हनुमान के अतिरिक्त कोई भी सम्पन्न करने में समर्थ नहीं है। तथापि अपनी प्रकृति के अनुसार सभी वानर वीरों के मान की दृष्टि से उनसे परामर्श लिया। उन्होंने प्रकट में सभी से पूछा। उत्तर में सभी प्रधान कपि वीरों ने अपने-अपने जाने-आने की समयावधि का स्पष्ट उल्लेख किया। नल तीन रात, मैंद-द्विविद दो रात, सुग्रीव एवं नील एक रात तथा वीर अंगद ने अपने आवागमन में चार प्रहर का समय सूचित किया :—

नल स्त्रिरात्रं पुनरेति गत्वा तत्रैव मैंद द्विविदौ द्विरात्रम्।
सुग्रीव नीलौ पुनरेक रात्रं वीरोऽङ्गदो याम चतुष्टयेन॥

—हनुमन्नाटकम्

इस प्रकार से सभी के बलाबल का मान प्रकट हो जाने पर अन्त में भगवान हनुमान की

ओर दृष्टिपात करते हैं। प्रभंजनसुत ने हाथ जोड़ कर कहा कि मुझे आज्ञा दीजिये, आपके प्रताप से अग्नि पर धरे कड़ाह के खौलते तेल में डाले गये एक सरसों के फूटने में जितनी देर हो उतने समय में वहाँ जाकर वापस आपके सान्निध्य में यह सेवक आ जायगा। पूर्ण आश्वस्त होकर (अध्यात्म रामायण के अनुसार) भगवान बोले—"वत्स जीवय लक्ष्मणम्।" प्रिय वत्स, लक्ष्मण को शीघ्र जिलाओ। आज्ञा प्राप्त होते ही महाकपि शीघ्र उन्हें प्रणाम कर आकाशगामी हो गये।

कालनेमि का वध—राक्षस गुप्तचरों से समाचार मिलते ही घबड़ाया हुआ रावण तुरन्त कालनेमि के घर आ उसे द्रोण गिरि जाते वायुनन्दन को मुनि वेष से विमोहित कर निशाकाल बिता देने का परामर्श देता है। कालनेमि अपना सिर धुनते हुए कहता है—राक्षसेन्द्र, तुम्हारे देखते जिसने नगर जला डाला, उसका मार्ग रोकनेवाला कौन है ? रावण के क्रोध-दण्ड-भय से संत्रस्त होकर वह कार्यरत हो जाता है। वह सोचता है कि पापी रावण के हाथ से मरने से अच्छा राम-दूत के हाथ से ही मरना है।

मारुति ध्येय स्थल की परिसीमा में पहुँचने ही वाले थे कि बीच में एक सुन्दर परम रमणीक आश्रम उन्हें दिखाई पड़ जाता है। वहीं विघ्नकारी कालनेमि मुनिवेष से माया फैलाये विराजमान था। सन्तप्रेमी भावुक मारुति के हृदय में यह शंका जगी कि इस मार्ग पर पहले तो कभी ऐसा मुनि-मंडलायुत आश्रम देखने में नहीं आया था। कहीं मेरा यह भ्रम या मार्ग-विच्युति तो नहीं है ? उन्होंने विचारा कि मुनि से पूछ कर जल पी लूँ फिर श्रम दूर कर शीघ्र ही द्रोणगिरि पर जा पहुँचूँगा। आश्रम में पहुँचते ही मायापति के दूत को विमोहित करते वह सर्वज्ञान के प्रदर्शन में श्री राम-गुणगान करने लगा और रावण युद्ध में श्री राम-विजय हो जाने की निश्चित भविष्य वाणी कर दी। जल पीने की इच्छा पर उसके कमंडल जल दिये जाने पर हनुमान ने कहा—मुनि, मैं इस थोड़े जल से तृप्त नहीं हो सकता, मुझे कोई जलाशय बतावें जिससे मेरी प्यास बुझ सके। इस पर कालनेमि एक मायिक ब्रह्मचारी शिष्य को जलाशय दिखाने की आज्ञा देते हुए बोला—रामभक्त, देखो पास के विशाल जल सरोवर में तुम आँखें बन्दकर जल पीना, फिर मेरे पास आ जाना। मैं तुम्हें जो दिव्य मन्त्र दूँगा, उस ज्ञान शक्ति से तुम सारी दिव्य औषधियों को देखकर पहचान लोगे। उसने यह भी सूचित किया कि मैं यहाँ

से योग बल से देख रहा हूँ कि लक्ष्मण मूर्च्छा से स्वस्थ होकर उठ बैठे हैं। औषधि की अब इतनी आवश्यकता नहीं रह गई है। तथापि तुम्हारा श्रम विफल न हो, तुम इसे ले जाओ, जिससे अन्याान्य वानर वीरों के जिलाने के कार्यों में काम आवे। गंधर्व रक्षकों द्वारा बूटियाँ सुरक्षित बना कर छिपा रखी गई हैं। उनपर विजय पा कर देख लेने के लिए ही मैं तुम्हें मन्त्र देने की इच्छा कर रहा हूँ। मुनि के आज्ञानुसार वे वटु के साथ जलाशय के पास पहुँचते हैं। वटु वापस हो जाता है। हनुमान जैसे ही आँख बन्दकर जल पीने लगे :—

तथेति मारुति र्गत्वा का सार मपिवज्ज्वलन्। विधाय नेत्रे तावत मग्रसन मकरीतदा ॥
सोऽपि तां दारयामास धृत्वास्ये साममारह। ततोंरस्त्रिसा प्राह दिव्य रूपातु मारुतिम ॥

त्यों ही युगांतर से प्रतीक्षारत मुक्ति के लिए आकुल एक मगरनी ने बड़ी शीघ्रता से मारुति के पद को मुख से पकड़ लिया। इससे किंचित भी विचलित हुए बिना ही उन्होंने शीघ्र ही उसका मुख पकड़ कर चीर डाला। वह आकाश में जा दिव्य स्वरूप से बोली—कपे, मैं धान्यमालिनी अप्सरा आपके चरण-स्पर्श एवं दर्शन कर पूर्व प्रदत्त मुनिशाप से आज मुक्त हो गई। मैं आपको सावधान करती हूँ कि इस आश्रम में जिसे आप मुनि मान बैठे हैं, वह मुनि नहीं, अपितु रावण का भेजा कार्यविरोधक घोर मायावी राक्षस कालनेमि है। यह आश्रम, मन्दिर, मुनिमण्डल आदि सभी माया जाल है। आप मेरी यह वाणी सत्य माने। ऐसा निर्देश दे वह विमान से ब्रह्मलोक चली गई। महामायिक दूत मारुति के आश्रम में वापस आते ही कालनेमि बोला—वानर-श्रेष्ठ, अब मुझ से शीघ्र ज्ञान दीक्षा ले ले, फिर मुझे गुरु-दक्षिणा देना। उत्तर में आंजनेय बोले—मुनि, पहले ही तुम मुझ से गुरु-दक्षिणा ले लो, बाद में मंत्र-दीक्षा देना। ऐसा कह मारुति ने मुष्टिका बाँध जैसे ही हाथ उठाया, उसने समझा मुट्ठी में कुछ दक्षिणा होगी। किन्तु अकस्मात् जब उसके वक्षस्थल पर वज्रमुष्टिका प्रहार हुआ तो वह गिर पड़ा। वह मायिक युद्ध से विजय की चेष्टा करने लगा। किन्तु मेघनाद की ही भाँति वह असफल हो गया। कपि ने उसके सिर में अपना लाँगूल लपेट कर उसे पछाड़ मारा। मरते समय अपना राक्षसी शरीर प्रकट कर वह राम-राम कहता हुआ मर गया। यह देख, हनुमान वहाँ से हर्ष के साथ प्रस्थान कर द्रोण गिरि पर जा पहुँचे।

औषधियों के दिव्य तेज से पर्वतमाला अतीव देदीप्यमान हो रही थी। उसकी

अनुपम शोभा से प्रभावित मारुति अपनी अभिलषित बूटियों को पहचानने के लिए भीतर गये। औषधियों ने अपने अपहरण-भय से दिव्य किरणों को लुप्त कर लिया। पूर्ण अन्धकार के दुष्कृत्य से आक्रोशित हनुमान उन औषधियों को धर्षित करते हुए बोले--- संजीवनियो, तुम्हारे स्वार्थमय कार्यों को धिक्कार है। भगवान श्री राघव के प्रति भी इस कठिन आपत्ति में तुम लोगों ने दया न की। यदि कोई दूसरा समय होता तो तुम सब को मैं अभी ही नष्ट-भ्रष्ट कर चूर कर देता। किन्तु दुःख है कि असमय ऐसा कार्य करने में भी असमर्थ हूँ। अतः अन्धकार से तुम सब को भली-भाँति पहचान न सकने के कारण, तुम सभी को एक साथ पर्वत सहित ही यहाँ से उखाड़कर मैं ले जाऊंगा। मेरे द्वारा परोपकार स्मृति में तुम सभी का जीवन अक्षुण्ण रहे। ---मारुति की मेघ-वाणी से सारा पर्वत ही गूँज उठा। पहाड़ को उखाड़ते देख कर इन्द्र-नियुक्त अगणित गन्धर्व सेना ने चारों ओर से कपि पर भयङ्कर आक्रमण कर दिया। किन्तु वीर शिरोमणि के लोल लांगूल के वज्रप्रहार से क्षण मात्र में मच्छर की भाँति हजारों मर गये और प्राण रक्षा में भाग कर देव लोक चले गये। वहाँ उन्होंने एक भयङ्कर वानर के आगमन का करुण संदेश दिया।

इस समाचार से क्रुद्ध तथा अति सभीत इन्द्र ने भी मंत्रियों के साथ दौड़ कर सुर-गुरु बृहस्पति से यह बात सूचित की। बृहस्पति ने सारा रहस्य जानकर इन्द्र को कहा कि तुम्हारा कल्याण इसी में है कि शीघ्र उनसे क्षमा प्रार्थी हो, प्रसन्नता से कपिराज को महौषधि समर्पण करो। उनसे युद्ध करने पर सौ वर्षों में भी तुम जीत नहीं सकते :—

नायं वर्ष शतैर्जय्यो भवतां बल संयुतः।
तस्मात् प्रसादय कपिं देहि तत्रस्य मौषधम्॥

—पद्म पुराण

इन्द्र ने आकर मारुति के चरणों में प्रणाम किया और क्षमायन-स्तुति के साथ समूल द्रोण महौषधि-सहित पर्वत खण्ड समर्पित किया। योजन विस्तृत विशाल द्रोण गिरि को सहसा उखाड़कर गेंद की भाँति हाथ में लेकर अविलम्ब वे इतने वेग से चले कि उन्होंने वायु, मन तथा गरुड़ के वेग को भी लज्जित कर दिया।

सूर्य का पराभव—लक्ष्मण का शल्योपचार न हो सके और द्रोणाचल से संजीवनी

न आ सके इसके लिए रावण ने सर्व प्रथम कालनेमि को भेजा। किन्तु वह इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने सूर्य को भयाक्रांत कर विवश कर दिया कि असमय ही उदित हो जाँय, जिससे समय से पूर्व प्रात:काल हो जाय। अन्य की भाँति सारा अनुनय-विनय-प्राणदण्ड के आगे व्यर्थ हो जाने पर राक्षसाधीश रावण के सम्मुख पराभूत सभीत सूर्य आज्ञा पालन के लिए निकल पड़े। किन्तु मारीच से निपटने एवं द्रोण गिरि पहुँचने के बीच ही अकस्मात् मारुति की दृष्टि असमय में ही जाते सूर्य पर जा पड़ी। वे समझ गये कि कालनेमि की भाँति सूर्य को उदय करवाने का षड्यन्त्र रावण का है। आप तुरन्त रथ के नीचे पहुँच उसे अपनी अँगुली से ही कुलाल-चक्र की भाँति घुमाने लगे। इस परमाद्भुत घटना से सूर्य अतीव विस्मित और श्रमीभूत हो गये। तभी अरुण ने देखा कि एक भीनकाय बानर की यह लीला है। तभी वीर मारुति उनके सामने प्रगट हो बोले—दिनपते, इस निशाकाल में आप किस कारण पूर्व दिशा की ओर भागे जा रहे हैं। आप जानते हैं कि लक्ष्मण मेघनाद के शल्य से व्यथित रण में पड़े हैं। श्री राम शोक ग्रस्त हैं और मैं उनके प्राण-रक्षार्थ संजीवनी औषधि यहाँ लेने आया हूँ। अत: आपका कर्त्तव्य है कि अपने वंश की रक्षा करें और अभी उदित होने का विचार छोड़ दें। किन्तु रावण के भय से प्रभावित दिनेश बोले—कपीश, लक्ष्मण का जीवन एवं श्री राम की विजय श्री-प्राप्ति दोनो ही ध्रुव सत्य हैं। अपने वंश का कल्याण कौन नहीं चाहेगा ? पर इस समय लंकेश के विषम दण्ड से मैं विवश हूँ। हनुमान ने देखा कि वाद-विवाद बढ़ाना व्यर्थ है। उन्होंने देखा कि दिनकर प्राण-भय से संत्रस्त हैं। अत: कुपित हो उन्हें पकड़ कर कुक्षि में दबा लिया और द्रोणाचल को उखाड़ कर ले चले।

अवधपुरी के ऊपर—संजीवनी औषधि लेने जाते समय भगवान ने आज्ञा दी थी कि कालक्षेप किये बिना वापसी में यदि संभव हो तो अयोध्या जाकर सब की कुशलता का समाचार लेते आना। हनुमान उड़े जा रहे थे। अकस्मात् भरत के बाण से वे आहत हो गिर पड़े। उधर माता सुमित्रा ने दुःस्वप्न देखा था कि मेरी सारी बाईं भुजा को सर्प निगल रहा है। भय से क्रन्दन करती हुई वह उठ बैठी और कौशल्या को अद्भुत स्वप्न कह सुनाया। उन्होंने आचार्य वशिष्ठ से कहा। उन्होंने लक्ष्मण के ऊपर

किसी महान संकट का संकेत किया और शांति के लिए हवन का आयोजन किया। राक्षसों से भरत की रक्षा के लिए त्रिकालज्ञ वशिष्ठ ने उन्हें धनुष-बाण सहित वेदी के पास बिठाया था। हवन कार्य पूरा हो चुका था, किन्तु पूर्णाहुति शेष थी। ऐसे ही समय प्रचण्ड दीप्त विशालकाय शैल लिए वीर मारुति अर्धरात्रि वेला में गगनस्थ दिखायी पड़ते हैं। सतर्क वीर भरत को आशंका हुई कि दुःस्वप्न का मूल यही न हो? कोई महा-निशाचर पर्वत लेकर अवधपुरी पर डालने न आया हो? ऐसा मन में अनुमान कर उन्होंने शीघ्र कान तक धनुष-प्रत्यंचा खींचकर बिना फर का बाण मारा।

भरत के प्रबल भुजदण्डों से प्रेषित प्रचंड बाण-प्रहार से आहत हनुमान मुख से राम-राम कहते भूमि पर आ गिरे। ऐसे समय में भी द्रोण गिरि को उन्होंने केशरयुक्त लांगूल के अग्रभाग पर ही पूर्ण सुरक्षित रख छोड़ रखा था। पुत्र को नीचे गिरते देख साथ में आ रहे पवन देव ने ही अवध की रक्षा के लिए पर्वत को ऊपर रख छोड़ा।

अतीव प्रिय राम नाम सुनते ही आतुर हो भरत दौड़ कर कपि के पास आ पहुँचे। कपीश को व्याकुल देख तुरन्त अपने हृदय से लगाकर उन्होंने अनेक तरह से जगाने का प्रयास किया, पर चेतना नहीं आयी। प्रयत्न असफल रहे। भरत उदास मुख, अतीव दुःख भरे मन से तथा जल-भरे नयनों से बोले—हा, जिस विधाता ने मुझे राम-विमुख बनाया, उसीने फिर आज यह भागवत वध-लांछन का दारुण दुःख दिया। उन्होंने प्रार्थना की कि यदि मेरे हृदय में शुद्ध राम-भक्ति हो और श्री रघुकुलेश मुझ पर पूर्ण प्रसन्नानुकूल हों, तो कपिराज सारे श्रम-शूलमय कष्टों से मुक्त-स्वस्थ हो शीघ्र उठ बैठें। इस अमोघ प्रार्थना के प्रभाव से कपीश स्वस्थ होकर उठ बैठे। अब तो पुलकित शरीर और आनन्दाश्रु भरे नयनों से भरत पुनः कपि को छाती से लगा लेते हैं। रघुकुल तिलक श्री-राम का स्मरण करते उनके हृदय में प्रीति इस समय समाती नहीं। इधर मारुति निद्रा से जागे से, जब सामने भरत-शत्रुघ्न को देखते हैं तो अतीव चकित हो विचार करने लग जाते हैं। वे सोचते हैं कि क्या प्रभु लङ्का-विजय कर अवध आ गये? या मेरा भ्रम है, या कहीं मैं किसी नवीन कपट में तो नहीं फँस गया हूँ! किन्तु दूसरे ही क्षण वे प्रकृतिस्थ हो दोनों भाइयों के श्री चरणों में प्रेम-पुलकित हो प्रणाम करते हैं। इसी भाँति दोनों भाइयों ने जिस अलौकिक स्नेह से बारी-बारी मारुति को

गले लगाया वह आनन्द अनिर्वचनीय था। उस समय दोनों भाइयों के साथ ही कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा और गुरु वशिष्ठ आदि सभी उपस्थित थे। भरत ने श्री राम का कुशल पूछा। मारुति ने सारा समाचार कह सुनाया। सुनकर भरत-सहित सारा परिवार दुःख से संतप्त हो गया। माता सुमित्रा ने यह सुना कि लक्ष्मण स्वामी-सेवा कार्य में ललकार कर शत्रु मेघनाद से संग्राम में लोहा लेकर लड़ते हुए घायल हो शक्ति से मूर्च्छित पड़े हैं। इससे उन्हें पुत्र की दशा से तो शोक हुआ, साथ ही संतोष भी हुआ कि लक्ष्मण—'रघुपति भगति बरे हैं'। इस प्रकार उनके अंग एक क्षण जहाँ शोक से सूखते हैं तो दूसरे क्षण में ही आनन्द से हरे हो जाते हैं। वे शत्रुघ्न से बोलीं—वत्स, तुम कपि के साथ जाओ। माता की आज्ञा सुनते ही वे तो प्रेमानन्द से प्रमुदित हो गये और हाथ जोड़कर तैयार हो गये, मानो, दैवयोग से उनके जीवन के पूरे के पूरे दाँव पड़ गये हों। माता और अनुज की इस दशा से हनुमान-भरत दोनों ही अतीव ग्लानि से भर उठते हैं। तभी उन्हें माता कौशल्या समझा कर शांत करती हैं। भरत बोले—कपीश्वर, मैं अधिक क्या कहूँ ? तुम तो स्वभाव से शुद्ध सुमति-सुहृद हो, विधि ने मुझ मूढ़ को तथा माता ने प्रभु को कष्ट पहुँचाने के लिए व्यर्थ ही जन्म दिया। श्री प्रभु चरणों में प्रणाम कर मेरी यह विनय सुनाना कि मैं उनका सेवक कहला कर भी समय आने पर उनके काम न आया। इधर स्वामी की अवध-रक्षा की आज्ञा से मैं विवश हूँ। सभी को सान्त्वना देते हुए विलम्ब-भय से मारुति ने विदा माँगी। वीर भरत धैर्य से बोले—तात, तुम्हारे जाने में यदि देर होगी तो प्रभात होते ही कार्य नष्ट हो जायगा। अतः शीघ्र पहुँचने के लिए पर्वत-सहित मेरे बाण पर चढ़ जाओ। उसके द्वारा जहाँ कृपानिकेत हैं वहाँ मैं तुम्हें पहुँचा दूँगा। इस शब्द से कपि के मन में आश्चर्यमय मूढ़ गर्व का आविर्भाव होता है कि मेरे अतिशय भार से बाण कैसे चलेगा ? किन्तु तत्क्षण फिर श्री राम-प्रभाव विचार कर भरत जैसे वीर शिरोमणि की भावना के सम्मान में वे नतमस्तक हो गये। हनुमान ने भरत-पद वन्दन कर विनम्र सुधा वाणी में हाथ जोड़ कर कहा—प्रभो, बाण से भी उत्कृष्टतर आपके प्रताप को ही हृदय में रख कर मैं तुरन्त चला जाऊँगा। यह कह, उनकी आज्ञा प्राप्त कर, चरणों में प्रणाम कर हनुमान वहाँ से प्रस्थान कर गये।

रात्रि-शेष में करुणा-सागर राघवेन्द्र की दृष्टि गगन की ओर गयी। तेज पुंज मारुति को देखकर वे अतीव प्रसन्न हो समस्त वानर-वीरों सहित लंकेश विभीषण से बोले—वह देखो; भरत की कुशलता एवं द्रोण गिरि लेकर हनुमान चले आ रहे हैं। तभी आकाश से नीचे आ मारुति भूमि पर पर्वत स्थिर कर भगवान के सान्निध्य में जा पहुँचे। वे प्रणाम भी नहीं कर पाते कि अति कृतज्ञ परम सुजान प्रभु श्री राम हर्ष से हनुमान को गले लगा लेते हैं। मारुति ने सुषेण से कहा कि मैं औषधि को पहचान न सकने के कारण ही औषधि के सारे शिखर को ही यहाँ उठा लाया। सुषेण वैद्य ने तुरन्त अभिलषित चारो बूटियों द्वारा उपचार किया। वीर लक्ष्मण पूर्ण स्वस्थ हो हर्ष के साथ उठ बैठे। लगा जैसे सुखमय नींद सोकर वे उठ बैठे हैं। उसी समय करुणासिंधु प्रभु ललक कर भाई को हृदय लगाकर आलिंगन करते हैं। रीछ-वानरों का समूह हर्षातिरेक से आनन्द में नाचने लगता है। सुषेण वैद्य की सेवा से प्रसन्न कोशलाधीश ने उन्हें अभिलषित वर में बहुत कुछ देना चाहा, किन्तु उन्होंने श्री प्रभु-चरणों में एकमात्र अविरल प्रेम की याचना की। कार्य सम्पन्नता पर प्रभु-प्रेरणा से पवन-कुमार भवन समेत वैद्य को पुनः लंका पहुँचा कर फिर द्रोण गिरि को यथास्थान स्थापित कर आये।

सूर्य-मुक्ति—अकस्मात् तेजपुंज मारुति की काँख में दबे सूर्य पर भगवान की दृष्टि जा पड़ी। साश्चर्य कारण पूछने पर हनुमान सारी बातें बोले—भगवान, मैंने सोचा कि मेरी प्रार्थना न मानकर यदि सूर्य अपने हठाग्रह से उदय हो जायेंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा? अतः इन्हें पकड़कर अपने साथ ही ले रखा; कार्य-सम्पन्नता की अवधि तक मैंने ऐसा ही उचित समझा। भगवान ने तुरन्त सूर्य को संकट से मुक्त कराकर स्तुति क्षमापन के साथ विदा कर दिया। सूर्योदय होते ही विश्वकल्याणकारी हनुमान ने महासिंह गर्जन किया। सारे निशाचर प्राणहीन-से हो गये। लङ्कापुरी में हाहाकार मच उठा। लक्ष्मण के संजीवन से रावण विषादवश बारम्बार सिर पीटने लगा।

लक्ष्मण शक्ति के उत्तरदायी—हनुमन्नाटक में लिखा है कि हनुमान को लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर अपनी अनुपस्थिति का महान क्षोभ था। इनकी अनुपस्थिति का कारण रावण का षड्यन्त्र था। जब-जब युद्ध में कोई महाशक्ति छोड़ी जाती थी तब-तब हनुमान तुरत उछल कर उसे बीच में ही पकड़ कर समुद्र में डाल देते थे। इस

समाचार से रावण तुरन्त विधि को दण्ड देने के लिए उद्यत हो जाता हैं। ब्रह्मा अपनी प्राणरक्षा के लिए उसे समुचित उपाय बताने के लिए नारद का स्मरण करते हैं। नारद के आते ही रावणकृत कष्ट-निवेदन कर शीघ्र वे कुछ समय के लिए लक्ष्मण से हनुमान को रण से हटा ले जाने की प्रेरणा देते हैं। अपने पिता के ममत्व में आबद्ध नारद शीघ्र रण-स्थल पर पहुँचकर पवन कुमार को अपनी बातों में फँसा रण से कुछ हटा ले जाते हैं। अतएव लक्ष्मण एकाकी हो ब्रह्म-शक्ति से मूर्च्छित हो जाते हैं। भगवान श्री राघवेन्द्र मूर्च्छित लक्ष्मण से शोक प्रकट करते यही बात करते हैं कि पवन कुमार को धिक्कार है, जो तुम्हें रण में अकेले छोड़ पराङ्मुख हो गये। हनुमान सकरुण अपराध-कलङ्क को धो डालने के लिए प्राणपन से कृतसंकल्प हो गये। प्रभु मुख से भरत के अपार बाहुबल की महत्ता सुन कर उनके हृदय में प्रत्यक्ष भरत-दर्शन की भी प्रबल आकांक्षा जाग्रत हो जाती है। इसकी पूर्णता भगवदेच्छा से उन्हें अयोध्या में हो जाती है। हनुमन्नाटक के अनुसार तो भरत के बाण पर ही अवध से लङ्का तक हनुमान के आगम का वर्णन है। संजीवन लाकर हनुमान ने अपनी च्युति का परिमार्जन कर लिया।

अहि-महि-रावण-वध नायक—रावण के पुत्र अहिरावण और महिरावण के जन्म का वृत्तान्त रोचक है। मन्दोदरी ने प्रथम प्रसव में एक पुत्र को जन्म दिया जो बीस मुखी सर्प था। ऐसे अशुभ पुत्र के प्रति रावण ने घृणा प्रदर्शित की। उसने उन्हें श्वानानन नामक अनुचर के द्वारा नैऋत्य दिशा में जीवित ही गड़वा दिया। किन्तु दिव्य शक्ति सम्पन्न बालक स्वतः ही मिट्टी खोदता-खाता हुआ एक मास बाद बाहर निकल कर समुद्र किनारे जा पहुँचा। उन पर राहु-माता सिंहिका की दृष्टि पड़ी। स्नेहवश प्रसन्न हो सिंहिका उनका लालन-पालन करने लगी। अकस्मात एक दिन दैत्य गुरु शुक्राचार्य का आगमन हुआ। ऋषि द्वारा पूछे जाने पर उसने सागर से ही उस बालक की प्राप्ति की बात सुना दी। महर्षि ने उसे रावण-पुत्र बताया और उसका नामकरण कर चले गये। ज्ञानवान बालक अपनी उत्पत्ति तथा नाम सुनते ही प्रसन्नता से फूल उठा। वह सागर में कूदकर शीघ्रता से नीचे के तीसरे वितल लोक (सर्पलोक) में जा पहुँचा। वहाँ का राज्याधीश 'दर्वीकर' नाग था जो वासुकि का साला था। अहि पुरी की शोभा देखते हुए, राज्य दरबार में हो रही दैनिक कथा पुराण का शांत-

चित्त से श्रवण करने लगा। तप की महत्ता सुनकर वह अतीव प्रभावित हुआ। वह निर्जन वन में 'कामदा' नदी के किनारे उसे ही अपनी इष्ट-देवी मान कर अतीव श्रद्धा से ध्यानस्थ हो १४ हजार वर्ष तक कठिन तपश्चर्या में लीन रहा। उसकी दृढ़-निष्ठा से प्रसन्न हो उसे वर प्रदान करने के लिए देवी कामदा प्रत्यक्ष हुईं। वर प्राप्त की भावना से स्तुति करता हुआ वह याचना करने लगा। उसने कहा कि मैं देवों से अधिक वैभवादि का भोग करूँ, जिस किसी के साथ युद्ध करूँ विजय मेरी हो, राक्षसों का अधिपति बनूँ, किसी भी देव-देवी के हाथों मैं न मरूँ। जिस पिता रावण ने मेरा परित्याग कर अपमान किया है वह भी एकबार मुझ से याचना कर अपनी विपत्ति में सहायता माँगे। सुन कर देवी बोली—वत्स, तेरा पिता त्रेता युग की समाप्ति में स्वयं तुझे स्मरण कर सादर तेरा सम्मान कर तुझ से सहायता की याचना करेगा। तेरी सारी कामनाएँ सफल होंगी, किन्तु एक ऐसा महाकपि है जो मेरी वाणी के वश में नहीं है। उसके स्वामी के साथ यदि कुचाल करेगा तो निश्चय ही उस महाकपि के हाथों तेरा विनाश होगा। अन्यथा तू अजर अमर है। यह वरादेश दे देवी अन्तर्धान हो गयीं। अति प्रसन्न हो पाँच सौ वर्षों तक अहि सुख-शांति से रहा। बाद में उद्धतता से वह विविध मायावी वेषों से सर्प पुरी में जाकर वहाँ के अनेकों प्रकार के पशुओं का भक्षण करने लग गया। अन्ततः एक दिन सर्पराज दर्वीकर ने ससैन्य जाकर उसे दंड देना चाहा, किन्तु वे अहि की महाशक्ति से पराभूत हो गये। दर्वीकर ने भगवान शेषनाग के पास जाकर 'अहि' के उपद्रवों का दुःख दायक समाचार सुनाया। उन्होंने बताया कि अहि अजेय है। उसे अपनी कन्या देकर प्रीति का उपाय करो। दर्वीकर की परम सुन्दरी कन्या कुन्दिनी को स्त्री रूप में प्राप्त कर अहि ने मैत्री स्थापित कर समस्त नागों को निर्भयता का आश्वासन दे दिया। राजधानी से कुछ हट कर कामदा नदी के तट पर ही नौ योजन विस्तृत ऐश्वर्यमय नगर बनाकर राक्षसों के साथ देवी की उपासना करता हुआ वह रावण-पुत्र कुन्दिनी के साथ देव दुर्लभ सुख भोगने लगा।

रावण द्वारा अहि काल के मुख—कुम्भकर्ण एवं मेघनाद के मरण से रावण अतीव चिन्तित तथा हताश-सा हो गया। माता कैकसी की सान्त्वना-प्रेरणा से उसने निश्चय कर लिया कि पूर्व-परित्यक्त पुत्र अहि को बुलाया जाय। एतदर्थ शिवालय

में जाकर अभिषेक के साथ वह आकर्षण मन्त्र का जप करने लगा। मन्त्रप्रभाव से अहि ने स्वनिर्मित भू-विवर मार्ग से शिवालय में ही पहुँचकर पितृ चरणों में नमन किया। उसने अपने याद किये जाने का कारण पूछा। जन्मकाल से ही बिछुड़े-पुत्र को आज एक महाप्रतापी वीर योद्धा के रूप में देख वह अतीव प्रसन्न हुआ। रावण ने आरम्भ से ही पूरी कथा सुना कर उसे कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि बड़े-बड़े वीरों की मृत्यु-वार्त्ता बता दी। तत्पश्चात् अनुनय के स्वर में उसने कहा कि प्रिय वत्स, अब तेरे सिवा पूर्ण हितैषी न तो कोई सहायक रह गया है और न मित्र। राक्षस-कुल की मर्यादा के साथ ही वंश का नाश हो रहा है। तुम्हीं एकमात्र समर्थ हो। इसी आशा से मैंने तुम्हें स्मरण किया है। बुद्धिमान एवं मायावियों का आचार्य अहि पिता की सारी बातों पर कुछ देर गम्भीरता से विचार कर बोला—लंकेश, यद्यपि राम-लक्ष्मण दोनों तपस्वियों को मैंने देखा नहीं है और वानरों से भी पूर्णतया अपरिचित हूँ, फिर भी सोचने पर मैं इस परिणाम पर पहुँचता हूँ कि जिन्होंने विश्व-प्रसिद्ध बालि, खर, दूषण, विराध, कुम्भकर्ण, मेघनाद जैसे महाबलशाली योद्धाओं को सरलता से मार गिराया, वे कोई साधारण मानव योद्धा नहीं हैं। मेरे लिए भी ऐसे अचिंत्य शक्तिशाली वीर से रण में विजय पाने की भावना अपने काल को प्रत्यक्ष आमन्त्रण देना है।

इस उत्तर से रावण का तो मुख सूख गया। हताश होकर वह भूमि की ओर देखने लग गया। यह देखकर अहि ने कहा कि घबड़ाने की बात नहीं है, आप शोक न करें। एक उपाय से मैं प्रयत्न करूँगा। यदि भगवान् शिव सहाय हुए तो विजय सफल ही समझें। रावण हर्ष से जब उसका मुख देखने लगा तो वह बोला—मैं आज रात को ही दोनो वीरों को सोती अवस्था में अपनी माया से उठा ले जाऊँगा। कल मध्याह्न पूजा में देवी के सामने दोनों की बलि दे दी जायगी। फिर सारी वानर-सेना स्वतः निस्सहाय हो पराजित हो जायगी। ऐसी मेरी धारणा है, हाँ, यहाँ मेरे जाने की गुप्त सूचना अत्याकस्मिक प्रकाश से मिलेगी।

लङ्का में (अहि आगमन के व्याज से) शिव-महापूजन के विशिष्ट महोत्सव से आकृष्ट हो, संयुक्त मन्त्रि-मण्डल में उपस्थित विभीषण से राम ने कारण पूछा। विभीषण बोले कि इसमें कुछ रहस्यात्मक षड़यंत्र की आशंका हो रही है। मेघनाद की मृत्यु के

बाद अब कोई महान योद्धा नहीं रह गया था। विभीषण ने तुरन्त राम की आज्ञा ले एक छोटे पक्षी के रूप में दशानन के गुप्त शिवमन्दिर में उस समय प्रवेश किया जब अहि-रावण का परस्पर विचार-विनिमय चल रहा था। षड़यंत्र का पूर्ण विवरण जानकर विभीषण ने सब के सम्मुख प्रभु से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ऋक्षराज की सम्मति से श्रीराम-लक्ष्मण दोनों महाविभुओं की संरक्षा का समुचित उपाय मारुति से ही पूछा गया। वे बोले, "मैं अपने लांगूल से सारी सेना के बाहर से एक महा विशाल वर्त्तुलाकार कोट बताये देता हूँ, जिसके प्रधान द्वार के अधि-रक्षक रूप में मैं स्वयं बैठूँगा। प्रभु-कृपा-बल से मैं सारी रात हाथ में विशाल पर्वत लिये पहरा देता रहूँगा, जिससे अपना-पराया कोई भी बाहर से मेरी आज्ञा के बिना प्रवेश न पा सकेगा। मेरे द्वारा बनाये इस बज्रमय अजेय दुर्ग की किसी सन्धि से भी सुरासुर क्या, एक कीटाणु का प्रवेश पाना भी असम्भव होगा। कोट-वीरों से यथा-विधि संरक्षित मध्यस्थल में भगवान के सान्निध्य में किष्किधा-पति जाम्बवान तथा अंगद ये तीनों महारथी रक्षा करेंगे। अन्त में विभीषण बोले—पवनकुमार, आपके ये सारे प्रबन्ध सर्व प्रशंसित तथा उच्चकोटि के हैं, तथापि आज की काली रात जब तक निर्विघ्न समाप्त न हो जाय, मुझे चिन्ता ही मालुम होती है। निशाचर अहि बड़ा ही भयङ्कर मायावी है।" इस पर ऋक्षराज विभीषण की आशंका का समर्थन करते बोले—"कपीश्वर, चोर के आने के अनेक मार्ग, विभिन्न वेष एवं अदृश्य रूप हो सकते हैं। अतः और भी उपाय निश्चित कर लें, जिससे विभीषण भी पूर्ण आश्वस्त हो जाँय। कुछ विचार कर मारुति ने भगवान से कहा—प्रभो, आप लांगूल-गढ़ के ऊपर अपने सुदर्शन चक्र द्वारा गगन मार्ग संरक्षित कर दें, जिससे ऊपर से भी किसी भी रूप में आ सकना दुष्कर हो जाय। भक्त की इच्छा से चक्र कोट के ऊपर घूमने लगा। वीर नल को अपनी माया द्वारा भूमि संरक्षण की आज्ञा मिली। समस्त वानर वीरों को चारों ओर कोट के भीतर पंक्ति-बद्ध होकर हाथ में बड़े-बड़े पर्वत-शिला-वृक्ष लिये खड़े रह सतर्कता से सारी रात पहरा देने का आदेश दिया गया। सबके मध्य अंगद की गोद में लक्ष्मण और सुग्रीव की गोद में राम के विश्राम की व्यवस्था की गई। राक्षसराज विभीषण अपनी इच्छा से कोट के बाहर चारों ओर भ्रमण करते हुए प्रहरी का क़ार्य करने लगे।

अहि ने कैसे अपहरण किया—घोर अर्ध रात्रि के समय रावण से आज्ञा ले अहि ने नभ मार्ग से ही राम-दल की ओर प्रस्थान किया। तभी उसकी आराध्येश्वरी देवी उसके सामने अदृश्य रूप में आ कालमुख में जाने का गुप्त संकेत कर देती हैं। वह भय से काँप उठता है, किन्तु पिता की अवस्था और अपनी प्रतिज्ञा के कारण हतबुद्धि-सा वह कार्यरत हो जाता है।

उसने दूर से ही आकाश में हरिचक्र को देखा। परमाद्‌भुत गगनचुम्बी एवं योजनों तक विस्तृत लांगूल कोट को भी उसने देखा। वह चकित और हतप्रभ हो गया। भूमि तल पर आने पर कोट के बाहर विभीषण दिखाई पड़े। कोट के महाद्वार पर हाथ में विशाल पर्वत-शिखर लिये भयङ्कर भीषणाकार हनुमान तो उसे साक्षात् महाकाल-से प्रतीत हुए जिनके महाभय से ही उसके आधे प्राण उड़ गये। स्वप्न में भी उसे राम-दल की ऐसी धारणा नहीं थी। उसका सारा संकल्प ही नष्ट होने जैसा हो गया। उसने कालप्रेरित बुद्धि से कुछ क्षण बाद वानर रूप से ही भीतर प्रवेश करने का विचार निश्चित किया। पहले वह मायावी अंगद वेष से मारुति के पास आकर बोला—कपीश, कार्य-वश मुझे बाहर रह जाना पड़ा था। मुझे मार्ग दें तो मैं भगवान के पास जाऊँ ? यह सुनते ही सतर्क हनुमान दीर्घ गर्जना से बोले—अरे मूर्ख, अंगद तो भीतर है, मैं समझ गया तू मायावी चोर है। मुझे धोखा देने आया है। यदि तू वास्तविक अंगद है तो ले, यह मेरा बाँया हाथ डाल कर सत्यता का प्रमाण दे। यह कह जैसे ही उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया वैसे ही अपने पकड़े जाने के डर से वह गायब हो गया। कुछ समय बाद फिर सुग्रीव-वेष से आकर उसने भीतर जाने का प्रयत्न किया। इस बार भी वे क्रोध से बोले—अरे नीच, वानरेश तो गढ़ के ही भीतर हैं। पहले अंगद के और अब सुग्रीव के रूप से मुझे ठगने आया है ? मुझे तू जानता नहीं, मैं तुझ जैसे कपटियों को एक हाथ में समाप्त कर सकता हूँ। अच्छा, मेरे बायें हाथ का एक मुक्का तू सह ले तो मैं समझूँगा कि तू सत्य सुग्रीव है। हाथ उठाते ही पुनः वह अपने प्राण बचाकर निकल भागा। मारुति ने सोचा कि वह दुष्ट इस बार भी निकल भागा। दूसरी ओर अहि ने सोचा कि दोनो ही रूपों से बड़ी मूर्खता हो गयी। आज तो महादेवी की कृपा से ही इस महाकाल रूप वानर से मेरे प्राण बचे, अन्यथा मैं मारा

ही जाता। दम्भ-दर्प धर्षित अहि भावीवश पुनः अन्तिन प्रयास की चेष्टा करता है। अकस्मात् बाहर घूम रहे विभीषण का ध्यान उसे आ जाता है, जिससे अपनी सफलता की सीमा में वह नाच उठता है। इस बार विभीषण रूप में वह बड़े धीरे-धीरे द्वार पर पहुँचकर बोला—कपिराज, क्या कोई नवीन समाचार है ? मायावी को सत्य विभीषण जान हर्ष से मारुति बोले—लंकेश, तुम भले आये। देखो, दशानन कुमार अहि दो बार अंगद और सुग्रीव वेष में यहाँ आ चुका है। किन्तु कपट खुलते ही वह मेरे दण्ड भय से भाग निकला। मायिक विभीषण ने कहा—वीरवर, सत्यतः वह बड़ा मायावी है, आपकी सतर्कता से ही वह भीतर न जा सका। मैं भी चारों ओर सावधानी से घूमता जब यहाँ आया तो सोचा जरा भीतर की सुरक्षा देख आऊँ। आपकी बातों से मुझे बड़ी शांति मिली। यदि भीतर कहीं त्रुटि हो तो उसे ठीक कर मैं शीघ्र आ रहा हूँ। रात अब थोडी है। आप सावधान रहेंगे। इस प्रकार भुलावा दे अहि सहर्ष भीतर आ पहुँचा। वहाँ अलक्षित रूप से चारों ओर अपने दृष्टिपात से सुदृढ़ व्यवस्था देख वह चकित रह जाता है। ऐसी कठिन परिस्थिति में कार्यसिद्धि के लिए वह मुट्ठी में भूमि से धूल उठा, घोर सम्मोहन मंत्र पढ़कर सारे कटक के ऊपर फूँक कर उड़ा देता है, जिसके प्रभाव से भगवान सहित सभी वानर जहाँ के तहाँ मोह निद्रा में लीन हो जाते हैं। सभी के हाथों के विटप-गिरि-शिखर जहाँ के तहाँ स्थिर हो जाते हैं। सारी सेना पर अपनी राक्षसी माया का पूरा प्रभाव देख, अहि जब भगवान के पास आता है तो उन्हें भी घोर निद्रा में पाता है। वह उनके अनुपम सौन्दर्य से विमोहित होकर अपलक देखता ही रह जाता है। प्रभु-प्रेरणा से कुछ ही क्षणों में सचेत हो तुरन्त दोनों भाइयों को कन्धे पर उठा, भयभीत अहि कुछ दूर आगे जा कर भू-विल बनाता हुआ अपनी पुरी को चला जाता है। वहाँ आकाश में एक प्रकाश होता है, जिससे रावण कार्यसिद्धि का अनुमान कर प्रसन्न हो जाता है।

इधर कुछ ही क्षणों बाद विभीषण कपि के पास आते दिखाई पड़ते हैं, जिससे हनुमान स्वतः दुविधा से ग्रस्त और सशंकित हो जाते हैं। वे विभीषण को ही इस बार मायावी समझ क्रोध से ललकारते बोले—अरे दुष्ट, तू बार-बार मुझे छलने आ रहा है। इस बार मैं तुझे नहीं छोड़ूँगा, अभी यमपुरी भेजे देता हूँ। अरे, वास्तविक विभीषण तो

भीतर भगवान के पास गये हैं जो पुनः वापस आते ही होंगे ? यह सुनते ही विभीषण के होश उड़ गये। वे समझ गये कि अहि मेरे वेष से मारुति को छल कर आखिर अनुज सहित श्री राम को सोते ही अपनी माया से उठा ले गया। विभीषण मारुति के आक्रोश पर भी उनके पास जा विश्वसनीय शपथ से अपने सत्य स्वरूप का प्रमाण देते हैं। तभी हनुमान अपनी भूल पर पछताने लग जाते हैं। वे विभीषण से पूर्व हुई सारी घटना सुनाते, व्याकुल हुए दौड़कर जब भगवान के पास पहुँचते हैं तो स्थल शून्य दिखाई पड़ता है। दोनों वीर चीत्कार कर उठते हैं। इसके साथ ही अरुणोदय हो जाता है। माया-प्रभावहीन होने पर सारे वीर मोहमुक्त हो जाते हैं। विद्युत गति से चारों ओर अनुज युक्त भगवान के अपहरण - समाचार से हाहाकार और शोक छा जाता है। भगवान के साथ ही मानो सभी के तेज-बल-बुद्धि का लोप हो गया। विभीषण सुग्रीव, अंगद और मारुति के साथ ऋक्षराज के पास मिलने जा रहे थे कि बीच ही में वह भू-विवर मिल जाता है जिससे कि अहि गया था। ज्ञानवान ऋक्षराज सभी वीरों को सांत्वना देने लगे। उन्होंने कहा कि इस समय केवल विवेक-बुद्धि से प्रभु-प्राप्ति पर विचार किया जा सकता है। कोशलेश राम का महाकाल भी बाल तक बाँका नहीं कर सकता। मायावी अहि क्या कर सकता है ? मेरी इच्छा है कि जानकी-शोधकर्त्ता मारुति ही अब भगवान का शोध करने जाँय। भूमि, पाताल, जल और आकाश आदि सभी दुर्गम स्थलों में इनकी अबाध गति है। गुरु जनों की आज्ञा शिरोधार्य कर मरुत नन्दन बोले—"मुझे पूर्ण विश्वास है कि अवधेश कुमार जहाँ कहीं भी होंगे, वहाँ से मैं उन्हें अवश्य ले आऊँगा। आप लोगों से मेरी प्रार्थना है कि आवश्यकता पड़ने पर मेरी अनुपस्थिति में भी शत्रु से लोहा लेते मेरे आने की प्रतीक्षा करते रहेंगे।" इस प्रार्थना के साथ सभी की शुभ कामना ले उसी भू-मार्ग से क्षणमात्र में मारुति वितल-लोक की अहि-पुरी में जा पहुँचे। लोक परिसीमा पर उन्हें एक वानर वीर से भेंट हो जाती है। एक वानर को उस लोक में पुरी रक्षक के रूप से देख कर उन्हें आश्चर्य होता है। अपशब्द के साथ वह बानर गदा-प्रहार भी कर बैठता है। आप उसी गदा को तुरन्त हाथ में ले उसकी छाती पर प्रहार कर देते हैं। वह भूमि पर गिर पड़ता है, किन्तु तुरन्त फिर उठकर मुष्टिका युद्ध आरम्भ कर देता है। आपस

में कुछ देर तक मुष्टिका युद्ध होने पर मारुति उसे अपने लांगूल में लपेट कर घुमाते हुए भूमि पर पटक देते हैं। कुछ क्षण मूर्च्छा के बाद वह परास्त हो दीनदशा में मारुति के चरणों में गिर कर क्षमा माँगते हुए पूछता है कि आप कौन हैं, कहाँ से और किस कारण वशात् यहाँ पधारे हैं। उसने कहा कि आज तक जीवन में मुझे परास्त करने वाला कोई नहीं मिला था। यह सुनकर हनुमान ने अपना परिचय दे दिया और बताया कि राम-लक्ष्मण को यहाँ का अधिपति अहि राक्षस चोरी से शयनावस्था में उठा ले आया है। अतएव प्रभु को खोज कर ले जाने तथा दुष्ट को यथाविधि दण्ड देने के लिए ही मैं आया हूँ। इतना सुनते ही वह कपिवीर मारुति के चरणों में गिर पड़ा और अतीव विनम्रता-पूर्वक बोला कि आप मेरे जन्मदाता पिता हैं और मैं मकरध्वज नामक आपका एकमात्र बेटा हूँ। मारुति कुछ कहना ही चाहते थे कि मकरध्वज स्वयं बोल उठा—"आप अखंड ब्रह्मचारी होने के कारण पिता कहलाने में लेश भी कलंक का अनुभव नहीं करें। जगत जानता है कि स्वप्न में भी आपने किसी नारी की कामना नहीं की। मैं आपके श्रम-स्वेद से उत्पन्न हुआ। लङ्का-दहन के पश्चात् आप समुद्र में कूद कर पूँछ की आग बुझाने लगे। तभी अंग-प्रक्षालन करते समय जो श्रम-सीकर गिरा उसे मेरी माता एक मकरी ने पान कर लिया। उसीसे मेरा जन्म हुआ और आज मैं यहाँ का शक्तिशाली लोक सीमा-रक्षक बना हूँ। मेरी स्वीकृति के बिना कोई भी व्यक्ति इस सीमा के भीतर प्रवेश कर सकने का अधिकारी नहीं हो सकता। कर्त्तव्य पालन वशात् ही अपरिचित अवस्था में आप से मुझे लोहा लेना पड़ा। आपके दर्शन से आज मैं अपने को परम सौभाग्यशाली मान रहा हूँ। अब आप मुझ पर कृपा करें और पुत्र-रूप में मुझे स्वीकार करें।

मारुति मकरध्वज की निश्छल वाणी से प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा कि यदि तुम पितृ-स्नेह चाहते हो तो असत् का परित्याग एवं धर्म का अनुगमन करो। अधर्म-मार्गी पुत्र की कल्पना भी मेरे लिए असह्य है। मकरध्वज के पितृ धर्मानुरागी बनने के के व्रत से मारुति पूर्ण आश्वस्त हो गये। उन्होंने कहा कि अहि का मरण मेरे हाथों से निश्चित है। यहाँ का राज्याधिकार तुम्हारे हाथों में रहेगा। अतः मेरे आज्ञानु-सार अब तुम यहाँ तब तक शांत बैठे रहो जब तक कि मैं कार्य सम्पन्न न कर लूँ।

मकरध्वज ने पितृ-चरणों में प्रणाम कर आज्ञा शिरोधार्य कर ली। मारुति सहर्ष वहाँ से प्रस्थान कर अपने कार्य में पुनः संलग्न हो गये। वितल लोक का अग्रभाग वनारण्य से सुरम्य मनोहर एवं कैलाश के समान सुशोभित हो रहा था। भोगावती नदी के तट पर अनेक दीर्घजीवी ब्रह्मर्षि कमलासन लगाये ब्रह्मोपासना में लीन थे। सभी निश्छल, गुणी, उदार, सच्चरित्र और कर्त्तव्यशील प्रतीत हो रहे थे। वह महर्षि कपिल का आश्रम था। कपिल को अभिवादन कर मारुति आगे की ओर वहाँ से एक योजन दूर स्वर्ण पुरी-सी अतीव सुन्दर-विचित्र वैभव-सम्पन्न अहि की राजधानी में जा पहुँचे। वे भगवान का पता लगाने के लिए एक सरोवर के किनारे के वृक्ष पर लघु वानर रूप में जा बैठे। एक बार विहंगम दृष्टि से चारों ओर के दृश्यों पर नजर डाल कर वे सरोवर पर आने जानेवाले स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक वार्त्तालाप सतर्कता से सुनने लग गये। सभी वर्ग के लोग आपस में आश्चर्य-चकित होकर यही कह रहे थे कि आज जीवन में पहली बार यहाँ वृक्ष पर बैठा वानर दिखाई दे रहा है। यह आया कहाँ से ? पेड़ के पास ही बैठा किसी वृद्धा नारी ने चारो ओर सतर्क दृष्टि डाल कर धीरे से कहा कि इस वानर को देख कर आज पुरानी बात याद आ गई है। उसने स्त्रियों से कहा कि मेरी बात को गुप्त ही रखना, अन्यथा प्राण-भय है। राजा अहि ने जब घोर तपश्चर्या से प्रसन्न कर कामदा देवी से कई वरदान माँगे, उस समय महादेवी ने आशीर्वाद में कहा था कि अमर बनाना मेरी शक्ति से परे है, तू देवों से अजेय रहेगा, किन्तु यदि मानव-वानर से उलझेगा तो तेरा विनाश निश्चित है। मानव के व्याज से एक महावानर के द्वारा तू मारा जायेगा। उस महादेवी की कृपा से ही अहिराज सर्वाधिपति और ऐश्वर्यवान है। किन्तु जब से अनीति पथ पर अग्रसर हुआ है, उसका विनाशकाल अब प्रत्यक्ष दीख रहा है। पूर्वरात्रि में ही यह भूलोक से दो राजकुमार मानव वीर को सोते हुए उठा लाया है। इससे देवी के कथनानुसार वानर-मनुज दोनों को ही यहाँ देख कर इसका कुशल मुझे नहीं दीख रहा है। इतना कह वह वृद्धा उठकर वहाँ से चली गई। मारुति मन ही मन इस शुभ समाचार से प्रसन्न हो रहे थे। कुछ देर बाद स्त्रियों का एक दूसरा दल बगल में स्वर्ण कलश लिए जल भरने वहाँ आ पहुँचा। सभी सुन्दरी थीं, जिनमें एक राजमहल की दासी भी थी। सरोवर के घाट पर बैठने पर

पुरनारियों ने उससे पूछा—बहन, आज राजमन्दिर में बड़े धूमधाम से किस वृहद मंगलोत्सव का आयोजन हो रहा है ? राजदासी बोली—बहनो, राजमहल के अन्तरंग की बातें ही गुप्त एवं रहस्यमय होती हैं। बाहर प्रकाशित करते डर लगता है। आज राक्षसराज अहि भूलोक से श्यामल-गौर दो मानवीय वीरों का अपहरण कर ले आया है। वे राजमहल में बन्दी हैं। मुझे सेवा के लिए उन्हीं के पास नियुक्त किया गया है। सुन रही हूँ आज मध्याह्न में महादेवी की महापूजा में राक्षसेन्द्र इन दोनों की बलि देनेवाले हैं। इसी के उपलक्ष्य में सारे नगर में मंगलोत्सव मनाये जा रहे हैं। आलौकिक सुन्दर ऐसे महापुरुषों की जीवनलीला दो चार घड़ियों में समाप्त हो जायगी। मेरा हृदय व्याकुल हो उठा है। मैं तो देवी से प्रार्थना करती हूँ कि वे इस क्रूर राक्षस से किसी भी प्रकार दोनो वीरों के प्राणों की रक्षा करें। उन वीरों से कुछ बात भी करना मेरे लिए कठिन हो रहा है। उस राजप्रसाद में कड़े प्रबन्ध से किसी का भी प्रवेश दुर्गम है। इतना कह कर वह विलम्ब भय से शीघ्र जल कलश लेकर चली गई। इसी प्रकार अन्य स्त्रियाँ भी संतप्त हृदय से अपने-अपने घर को चली गईं। सारे रहस्यमय समाचारों से परिचित होते ही मारुति तुरन्त वहाँ से मक्खी के रूप में प्रभु के पास जा पहुँचे। सर्व प्रथम उन्हें मोहनिद्रा-मुक्त किया। मायामयी निद्रा से जाग कर अनुज-सहित स्वयं को अज्ञात राजप्रासाद में हनुमान को सामने पाकर राम चकित रह गये। कपि ने राक्षस की दुष्टता तथा अहि पुरी में आने का सारा कारण सुना दिया। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा कि आपकी माया का कोई पार ही नहीं पा सकता। वास्तव में आपकी मानवीय लीला मोहमयी और परमाद्भुत है। यहाँ आपका आगमन ही पापाचारी अहि के विनाश का कारण बननेवाला है। अब आप यहाँ मात्र वानरी-क्रीड़ा का आनन्द लेकर थोड़ा मनोरंजन कर लें। कपि ने बताया कि आज मध्याह्न में अहि महादेवी की पूजा में आप दोनों को बलि देने का आयोजन कर रहा है। यहाँ की अधीश्वरी कामदा देवी से मिल लेता हूँ। यदि वे अनुकूल न हुईं तो देवी सहित मंदिर को ही उखाड़ कर शीघ्र ही महासागर में समाविस्थ कर दूँगा। राम की स्वीकृति लेकर वे मक्षिका रूप में मन्दिर जा पहुँचे। उस समय वहाँ की शोभा देखते ही बन रही थी। चारों ओर पुष्प सज्जित बन्दनवार लग रहे थे। नैवेद्यों में एक से एक प्रकार के मधु,

मेवा, फल, और मिष्टान्न रखे थे। बलि-प्रदान के लिए विशाल और भयानक यूप के पास असंख्य भेड़, बकरे, भैंसे तथा अन्य पशु बँधे थे। देवी के सामने विजय घंट, मृदंग आदि अद्‌भुत वाद्य यन्त्रों के साथ भक्त गण नृत्य गीत में लीन हो रहे थे। दर्शनार्थियों में आनेवाले हजारों लोग ऐसे थे जो हर्ष और विषाद की भावनाओं से वहाँ सम्मिलित हो रहे थे।

अहि-वध—देवार्चन के समय मारुति महादेवी के कान के पास जाकर बोले—"महादेवी, क्या इस घृणित कार्य में आप भी सम्बद्ध हैं या एक मात्र आपके उपासक अहि की ही बुद्धि विनाश-पथ पर अग्रसर है? मैं आज इसके साथ ही इसका वंश निर्मूल कर देने के लिए संकल्प लेकर आया हूँ। देवी बोलीं—वायुनन्दन, श्री राघव एवं आपके आगमन से यह लोकभूमि पुण्यमयी हो गई। मैं स्वतः स्वागत करती हूँ। मदान्ध अहि अपने विपुल पापों के वशीभूत होकर ही कुमार्गगामी बना है। इसका संकेत पूर्व ही मैं वरदान के समय कर चुकी हूँ। आप ही इसके वध में प्रधान कारण होंगे। पूजनोत्सव के अवसर पर इस दुष्ट का वध हो सकता है। मैं सरल उपाय बता रही हूँ। इसके अनुसार आप और राम दोनो ही यथा समय कार्य करने की कृपा करेंगे। वह यह है कि मेरे पूजनोपरान्त दोनों महाविभुओं को मेरे सामने लाकर जब अहि उनसे देवी को प्रणाम करने को कहे तो वे अपने अज्ञान के अभिनय से यहाँ की प्रणाम-प्रथा जानने के लिए पहले अहि द्वारा प्रणाम करवायें। जिस समय वह लोटकर प्रणाम-प्रदर्शन करे उसी क्षण आप प्रकट होकर मेरे कर-स्थित खंडा से उसकी गरदन काटकर दो टुकड़े कर देंगे। देवी के आदेशानुसार कपिराज उनके पुष्पहार में छिपे पूजनकार्यों को सावधानी से देख रहे थे। राजाज्ञा से विशिष्ट सामन्त सेनाधिपतियों के संरक्षण में सानुज भगवान भी आ पधारते हैं। सहस्रों पशुओं के बलिदान के बाद अहि द्वारा दोनों भाइयों को देवी के सम्मुख साष्टांग प्रणाम की आज्ञा दी जाती है। पूर्व निश्चित विचार से आज्ञा शिरोधार्य करते हुए सस्मित भगवान बोले—राक्षसराज, आपकी धर्मव्यवस्था और लोकप्रथा के अनुसार देवी को प्रणाम करने की विधि से मैं सर्वथा अपरिचित हूँ। अतः मेरे ज्ञान के लिए आप स्वतः प्रणाम करने की विधि पहले मुझे बता दें, फिर मैं भी उसी रूप से प्रणाम करने में सफल हो जाऊँगा। अन्यथा

अविधि प्रणाम से देव्यापराध का महान दोष होगा। दिखाने के लिए अहि जैसे ही भूमि पर अधोमुखी हो देवी के सामने लोटता है, वैसे ही महाविकराल रूप से प्रकट हो, महानाद से कूदकर कपिराज देवी के ही वितीक्ष्ण खंग से अहि की गर्दन पर प्रहार कर शिर को धड़ से अलग कर देते हैं। भूमि पर नाचते धड़ से रक्त के फुहारे फूट पड़ते हैं। खड्ग हस्त महाकाल रूप हनुमान हर्षातिरेक से दोनों भाइयों की परिक्रमा करते विशाल मन्दिर के प्रांगण में नृत्य करने लगते हैं। इस अघटित दृश्य में महादेवी भी अपनी प्रमुख चौसठ महायोगिनियों के साथ वहाँ प्रकट हो जय-ध्वनि से उनकी चारों ओर नृत्य-लीला करने लगती हैं। प्रधान योगिनियाँ भी अपनी अनुगामिनियों के साथ रक्त-प्रवाह को खप्परों में भर-भर कर अपनी दीर्घ कालीन प्यास बुझाने लग जाती हैं। वे सब महादेवी के साथ चारों ओर आनन्द क्रीड़ा में निमग्न हो रही थीं।

तीनो लोकों में आनन्द छा गया। अहि की गर्भवती राजरानी कुन्दिनी तो स्वामी की मृत्यु के समाचार से क्रोध में पागल-सी हो गई। वह समझ नहीं पायी कि किस अपराध से अपने सेवक के प्रतिकूल और किस गुणशक्ति भक्ति से प्रभावित महादेवी नर-वानर के अनुकूल कल्याणकारिणी बन गईं? आक्रोश में ही उसने सेनाधिकारियों को सेना के साथ शस्त्र सुसज्जित कर शत्रु वानर को मन्दिर में ही चारों ओर से घेर लेने की कठोर आज्ञा दे दी। रानी के साथ ही असंख्य हाथी घोड़ों पर सवार राक्षस वीरों ने काले मेघों के समान मदोन्मत्त होकर गरजते कूदते हनुमान को ही लक्षित कर मारो-मारो पकड़ो-पकड़ो शब्दों से आक्रमण कर दिया। इधर महावीर हनुमान पहले ही से राजतंत्र की प्रतिक्रिया देखने के लिए प्रस्तुत थे। उन्होंने आक्रमण करनेवाले योद्धाओं का संहार आरम्भ कर दिया। पदाघात और मुष्टिप्रहार से अल्पकाल में ही राक्षसी-सेना में हाहाकार मच गया। सैकडों राक्षसों को लांगूल में एक साथ ही लपेट कर वे आकाश में उछाल कर ऐसा पटकते थे कि तत्क्षण उनका प्राणान्त हो जाता था। नगर की सारी स्त्रियाँ उनके गर्जन से ही मूर्च्छित हो गयीं। इसी बीच अहि का प्रबल पुत्र महि आ गया। चार मुख और आठ भुजावाला महि बड़ा दुर्धर्ष था। उसकी मा ने उसी काल उसका प्रसव किया। यह प्रसव असामयिक था। अहि की पत्नी कपि को मारने जा रही थी कि इसी बीच उनके गर्जन से मूर्च्छित हो गयी और आतङ्क के

कारण उसका गर्भपात हो गया। इस प्रकार असमय उत्पन्न वह बालक भूमिष्ठ होते ही पितृवैरी पर टूट पड़ा। वह कपि पर मुष्टिका-प्रहार कर रहा था। हनुमान उसके सभी आक्रमणात्मक दाँव-पेचों से बचते जा रहे थे, किन्तु महि को पकड़ पाने में उन्हें कठिनाई हो रही थी। गर्भ जनित मलों के आवरणों से भरा सचिक्कण शरीर कपिराज की पकड़ से बराबर छिटक जाया करता था। मारुति ने अपने पिता का स्मरण किया। उन्होंने तत्काल वेगमयी धूल भरी आँधी बहाकर महि के शरीर को धूल धूसरित और शुष्क कर दिया। इस कार्य के सम्पन्न होते ही हनुमान ने तुरन्त एक दाँव में ही अपने वज्र हस्तों से महि का पैर पकड़ कर चारों ओर घुमाते हुए भूमि पर पटक दिया। उसके शरीर की हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं और उसने प्राण छोड़ दिया। देवताओं ने कपि पर पुष्प वृष्टि की। परम दुष्ट के अहि को हनुमान ने अपने किये का उचित फल प्रदान किया। उन्होंने अपने स्वेदज पुत्र मकरध्वज को प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया और उनकी आज्ञा से धर्मनिष्ठता की प्रतिक्षा कराकर उसे वितल लोक का एक मात्र राज्याधिपति बना दिया। वहाँ की सारी धर्मानुरागिणी प्रजा प्रसन्न होकर हनुमान की जयध्वनि करने लगी।

वहाँ की अधीश्वरी महादेवी पुनः प्रकट होकर बोलीं—"कपीश, इस लोक में अब मेरी पूजा कौन करेगा ?" अभिवादन करते हुए मारुति बोले—"जगदम्बिके, आप तो ब्रह्मांड की अधीश्वरी हैं, तथापि आज से मकरध्वज द्वारा ही आप सात्विक स्वरूप से समाराधित एवं सम्पूजित होंगी। आप अपनी कल्याणमयी दृष्टि से इसका धर्म-संरक्षण करती रहें। दुष्ट-वध कार्य में आपके सहयोग के लिए मैं सदैव आभारी रहूँगा। धर्म-राज्य स्थापित कर और दोनो भाइयों को कंधे पर उठा कर हनुमान विवर-मार्ग से ही पल भर में ही लङ्का आ पहुँचे। हनुमान के सिंहनाद से एवं सानुज प्रभु के दर्शन से सारी वानर -भालु सेना हर्षातिरेक से उन्मत्त हो गयी। सुग्रीव, अंगद, जाम्बवन्त, विभीषण आदि सभी विशिष्ट वीर हनुमान को गले से लगा कर उनकी प्रशंसा करने लगे। वह दृश्य बड़ा ही हृदय-द्रावक था। राम-दल में चारों ओर असंख्य वीरों के गगन-व्यापी सिंहनाद से लङ्का में प्रतिकूल महाभयङ्कर मरणासन्न शोक और चिन्ता के घोर बादल छा गये थे। उसी समय पाताल से आगत किसी दूत-मुख से अहि-महि

का हनुमान द्वारा मरण समाचार सुनकर रावण अर्धमृत-सा हो गया। उसके मन की रही सही विजय की आशा भी धूल में मिल गयी। उसके सामने मरने के सिवा अब कोई रास्ता ही नहीं था।

लङ्का युद्ध में आपका प्रताप—मेघनाद इन्द्रजीत हो जाने से सुप्रसिद्ध वीर बन गया था, किन्तु अशोक वन के मुष्टि-प्रहार से फिर रण-मैदान में हनुमान के द्वारा बार-म्बार बुलाये जाने पर भी पूर्व मर्म के कारण पास आने की हिम्मत ही न पड़ी। रण में कभी किसी देव से भयभीत नहीं होने वाला अकंपन भी आपको युद्धरत देख भय से काँप गया। विशाल शरीर धारी अतिकाय तो डर से सूख ही जाता था। महाबली कुम्भकर्ण भी रणोन्मुख होते ही हनुमान की एक वज्र मुष्टि के प्रहार में ही आह कर विलग रह गया। वह आपके महाप्रताप से पूर्व परिचित था। जिस दसशीश ने कैलाश समेत महादेव को अपनी बीसों भुजाओं से उठाकर, तौलने के ब्याज से अपने भुजबल का खेल दिखाकर विश्व को चकित कर दिया था, जिसके उन्मत्त गर्जन से लोकपाल, दिग्गज, दानव, देव सभी भय से सहम जाते थे उसे भी हनुमान के मुष्टिका-प्रहार से भूमिष्ठ हो जाना पड़ा। अपनी बुद्धिविलक्षणता से यूथ के यूथ अमरणशील महायोद्धाओं को वे अपने दीर्घ लांगूल-पाशों में बाँध-बाँधकर आकाश की उस परिधि में फेंकते जाते थे जहाँ से पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति प्रतिबन्धित हो जाती है।

परमानन्दघन-विनोद भगवान श्री राघवेन्द्र अनुज लक्ष्मण के साथ संध्या समय युद्ध विश्रांति पर रण स्थल में भ्रमण के लिए जाते थे, जहाँ वे कितने ही प्रसिद्ध क्षत-विक्षत घायल पड़े, घूमते या मरे बड़े-बड़े महायोद्धाओं के नाम लेते हुए बन्धु को दिखलाते कहते थे कि इन सारे वीर राक्षसों को रण बाँकुरे वीर हनुमान ने ललकार कर मारा है।

गुप्त मृत्यु-बाण का सन्धान—रावण के सिर-बाहु बाणों द्वारा काटे जाने एवं उनके पुनः पैदा होते रहने पर भगवान श्री राम अतीव श्रमीभूत हो चिंतित हो गये। अतः उसके मृत्यु-रहस्य का पता लगाने के लिए सुग्रीव आदि विशिष्ट मंत्रीगणों के सन्मुख विभीषण से उन्होंने पूछा—रावण की मृत्यु अब तक क्यों नहीं हो पा रही हैं? इसका रहस्य क्या हो सकता है? विभीषण ने कहा—प्रभो, आपके इस प्रश्न से मुझे एक बड़ी पुरानी बात याद आ रही है। एक समय हम तीनों भाइयों के एक साथ घोर तपस्या

से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने दर्शन दिया। उस समय पितामह की आज्ञा से रावण ने यही याचना की कि वह किसी से भी नहीं मरे। उसने कहा कि उसे अमरत्व का वरदान के सिवा और कुछ नहीं चाहिये। विधिने कहा कि अमरत्व प्रदान की शक्ति किसी में नहीं है। हाँ, अमरत्व जैसा ज्ञानोपाय अवश्य बतलाया जा सकता है। पहला उपाय यह है कि तुम्हारी बीसो भुजाएँ और दसो सिर कट जाने पर भी तुम्हारी मृत्यु न हो सकेगी। यह सर्व प्रसिद्ध है कि रण-नीति से शत्रु प्रधानतः अपने विरोधी का सिर बाहु पहले ही काटने का प्रयास करता है। इस तरफ से तुम्हें कोई भय नहीं होगा। अतः तुम्हारे अमर हो सकने में शेष ही क्या रह गया? विश्व-विधान से जो जन्म लेता है उसका मरण भी ध्रुव है। मरण होने के अनेक कारण (कार्य कारण सम्बन्ध से) बनते रहते हैं। तुम्हारी मृत्युके कारण वानर मनुज बनेंगे यह निश्चित है। साथ ही तुम्हारी मृत्यु मेरे दिये हुए 'ब्रह्मबाण' से ही होगी। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी अस्त्र-शस्त्रादि से नहीं। यह मृत्युबाण जो मैं दे रहा हूँ सुरक्षा एवं गुप्तता से अपने पास रखना। जब तक यह बाण गुप्त रहेगा, तुम एक प्रकार से अजित, अमर-सा जीवन उपभोग करोगे। किन्तु जिस क्षण तुम्हारे पास से यह शत्रु के हाथ जायगा उसी क्षण अनर्थ हो जायगा और तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा। यह गुप्त रहस्य तुम्हारे सिवा अन्य के ज्ञान में न आने पावे। पितामह वह मृत्युबाण प्रदान कर और हम दोनो भाइयों को भी यथेप्सित वर दे, अन्तर्हित हो गये। उस बाण को राक्षसेन्द्र ने अपनी प्राणप्रिया मन्दोदरी की सुरक्षा में सौंप दिया। इसके बाद मन्दोदरी ने उस बाण को कहाँ किस प्रकार सुरक्षित कर रखा, यह किसी को ज्ञात नहीं है। किसी प्रकार यदि वह बाण प्राप्त हो जाय तो रावण-वध में देर न होगी। भगवान राम के मन में चिन्ता हो गयी। सभी निरुत्तर थे। तत्क्षण संकट मोचन हनुमान ने प्रभु के सम्मुख हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि वे यथासाध्य चेष्टा करेंगे। उन्होंने कहा कि मन्दोदरी भवन से मृत्युबाण ले आना कठिन कार्य नहीं है। मैं अभी ले आता हूँ। प्रभु की आज्ञा लेकर और उनके चरणों में प्रणाम कर, वायुकुमार पल मात्र में लङ्का गढ़ में जा पहुँचे। उन्होंने एक अति वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण कर लिया। श्वेत केश, लम्बी दाढ़ी, नमित कटि-मस्तक, दन्त-हीन मुख, भाल पर दिव्य भस्म और त्रिपुण्ड तथा गले में सूत्र के साथ रुद्राक्ष-माला और

बगल में कुशासन दबाये वे अत्यन्त प्रभावशाली प्रतीत हो रहे थे। ठहर-ठहर कर ऊँचे स्वरों में दसशीश महाराज की जय हो! विश्वजयी सम्राट की जय हो। इस प्रकार वे अपने दीर्घ बुढ़ापे की लड़खड़ाती वाणी से लोगों को आश्वस्त करते हुए वेधड़क सीधे मन्दोदरी के राज-महल में जा पहुँचे। राजरानी मन्दोदरी उस समय अपने दस हजार देव, यक्ष, गन्धर्व, नर-किन्नर, नागादि सौतों के साथ महागौरी के विशाल मन्दिर में अपने स्वामी की विजय कामना से आराधना-रत थीं। ऐसे ही समय अपने सम्मुख साक्षात रुद्र स्वरूप दिव्यातिदिव्य तेजपुञ्ज अति वृद्ध ब्राह्मण को आया देख मन्दोदरी चकित हो गयी। तुरन्त सौतों के साथ उठ कर उसने विप्रदेव को प्रणाम कर उन्हें रत्न सिंहासन पर बैठने की प्रार्थना की। किन्तु आजन्म बाल ब्रह्मचारी दूसरों का उपभुक्त आसन कैसे ग्रहण कर सकता था? अतः पूर्ण विवेकी विप्रदेव बगल में दबाये कुशासन को भूमि पर बिछा कर उसी पर बैठ गये। वे अपनी लड़खड़ाती वाणी में बोले—"लंकेश्वरी, हमारे लिए यही आसन सर्वथा उपयुक्त है। अस्तु! तुम्हारी आराधना से मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। तुम्हारे कल्याण की भावना ही से तो भगवान सदाशिव ने मुझे प्रेरणा देकर ऐसे शुभ समय में भेजा है। ज्योतिष शास्त्र में मेरी अबाध गति है। दीर्घकालीन तप के फलस्वरूप मैंने इसे अर्जित किया है।

इतना कह कर और कुछ क्षण ध्यानस्त होकर फिर बोले कि इस समय नर-वानरों में घोर युद्ध चल रहा है। मेरी गणना से यह निश्चित है कि इस युद्ध में लंकेश्वर का किसी प्रकार अकल्याण होने की आशंका नहीं है। तुम्हारे पास जो गुप्त वस्तु है उसके कारण राजा निर्भय ही रहेगा। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि एक राम नहीं यदि ऐसे सहस्र राम भी लङ्का पर चढ़ आवें तो लंकेश्वर को क्या शङ्का? हे महारानी, निशाचर राज मेरे परम मित्र हैं। मैं यही शुभ कामना करता हूँ कि युद्ध में उन्हें किसी प्रकार का विषाद न हो। गूढ़ वाणी से रानी प्रभावित हो गयी। महाराज, आपके कथनानुसार मेरे पास ऐसी कौन-सी विशेष वस्तु है? ब्राह्मण देव ने कहा कि मेरी गणना से तुम्हारे पास की कोई भी वस्तु या बात छिपी नहीं है। बस संकेत में इतना ही कहता हूँ कि राक्षसराज के जीवन-मरण की संरक्षिणी एकमात्र तुम हो। ये दोनों तुम्हारे हाथ में हैं। अतएव मैं तुम्हें सावधान किये दे रहा हूँ। यह गुप्त रहस्य कहीं

किसी से प्रकट न होने पावे। इस प्रकार अपने सद्भाव का मन्दोदरी पर उपदेश जाल फेंक कर विप्रदेव तुरन्त हर्ष के साथ कुशासन लपेट कर चलने का उपक्रम करने लगे। विप्रदेव को जाने के लिए उद्यत देख कर मन्दोदरी पुनः उन्हें हाथ जोड़ कर रोकती हुई बोली कि आपकी गूढ़ वाणी से मैं भ्रमीभूत-सी हो रही हूँ। अर्थात् मेरे पास वह कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिससे स्वामी के जीवन-मरण का मेरे ही हाथों में संरक्षण है ? विप्रदेव ने कहा कि मुझ से अनावश्यक दुराव न करो। ज्योतिष की सहायता से मैं सब कुछ बता सकता हूँ। लङ्का में कौन वस्तु कहाँ है यह मुझे ज्ञात है। तुम ज्ञानवती और चतुरा हो, इसीलिए सब कुछ संकेत से ही बता दिया। और तुम समझ भी गयी हो। बेटी, चलते-चलते एक बात और तुम से कह देता हूँ कि यदि ब्रह्मा भी आकर इस सम्बन्ध में कुछ रहस्य जानना चाहें तो प्रकट न करना।

विप्रदेव के उत्तरोत्तर सुगूढ़ वचनों से प्रभावित राजरानी विस्मित हृदय से विचार करने लगी कि ये ज्योतिषी जी असाधारण ज्ञानवान हैं। इनसे कोई बात छिपी नहीं है। अधिक विवश करने पर कहीं शाप न दे बैठें। लगता है कि प्रेरणा देकर इन्हें महागौरी देवी ने ही यहाँ प्रेषित किया है। अतः ऐसे सर्वज्ञ महादयालु वृद्ध महात्मा से कुछ छिपाना अपराध है। विश्वासघात-सा होगा। अन्त में इस गम्भीर विचार के बाद मन्दोदरी स्वतः अपनी अन्तर भावना को सत्य स्वरूप में प्रकट करती हुई बोली—जब आप सर्वज्ञ हैं तब तो सब कुछ जानते ही हैं। अब आपसे क्या छिपाना ? वास्तव में वह दुर्लभ वस्तु बड़े यत्न से सुरक्षित है। इसका भेद मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। यह सुनते ही विप्रदेव ने कहा कि मैं तुम्हारे निश्छल वचनों से प्रसन्न हूँ। अस्तु; अब मैं जा रहा हूँ। भविष्य में तुम सावधान रहना। इतना कह वे दो-चार पग आगे बढ़े, फिर नाटकीय ढंग से अकस्मात डंडा खटखटाते हुए वापस आकर बोले—"राजेश्वरी, यद्यपि तुमने बड़ी सावधानी से वस्तु सुरक्षित कर रखी है, तथापि तुम्हारे भोले हृदय को देखते हुए तुम्हारी दृढ़ता पर मुझे पूर्ण विश्वास नहीं हो पा रहा है। इसका कारण यह है कि रामपक्षधारी विभीषण तुम्हारा विरोधी हो गया है। मुझे आशंका है कि ऐसा न हो कि वह किसी षडयंत्र के द्वारा तुम्हारे पास से वह वस्तु उड़ा ले जाय। मन्दोदरी ने कहा कि मुझे किसी से भी

अपहरण की आशंका नहीं है। जिस स्थल में स्वामी के प्राणों का रहस्य सुरक्षित है उसे विभीषण तो क्या, मेरे पुत्र भी नहीं जान सके हैं। आप जैसे परम हितैषी गुरुजन से दुराव ही क्या ? सामने के रत्नमय स्तम्भ में ही वह गुप्त वस्तु सुरक्षित है। रहस्य की बात सुनते ही विप्रदेव ने अट्टहास किया। वे वहाँ से अन्तर्धान हो गये और कुछ दूरी पर हनुमान रूप में कूद कर स्तम्भ पर वज्रमय पद-प्रहार किया। स्तम्भ के दो टुकड़े हो गये। उसके भीतर से मंजूषा में सुरक्षित मृत्युवाण लेकर पल मात्र में वे वहाँ से कूद कर दुर्ग पर जा पहुँचे। सभी सौतों के साथ मन्दोदरी लङ्का-दाहक हनुमान के इस कृत्य से अतीव भयभीत हो गयी और शोक मग्न हो गयी। जय-जय श्रीराम ध्वनि के साथ उधर हनुमान ने प्रभु-चरणों में प्रणाम कर वह ब्रह्मबाण समर्पित कर दिया। अति कृतज्ञ भगवान ने अनन्य सेवक के मस्तक पर वरद-हस्त रखा। समस्त वीर वानर और भालू परमानन्द में किलकारी मारते हुए उछल-उछल कर 'हनुमान की जय' कहते हुए नृत्य करने लगे। इस वाण के प्रताप से परवर्त्ती युद्ध में रावण निहत हो गया। उसके वंशजों में कोई भी जीवित नहीं रहा। पापी का नाश तो होता ही है।

राज नियम और लोक विधि से रावण-दाह संस्कारादि कर्म विभीषण द्वारा सम्पन्न करा, उन्हें राज्याभिषिक्त कर, मर्यादा पुरुषोत्तम राम समस्त सहयोगी वानरों और भालुओं के प्रति आभार प्रकट करने लगे। राम ने हनुमान को आदेश दिया कि शीघ्र ही जानकी के पास जाकर युद्ध में विजय तथा रावण-वध की पूरी कथा सुना आवें :—

जानक्यै सर्वमाख्याहि रावणस्य वधादिकम् ।
जानक्या प्रति वाक्यं मे शीघ्रमेव निवेदय ॥

—अध्यात्म रामायण

आज्ञा पाकर हनुमान ने गढ़ में प्रवेश किया। निशाचरियों ने अगवानी कर उन्हें सादर जानकी के पास पहुँचा दिया। दूर से ही प्रणाम करते देख, रघुपति दूत को जानकी ने पहचान प्रभु कृपा निकेत सहित अनुज कपि सैन्य का कुशल पूछती हैं। इस पर हनुमान बोले—सब विधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥ विभीषण अविचल राज लिया। उन्होंने कपि को पास बुलाकर सानुज राम का कुशल पूछा। कपि ने निवेदन किया कि सुग्रीव सहित विभीषण के सहयोग से सानुज कोशला-

पीश वानर सैनिकों के साथ पूर्ण कुशल हैं। दशसीस को समर में जीतकर तथा विभीषण को लङ्का का अविचल राज प्रदान कर प्रभु ने आपके प्रति कुशल समाचार देने एवं लेने के लिए मुझे भेजा है। कपि द्वारा स्वामी का सन्देश सुनकर मैथिली हर्षातिरेक से परमानन्द में विभोर हो उठीं। सीता ने कहा कि वत्स, तुमने पूर्व ऐसे यत्न किये जिससे वे शीघ्र लङ्का आये। अब ऐसा यत्न करो जिससे शीघ्र मैं श्रीराम का दर्शन प्राप्त करूँ। मारुतसुत ने तुरन्त प्रभु से जनकनन्दिनी का कुशल सुनाया। भानुकुल-भूषण की आज्ञा से अंगद-विभीषण के साथ जाकर लङ्का से सादर लीलामयी शक्ति सीता को लाकर उन्होंने राम से सम्मिलन करा दिया। रावण के पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर राम सपरिकर अयोध्या की ओर चल पड़े। वह कामगामी विमान चलते समय सबसे पहले लङ्का के रण-स्थल पर आया। राम ने सीता से युद्ध की सारी मुख्य घटनाओं का उल्लेख करते हुए यह कहा कि किस स्थल पर कौन वीर मारा गया। उन्होंने यह भी बताया कि किस वीर ने किस-किस प्रमुख राक्षस को मारा। वहाँ से पुष्पक विमान उत्तर की ओर चल पड़ा। सभी समुद्र सेतुबन्ध की शोभा निरखते हुए रामेश्वर पहुँचे। वहाँ नीचे भूतल पर सबके साथ उतर कर उन्होंने सिंधु स्नान कर रामेश्वर भगवान का पूजनादि किया।

अंजना का राम-दर्शन—रामेश्वर महादेव की पूजन के पश्चात् विमान आगे बढ़ने की तैयारी में ही था कि पवन कुमार के हृदय में माता अंजना को दैवयोगवशात् प्रभु का दर्शन कराने की तीव्र कामना जाग उठी। संकोचवश वे भगवान से कह भी नहीं सकते थे, किन्तु चिंतित और अनमने-से हो रहे थे। तभी भगवान ने स्वयं हँसते हुए पूछ दिया—"कपीश, तुम इस समय किस विचार में मग्न हो?" वास्तविक भावना को हृदय में छिपाते हुए हनुमान ने कहा—प्रभो! माता से मिले वर्षों हुए। मार्ग में जन्मस्थली पड़ते देख मातृ-दर्शन की इच्छा जग उठी। अतएव प्रभु यदि आज्ञा दें तो मैं दौड़कर उनके दर्शन कर शीघ्र ही वापस आकर आपसे आ मिलूँ। राम ने कहा कि ऐसे शुभ योग में हम सब तुम्हारी भाग्यशालिनी माता के दर्शन से वंचित क्यों रहें? तुम्हारे सहयोग से हमें भी परम लाभ होगा। ऐसा सुयोग भला फिर कब मिल सकेगा? यह सुनते ही मारुति आनन्दविभोर हो उठे। पुष्पक अंजना गिरि की ओर

चल पड़ा। उसे वहाँ पहुँचते और उतरते देर ही क्या लगती ? प्रभु के सपरिकर आगमन की सूचना माता को शीघ्र देने की भावना से कपि विमान से कूद पड़े। विमान के आने के पहले ही आप आकाश से ही छलाँग मार माँ के सम्मुख आ गये। अकस्मात् वियोगिनी माँ पुत्र को चरणों पर गिरते देख आनन्द विभोर हो उठी और उन्हें हृदय से लगा लिया। मारुति ने कहा—"माँ ! बालपन में मुझे तुमने जिन श्री रामचरणों में सेवा की दीक्षा दी थी वे ही कोशलपति राम, अनुज लक्ष्मण एवं बन्धुवर सुग्रीव, अंगद, ऋक्षराज आदि वीरों के साथ स्वयं आपसे मिलने आ रहे हैं। आनन्द चकित अंजना पूछ रही थी कि वे कहाँ हैं; चलो, मैं स्वतः मिलूँगी। इसी बीच प्रभु ने आकर उन्हें अभिवादन किया। उन्हें अभिवादन करते देख अंजना दौड़कर प्रभु के चरणों में लिपट गयी। सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान, नल और नीलादि वीरों ने आशीर्वाद ग्रहण किया। प्रकृतिस्थ होने पर वायु-पुत्र ने सीताहरण से लेकर भगवान द्वारा उसके वध तक की सारी कथा माता के सम्मुख सुना दी। सुनते ही अकस्मात माता अंजना की मुखाकृति क्रोध-शोक से आरक्त और कठोर हो गयी। इस अप्रत्याशित भाव-परिवर्तन से सभी स्तब्ध हो गये। मारुति मातृ-भ्रुकुटी-भङ्ग के भय से कम्पित हो उठे।

कथा समाप्त होते ही अंजना रोष भरी वाणी से बोली—"अरे कुल कलंकी, तुझ जैसे कायर, शक्ति विहीन को जन्म दे, और दूध पिला कर मैंने अपना जीवन व्यर्थ कर दिया, संसार में मुख दिखाने योग्य भी न रही। अपराधी के समान हनुमान जैसे महावीर पुत्र को नतमस्तक हो हृदय-वेधक वाग्बाणों को सहते देख सभी समाज आश्चर्य चकित हो रहा था। किसी को इस आक्रोश का वास्तविक रहस्य समझ में नहीं आ रहा था। वे समझ नहीं पा रहे थे कि माँ अपने बेटे हनुमान को किस अपराध पर, कौन-सा कठोर दण्ड देने जा रही है ? विश्व धर्म-नियामक भगवान श्री राम ही ऐसे समय में माता-पुत्र के अन्तस्थ रहस्य को समझ कर निछावर हो रहे थे। इधर अंजना कहती जा रही थी—"नीच, तूने किस साहस से मेरे सामने ये सारी बातें कह सुनायीं ? राम-सेवक होकर भी लङ्का के अशोक वन में मातेश्वरी सीता को रावण द्वारा प्रताड़ित तथा स्वामी वियोगाग्नि में परिदग्ध अवस्था में अपनी आँखों से पीड़ित देख कर भी कैसे वापस लौट आया ? क्या परनारी-अपहर्त्ता नीच रावण को तू एक कीट की

भाँति मार नहीं सकता था ? तेरे रहते समुद्र-सेतु से लेकर लङ्का रण-भूमि में रावण से युद्ध करने तक का सारा महान् श्रम आराध्य श्री प्रभु को उठाना पड़ा।

राम के प्रति अंजना की ऐसी भावमयी अगाध श्रद्धा के दर्शन से सभी वीर नत-मस्तक थे। माता की कठोर वाणी सुनकर भी आंजनेय किंचित मात्र विचलित हुए बिना उनके हृदय की वास्तविक भावना जान कर चरणों में गिर कर बोले—"जननी, आपकी वाणी सत्य है। आपकी मनःपीड़ा को मैं समझ रहा हूँ। किन्तु मुझे भी कुछ कहने का अवसर दें। कहीं भी आपकी दृष्टि से भरी कर्त्तव्य-निष्ठा में यदि त्रुटि हो तो श्री प्रभु चरणों की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं तुरन्त समुद्र में डूब मरूँगा। आपकी कृपा से तुच्छ रावण और लङ्का की तो बिसात ही क्या, ब्रह्मांड को भी कच्चे घड़े की भाँति हाथ से दबाकर चूर-चूर कर दे सकता हूँ। मेरु पर्वत को मूली की भाँति दो टुकड़े कर दे सकता हूँ। समुद्रोल्लंघन कर लङ्का जाने के समय आपकी ही इच्छा के अनुसार सब कुछ करने के लिए मैं सन्नद्ध हो गया था। किन्तु अकस्मात् आर्यवर ऋक्षराज ने मुझे रोकते हुए कहा कि यदि प्रभु आज्ञा के प्रतिकूल लङ्का विनाश जैसा कोई भी कार्य करोगे तो स्वामी-कीर्ति की अवमानना के दोषी बनोगे, क्योंकि रघुकूल मणि ने रावण को स्वतः बाणों से मार कर सीता को ले आने की प्रतिज्ञा है। अतः लङ्का जाकर जानकी का कुशल-संदेश मात्र लेकर वापस आ जाओ। स्वामी के त्रिलोक-धवलित यश-विजय कीर्ति में ही हम समस्त सेवक वानर वीरों की शोभा होगी। क्या मैंने स्वामी सेवाधर्म की रक्षा में ऐसा करके कोई अनुचित किया ? पुत्र की सारी विवेकपूर्ण बातें सुनकर अंजना पूर्ण आश्वस्त हो गयी और हनुमान को हर्ष से हृदय से लगाते हुए कहा तुम्हारा सारा कार्य सर्वथा उचित था। वास्तव में बुद्धि-बल की प्रशंसनीय उपयोगिता तभी है जब सेवक का सारा कार्य अपने स्वामी की भावना एवं आज्ञा के पूर्ण अनुकूल हो। यह सुनकर अंजना ने दुःख प्रकट किया कि बिना समझे बूझे भ्रम-वश उसने अपने सर्वगुण सम्पन्न वीर पुत्र के प्रति अनर्गल शब्द क्यों निकाले। लक्ष्मण के मन में आंजनेय की प्रशंसा में कहे गये शब्दों पर शंका उत्पन्न हो गयी। अंजना के शब्दों पर उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। उनके मुख पर अविश्वास की मुसकुराहट छा गयी। अंजना ने इसे ताड़ लिया। उसने कहा कि शीलवती साध्वी माताओं के सात्त्विक

स्तन्य में कितनी अपरिमित शक्ति है, इसका प्रत्यक्ष दर्शन मैं तुम्हें अभी करा देती हूँ। ऐसा कह कर अंजना ने अपने स्तन से एक दुग्ध धार सामने के विशाल पर्वत पर फेंकी। उस धार के वज्राघात से वह पर्वत भयङ्कर शब्दों से फट कर दो टुकड़ों में विभक्त हो गया। अंजना ने पुनः कहा—कुमार, हनुमान इसी दुग्ध-पान से परिपोषित हुए हैं। जीवन में सर्व प्रथम इस दिव्य और अद्भुत दर्शन से प्रभावित सुमित्रा नन्दन ने सलज्ज नतमस्तक हो अंजना से क्षमा-याचना की। साथ ही सभी वीरों ने एक स्वर से जय जयकार किया।

विदा की आज्ञा लेते समय हनुमान से उल्लास भरी माता ने कहा कि मेरी ओर से यही शुभाशीष है कि आजन्म अब अवध में सीताराम के सान्निध्य में रहकर सेवा करो, जिसके लिए मैंने तुम्हें जन्म दिया। सब ने वहाँ से प्रस्थान किया। मार्ग में श्री राम विभिन्न स्थानों का परिचय जानकी को देते जा रहे थे। शनैः शनैः पुष्पक प्रयाग-स्थित त्रिवेणी-संगम पर आ गया। वहाँ सब ने स्नान-पूजन के द्वारा शुचि होकर अयोध्या की ओर चलने का उपक्रम किया। वहाँ से भरद्वाज के आश्रम में जाने के पूर्व भगवान ने हनुमान से कहा कि अयोध्या जाकर भरत को आगमन का समाचार दे दो। वहाँ से सब का सारा कुशल संदेश शीघ्र ले आओ।

निषादराज को संदेश—वटु विप्रवेषधारी हनुमान ने शृङ्गवेरपुर की सीमा में आते ही देखा कि सैकड़ों की टोलियों में यत्र-तत्र वन में गुह-निषाद लोग राम-राम पुकारते हुए घूम रहे हैं। हनुमान ने कारण पूछा। उन्होंने कहा कि राम के आने की अवधि अति समीप है एवं उनका कोई समाचार नहीं मिला है। परम व्याकुल निषादराज के दुःख से व्यथित हो हम सब उन्हें जङ्गल में खोजने आये हैं। यह सुनते ही गद्गद् होकर मारुति बोले—श्री रामभक्तो, मैं स्वयं प्रभु की आज्ञा से उनके आगमन का संदेश तुम्हारे राजा को देने आया हूँ। इस शुभ समाचार से सभी आनन्द-पुलकित हो गये। हनुमान ने निषादराज से मिलकर प्रभु के आगमन की सूचना दे दी। दोनो प्रेम-पुलकित शरीर से एक दूसरे से मिलकर अतीव आनन्दित हुए और उनसे अनुमति लेकर अयोध्या की ओर चल पड़े।

नन्दिग्राम में भरत के सम्मुख—चौदह वर्ष की अवधि समाप्ति में सिर्फ एक दिन

ही रह गया था। प्रभु आगमन का कोई सूत्र प्राप्त नहीं हो रहा था। राम-वियोग से समस्त अवध नगर वासी अतीव आर्त्त और शंकाकुल हो रहे थे। भरत के नेत्रों और भुजाओं में बारम्बार स्फुरण हो रहा था। प्रभु के आगमन का शुभ संकेत था। भरत सोच रहे थे कि यदि अवधि बीत जाने पर भी प्रभु-वियोग में मेरे प्राण नहीं गये तो मेरे समान संसार में और कौन अधम होगा। इस तर्क की भयङ्कर लहरों में भरत डूबने ही वाले थे कि वायु नन्दन ने पोत के समान आकर उन्हें बचा लिया। नन्दिग्राम की पर्णशाला में श्रेणी-बद्ध मंत्रिगणों से युक्त, मुनि वेषधारी, ब्रह्मचारी, जटावल्कल-संयुक्त, कृशांगयष्ठि और प्रेम मूर्ति भरत को ध्यानस्थ और रामगुण कीर्तन में लीन देखकर हनुमान मन में अनन्त सुखों का अनुभव करते अतीव हर्ष से पुलकित हो उठे। जानकी एवं भरत की दशा में कोई पार्थक्य नहीं था। किन्तु जानकी की दशा पर आप जहाँ परम दुःखी हो उठे थे वहाँ भरत की दशा पर प्रेम में अतीव पुलकित हो उठे। हनुमान ने उनसे कहा कि जिनके वियोग में आप अहर्निश चिन्तन कर रहे हैं वे ही रघुकुल-तिलक, सुजन-सुखदाता एवं देवमुनि-त्राता राम आ रहे हैं। इन शब्दों को सुनते ही भरत सारे दुःख भूल गये। उन्होंने कहा कि हे कपि, राम-सम्मिलन के समान तुम्हारे दर्शन से मेरे सारे दुःख दूर हो गये। प्रेमातिरेक में वे बारम्बार प्रभु का और भी विस्तृत कुशल पूछने लगे। उन्होंने कहा कि जो अमूल्य सन्देश मुझे तुमने दिये हैं, इसके प्रत्यभिनन्दन में तुम्हें देने योग्य संसार में कोई वस्तु है ही नहीं।

बाल्मीकि रामायण में यहाँ कुछ और ही बातें दिखाई देती हैं। राम के संदेश पाकर आनन्दोपलक्ष्य में भरत ने हनुमान से कहा कि आज तुम जो भी अभिलषित वस्तु माँगो, मैं सहर्ष प्रदान करूँगा। मारुति को शांत देख, भरत स्वेच्छा से ही हनुमान को एक लाख सवत्सा-स्वर्णालंकृत कामधेनु गौ, एक सौ ग्राम, अनेकानेक स्वर्ण रत्नादि सहित परम सुन्दरी १६ कुमारियाँ भेंट में देते हैं। किन्तु मारुति द्वारा इनके स्वीकार किये जाने का वहाँ कोई उल्लेख नहीं है। बंगला की कृत्तिवास रामायण में भी ठीक इसी प्रकार भरत द्वारा और भी अधिक वस्तुओं के दिये जाने का वर्णन है। वहाँ कथा भी अधिक ललित और भावपूर्ण लक्षित होती है। भरत की स्नेहभरी सारी बातें सुनकर हनुमान विनम्र वाणी से बोले—प्रभो, आपके ज्येष्ठ भ्रातृवर श्री राघवेन्द्र मेरे परमाराध्य

सद्‌गुरु हैं, जिनके श्री चरणों में समर्पित मैं आजन्म निःशुल्क दास हो चुका हूँ। अतः उनकी आज्ञा के विना कोई भी वस्तु ग्रहण करने का अधिकारी ही मैं कैसे हो सकता हूँ ? हाँ, यदि अपने श्री चरणों का रज मेरे मस्तक पर आप डाल दें तो आपका महान कृपा-दान होगा। मारुति के इस अप्रतिम त्याग एवं प्रभु चरणानुराग से परमाकर्षित भरत उठकर मारुति को हृदय से लगा लेते हैं।

इस प्रसंग में यह प्रश्न उठता है कि आखिर अन्यान्य वस्तुओं के साथ मारुति को १६ कन्याएँ क्यों दी गयीं ? उसका स्पष्टीकरण यह है कि पूर्व वर्णित पुराणों एवं रुद्रयामल तंत्रों के अनुसार हनुमान चन्द्र स्वरूप भी हैं। अतएव वे सोलह कन्याएँ उनकी अंगभूत सोलह कलाएँ ही थीं, और कुछ नहीं। यह विषय भी ध्यान देने योग्य है कि हनुमान ने दी हुई कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं की। पवन कुमार ने शीघ्र ही लौट कर राम को भरत और अयोध्यानिवासियों का सारा समाचार सुना दिया।

राज्योत्सव पर भेंट—कुल गुरु ब्रह्मर्षि वसिष्ठ की आज्ञा से श्री राम के राज्याभिषेक की तैयारी आरम्भ हो गयी। त्रिलोक में यह शुभ समाचार पवन-गति से फैल गया। भू लोक के—"राम-तिलक सुनि दीप-दीप के नृप आये उपहार लिए" (गी०) समस्त द्वीप-द्वीपान्तरों के राजागण राज्याभिषेक का समाचार सुनते ही अपने-अपने देशो के विशिष्ट उपहार लिये यथा समय अवध नगरी में चारों ओर से आने लगे थे। इस दृश्य से मारुति के हृदय में अकस्मात् यह भावना जागती है कि प्रभु के अभिषेकोत्सव के समय भेंट विहीन हाथ बाँधे क्या मैं ही अकेला रहूँगा ? फिर दिखावे के लिए तथा किसी की समानता में आने वाली कोई सांसारिक वस्तु भेंट में धर भी दूँ तो मेरी विशिष्टता ही क्या होगी ? हनुमान ऐसी भेंट करना चाहते हैं जो जग से निराली और मातेश्वरी सहित प्रभु को भी परम प्रिय हो, किन्तु कठिनाई यह है कि दूसरे ही दिन राज्योत्सव है। समय कम है। कुछ सोचकर वे वायुगति से ब्रह्मलोक जा पहुँचे। अप्रत्याशित मारुति को देख विधि ने तुरन्त आदर सम्मान के साथ आगमन का कारण पूछा। राम-राज्याभिषेक का समाचार देते हुए मारुति बोले—पितामह, प्रभु को सर्वथा नवीन भेंट देने की कामना से प्रेरित होकर आपके पास आना पड़ा। आप जग-प्रपंच के रचयिता हैं। अतः आप शीघ्र मेरी जाति-प्रियता के आधार से सीताराम के नाम से,

जो दोनों को ही परम प्रिय हों ऐसे दो निराले फल बना कर दें। ब्रह्मा मारुति के हठी स्वभाव से भली-भाँति परिचित थे। अतः उन्होंने उसी समय श्याम रंग में एक सीताफल तथा पीतरक्त मिश्रित दूसरा रामफल नाम से बीज युक्त फल निर्माण कर दिया। ये दोनों फल मधु-मिश्री संयुक्त अतीव स्वाद पूर्ण और नवीन थे। उन्हें प्राप्त कर हनुमान हर्ष से भर उठे।

इधर भगवान के परम प्रिय सेवक एवं अवध वासियों के प्राणप्रिय सखा हनुमान के अचानक गायब हो जाने से चारों ओर खलबली मच जाती है। लोगों के मन में अनेक प्रकार की तर्कनाएँ होने लगती हैं। राम अपने प्रिय सेवक के लिए चिन्तित हो जाते हैं। उसी समय सुदूर आकाश से बादलों को चीरते हुए पवन कुमार को आते देख सारे अवधवासी आनन्द से विभोर हो उठते हैं। भूतल पर आते ही प्रभु एवं मातेश्वरी के सम्मुख सीताराम नामक दोनों फल अर्पण कर श्री चरणों में लोट जाते हैं। सभी उपहारों में इसी उपहार को उत्कृष्टतम माना गया। वे दोनो अमृतोपम फल अक्षय थे।

माता जानकी को भोजन कराते भारी पड़ा—राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में एक दिन भगवान ने अवध में समस्त विजय-सहायक सखाओं के संयुक्त प्रीतिभोज का आयोजन किया। पाक-कार्य में अन्तःपुर की पाककुशलता सारी माताएँ भी सहायिका थीं। परिचारकों द्वारा विशाल भवन में यथायोग्य पूर्व व्यवस्थित आसनों पर तथा समय श्री राघवेन्द्र, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान एवं लंकेश विभीषण आदि समस्त परिकरों के साथ पधारे। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न आदि वीरों के सादर यथा स्थान बैठ जाने पर कौशल्या अम्बा की आज्ञा से भोजनारम्भ होता है। सारी माताएँ समस्त वीरो को अपने हाथों से पदार्थ परोसने का कार्य अतीव वात्सल्य वश कर रही थीं। एक ओर जहाँ सामूहिक भोजन समारम्भ था वहीं दूसरी ओर माता जानकी ने उसी अवसर पर परमैकांतिक लाड़िले हनुमान को अपने ही रंगमहल में स्वतः भोजन कराने की इच्छा निश्चित की थी। समस्त पदार्थ पूर्व से ही अपने पास मँगा लिये गये थे। यथा समय हनुमान मातृभवन में पहुँच कर चरणों में अभिवादन कर भूमि पर ही कुशासन पर बैठ जाते है। आज वे हर्ष में फूले नहीं समा रहे थे। स्वर्णमय विशाल थाल में छप्पन

पक्वान्नों सहित माता ने इनकी प्रियता में एक बड़े रत्न पात्र में दूधपाक और अन्यान्य वस्तुओं को यथेष्ट मात्रा में परोस कर भोजनारम्भ की आज्ञा दी। साधारणतः लोक शास्त्र दोनों में प्रसिद्ध है कि जो अमृतमय स्वाद माँ के हाथ से भोजन में है वह अन्यत्र नहीं है। कपि भूखे भिखारी की भाँति अर्धोन्मीलित आँखों से चटाचट सारे पात्र साफ कर गये। जनकनन्दिनी पुनः पुनः सभी वस्तुएँ परोस कर भण्डार घर में जाती हैं और लौट कर देखती हैं तो थाल साफ है। भण्डार समाप्त होने पर आया। माता जानकी हनुमान की इस भोजन लीला से चकित हो गयी। सीता एकांत में जा विचार करने लगी कि मैं आज एक कपि को भोजन से तृप्त न करा सकने में हृदय से हार रही हूँ ? यह परमाश्चर्य की बात है। पता नहीं ये कपि रूप में कौन-से विशिष्ट देव हैं। अतः मारुति को पुनः पदार्थ परोस कर शीघ्र ही भीतर जा, हाथ-पैर धोकर पद्मासन से बैठ कर वे ध्यान करने लगती हैं। उन्हें हनुमान साक्षात् महारुद्र स्वरूप ही भोजन करते दीख पड़ते हैं। मारुति के वास्तविक रूप के दर्शन होते ही स्वस्थ हो आप विचार करने लगीं कि भला प्रलय काल में सारे संसार को निगल जाने वाले, महाकाल के भी काल रूप हनुमान के उदर की तृप्ति इन व्यंजनों से किस प्रकार हो सकती है ? कुछ सोच कर उन्होंने देखा कि अब इनकी तृप्ति का एक मात्र उपाय यही है कि इनके भोजन पर तुलसी-दल डाल कर परोसा जाय और 'ओम् नमः शिवाय' कह कर इनके ऊपर अभिषेक किया जाय। ऐसा ही किया गया। कपि तृप्त हो गये और आशीर्वाद लेकर प्रस्थान किया।

मणिमाल या प्रिय सिन्दूर—राम के राज्याभिषेकोत्सव पर प्रभु के चरणों में प्रणाम कर विभीषण ने एक दिव्य तेजोमय रत्न-हार उपहार में अर्पित किया, जिसे रावण ने सुर-नर-नाग-यक्षादि को जीते हुए मुकुटों की मणियों से बनाया था। उसकी दिव्य किरणों से सारा दरबार चकाचौंध हो उठा था। प्रभु के करकमलों में स्वीकृत मणिमाल देख कर लंकेश इसलिए प्रमुदित हो रहे थे कि पुष्पक विमान में भेंट स्वरूप प्राप्त उनकी सारी मणि-वसनादि वस्तुओं को भगवान ने स्वयं ग्रहण न कर वानर-भालु, सैनिकों में बँटवा दिया था। आज उपहार-ग्रहण से वे धन्य हो गये। चारों ओर एक बार सतृष्ण समाज पर आँखें फेरते प्रभु ने वह हार लीला-नायिका श्री प्रिया जी को

दे दिया। सीता ने अनुभव किया कि एकमात्र परम विरागी हनुमान को छोड़ कर इस हार ने तो सारे समाज में महामोह जाल फैला दिया है। अतः इसे दूर करने के लिए जगदम्बा सीता ने भगवान की ओर अवलोकन कर सर्वप्रिय एवं अनन्य सेवक मारुति को प्रदान कर दिया। प्रसाद जान पहले तो मारुति प्रसन्न हुए, फिर वे गले से हार उतार कर विशेष ध्यान से देखने के बाद एक-एक मणि को तोड़ने लगे। प्रत्येक मणि-रत्न में जो कुछ खोज रहे थे वह न मिलने पर उसे भूमि पर गिराते जाने लगे। इस परमाश्चर्य दृश्य से क्षोभ से चारों ओर हाहाकार व्याप्त हो गया, पर अनुशासित दरबार में सभी खिन्नचित्त होने पर भी शांत थे। सर्वाधिक अशांति तो लंकेश विभीषण के हृदय में पैदा हो गई थी। भगवान द्वारा उपहार स्वीकृत होने का विभीषण के हृदय में जो गर्व था उसका प्रत्यक्षतः भरे दरबार में हनुमान द्वारा इस प्रकार अपमान होना मानों वज्रप्रहार-सा आघात था। सुग्रीव ने प्रश्नात्मक दृष्टि से यह जानना चाहा कि पवनकुमार, यह क्या कर रहे हो ? हनुमान ने विनम्रता-पूर्वक यह बताया कि मैं खोज रहा हूँ कि इसमें मेरे आराध्य राम का नाम अंकित है या नहीं। राम-नाम-रहित रत्न मेरे लिए अत्यन्त तुच्छ है। यह सुनकर सबके मन में कपि के प्रति अपार श्रद्धा हो गयी। विभीषण ने कुछ व्यंग्यात्मक रूप में कहा कि तब तो आपके हृदय में प्रभु मूर्ति होनी चाहिए एवं समस्त रोमांग नाम मय होना चाहिये। हनुमान चौंक कर रत्नहार एक ओर डालते बोले कि निश्चय मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा ही है। अविरल चिंतन ही व्यक्ति विशेष को तन्मयता में आराध्य रूप बना देता है। साधारण लोक में एक भृङ्गी कीट भी सामान्य कीड़े को स्वकीय रूप प्रदान कर देता है तब यह कौन-सी बड़ी बात है। किन्तु प्रत्यक्षस्य किम् मिट्टी से बनाये अपने छोटे से बिल में किसी कीड़े को उसमें बन्धकर जबकि अपने गुञ्जार से ही उसे अपना रूप बना लेता है। अतः लंकेश ! अपने प्रभु चिन्तन में कमी मैंने इसकी परीक्षा नहीं की, तथापि तुम्हारे कथन पर आज प्रत्यक्ष देखना जीवन को सत्य समझना है। इतना प्रमाणम् ? यह कहकर हनुमान ने तुरन्त अपने दोनों हाथों के वज्रनखों से अपने वक्ष को बीच से चीर दिया। सबने साश्चर्य देखा कि भीतर हृदय कमल पर भू-नन्दिनी सीता सहित कमल नयन श्री राम विराजमान हैं और उनके पदकमल की सेवा में हनुमान आनन्द-

विमग्न है :—

विदीर्य वक्ष स्थलमंजनी सुतः प्रदर्शयामास च राम मद्वयम् ।

हृदांवुजे संस्थित मब्ज लोचनं मही सुताराधित पाद पंकजम् ॥

इस दृश्य से सारे समाज को यह प्रकट कर दिखाया कि अन्तर के कर्त्ता-भोक्ता सर्वस्व केवल श्री राम हैं। कपि के हृदय-पार्श्व के चारो ओर रोम-रोम राम नाम से अंकित था। यह देखकर सब हर्ष से उत्फुल्ल हो गये। श्रद्धा और भक्ति से युक्त लोगों ने राम और हनुमान की जय-ध्वनि से आकाश को गुञ्जायमान कर दिया। जानकी ने परम प्रियता के प्रकाश में अपने मस्तक से सौभाग्य सिंदूर निकाल कर आंजनेय के भाल पर तिलक लगा दिया :—

जगज्जननी तुला दिलेल्या वहुमोल रत्नहारा पेक्ष्यां तुलातिने दिलेला

आपल्या मांगातील किंचित् सिंदूरच, तुला जास्त लोभनीय वाटला।

—समर्थरामदास

भगवान ने उल्लसित होकर प्रिया प्रसाद की पूर्णता में सुगन्धित तेल मिश्रित सिंदूर स्वकीय करकमलों द्वारा हनुमान के मुख और शरीर में लगा दिया। भगवान बोले कि आज से हनुमान को इस प्रकार जो सिंदूर चर्चित करेंगे वे अभिलषित आनन्द की प्राप्ति करेंगे। उसी समय प्रभु की भावना समझ कर गुरु वशिष्ठ ने घोषित किया कि हनुमान को अवध के रक्षाधिपति पद पर नियुक्त किया जा रहा है।

दास मारुति—दास्य-भाव सभी साधनों में श्रेष्ठ है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत सातवाँ साधन रूप दास्य-भक्ति का मार्ग ही है। यह भाव अहं नाशक है। इसके बिना ध्येय की प्राप्ति सर्वथा असम्भव ही है। पद्मपुराण में भगवान शिव ने कहा है कि जड़चेतन प्राणी दास मात्र हैं। सब के एकमात्र प्रभु और ईश्वर श्री नारायण ही हैं :—

दासभूत मिदंतस्य जगत स्थावर जंगमम् ।

श्री मन्नारायणः स्वामी जगतां प्रभु रीश्वरः ॥

सेव्य-सेवक भाव ही प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्गी दोनों अनुयायिओं के लिए श्रेयस्कर माना गया है। काक भुशुण्डि ने भी गरुड़ से यही कहा था :—

सेवक-सेव्य भाव बिनु, भवन तरिय उरगारि।

समाज में राजा या राष्ट्रपति से लेकर साधारण जन तक अपने को भले ही विभिन्न वर्गों के आधार से नाम धारी स्वामी मान लें, किन्तु हैं सभी सेवक ही ।

दास्य भाव की तीन अवस्थाएँ होती हैं :—(१) आधिभौतिक, (२) आधिदैविक, एवं (३) आध्यात्मिक । आराध्य देव की सेवा सांसारिक फल प्राप्ति की कामना से करना आधिभौतिक है। संसार से मुक्ति-भावना से दास्य भाव की सेवा आधिदैविक है। किन्तु सर्वश्रेष्ठ स्वार्थरहित विशुद्ध प्रेम-प्रेरित, सेवाधर्म-पालन ही आध्यात्मिक दास्य भाव है। आध्यात्मिक दास्य भाव का उपासक सारे कष्टों में भी परम सुख मानता है। वह सारे कर्मों का फल उपास्य पर ही अर्पित कर देता है ।

भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि सभी की दृढ़ धारणा थी और यह सत्य भी था कि भगवान श्री राम सब से अधिक हनुमान पर ही स्नेह रखते हैं। वानर रूप होते हुए भी स्वामी के अन्तरङ्ग में ये राम-प्रेम प्रतिरूप ही थे । अनन्य सेवाप्रेमभक्ति एवं अनन्त गुण-सिंधु से परमाकर्षित राघवेन्द्र ने मारुति को किष्किंधा से ही अन्तरङ्ग सचिव बना रखा था । अतः भरत को भी जब कोई बात भगवान से पूछनी होती तब वे हनुमान द्वारा ही पुछवाते । राम चरित मानस में हनुमान का यह कथन इसका प्रमाण हैं :—

नाथ भरत कछु पूछन चहहीं ।
प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ॥

हनुमान स्वयं भी भगवान एवं माता सीता से अनेक प्रकार के प्रश्नों द्वारा उनसे जीव-शिवादि संदर्भ में तत्त्व ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिसमें वेदान्त का समस्त विशिष्ट रहस्य सन्निहित है। अध्यात्म रामायण के प्राथमिक प्रसंग ऐसे ही हैं। ब्रह्मांड पुराण में भी यह कथा आयी है कि जो तत्त्वोपदेश भगवान श्री राम ने आंजनेय को दिये हैं वे ही द्वापर में कृष्ण रूप से अर्जुन को दिये गये हैं ।

मारुति-भक्त संत समर्थ रामदास का यह सत्य हृदयोद्गार है कि (जगीं धन्य तो दास-सर्वोत्तमा चा) इस जग में सर्वोत्तम धन्य दास वही है जो देव-धर्म-संत-सज्जन-दीन-दुर्बलों के कल्याणोद्धार के साथ परब्रह्म की सेवा में निष्किंचन भाव से निरत है। ऐसे परमाचार्य सर्वश्रेष्ठ मारुति हैं, जिनसे संसार धन्य हुआ है । वे मित्र गुणों से परोपकारी, वाणी माधुर्य से परतापहर्त्ता, अतुल सामर्थ्य से दुष्टदण्डधारी और अनन्त पुरुषार्थी

सद्गुणों से विश्व भक्त मित्र रूप हैं।

अयोध्या से हनुमान की विदाई नहीं हुई—विदाई उसीकी होती है जो अभ्यागत वा अतिथि हो। अभिन्न की विदाई नहीं होती। अतः अन्यान्य की विदाई के समय श्री रामभद्र ने हनुमान के प्रति एक शब्द भी नहीं कहा। वानरेन्द्र सुग्रीव, अंगद, विभीषण, जाम्बवान आदि वीरों की विदाई के अवसर पर मारुति ने सोचा कि मेरे सम्बन्ध में श्री राघवेन्द्र ने अपने संकोची स्वभाव से न तो सुग्रीव से मुझे अवध में छोड़ जाने के लिए कुछ कहा और न सुग्रीव ने ही स्वार्थवश मुझे प्रभु-चरणाश्रित किया। अस्तु। चतुर सुजान मारुति स्वयं लोकव्यवहार-वश सुग्रीव को कुछ दूर छोड़ने गये। मार्गसीमा पर पहुँचने पर उन्होंने सुग्रीव से विनम्र प्रार्थना की और कहा—देव, उदासीन वन में श्री रघुनन्दन की मैं भली-भाँति सेवा न कर सका। अवध आने पर भी अभी तक उनकी सेवा का सुयोग्य अवसर नहीं प्राप्त कर सका। अतः इस लालसा की पूर्ति के लिए आपसे प्रार्थना है कि अनुमति मिले तो दिन दस (गूढ़ार्थतः १० हजार वर्ष) श्री रघुपति की पद-सेवा कर, फिर मैं आपके चरणों का दर्शन करूँगा :—

दिन दस करि रघुपति पद सेवा।
पुनि तव चरन देखि हौं देवा॥

सुग्रीव की आँखें खुल गईं। वे बोले—पवनकुमार, वास्तव में तुम पुण्यपुञ्ज की मूर्ति हो। प्रभु के सान्निध्य और सेवा का उसे ही सौभाग्य प्राप्त होता है जो पुण्यवान और समस्त प्रापंचिक विषयों से जीवनविरागी हो। इसका ज्ञान मुझे अब हुआ। हमारे संस्कार अभी प्रतिबंधात्मक हैं, जिससे हम सभी को भगवान ने विदा कर दिया। मैं तुम्हारी सेवा का आजन्म आभारी हूँ। मेरी आज्ञा से तुम अब पूर्ण स्वतंत्र हो। अतः कृपागार श्री रघुकुलेश राम के पद-कमल की ही आजीवन सेवा करो :—

सेवहु जाय कृपा आगारा।

हनुमान न राम के सेवक थे न सीता के—एक दिन एकांत में बैठ सीता और राम आपस में बातें कर रहे थे। वार्त्ता के प्रसंग में ही हनुमान की प्रीति और सेवा की चर्चा छिड़ गयी। भगवान ने विनोद में ही कहा कि हनुमान मेरा बड़ा भक्त है। सीता ने कहा—"वाह! यह आपने कैसे जाना? वह तो मेरा भक्त है।" भगवान

हँस कर बोले—"आप भ्रम में हैं। उसकी जितनी श्रद्धा मुझ में है, उतनी किसी के प्रति नहीं।" भगवान ने कहा—"फिर अधिक क्या, उससे ही क्यों न पूछ लें?" मैथिली बोलीं—"अच्छी बात है। आज अभी उसके आने पर हम दोनों एक साथ कोई वस्तु लाने की आज्ञा दें, जिसकी वस्तु वह पहले ले आवे, उसी की विजय मानी जायगी।" भगवान ने कहा—"बात पक्की रही।" कुछ ही क्षणों में हनुमान के आते ही एक साथ दोनो महाविभु प्रसन्नता से स्वागत करते हैं। भक्तराज युगल मूर्ति की पादाभिवन्दना कर, एक हाथ से राम के, दूसरे हाथ से सीता के पद-चम्पन सेवा आरम्भ कर देते हैं। भगवान बोले—"हनुमान, तुम मेरे अनन्य भक्त हो न?" इस अद्भुत प्रश्न से भक्तराज पहले तो घबड़ा गये। किन्तु प्रत्युत्पन्नमति से उन्होंने समझ लिया कि आज दाल में कुछ काला है। वे बोले—"प्रभो, क्या पूछा? आपका अर्थात् राम का भक्त? नहीं, मैं राम का भक्त नहीं हूँ।" महारानी सीता अपनी विजय समझ प्रसन्न हो गईं कि हनुमान मेरा ही भक्त है। भगवान तो भक्त की इस उपेक्षित बात एवं प्रिया की मधुर-मुस्कान पर जैसे लाज से पानी-पानी हो गये। इसके फलस्वरूप वे अपना पद ही हटा लेते हैं। प्रभु पदसेवा-मुक्त देख जानकी बोलीं—"तुम तो फिर मेरे भक्त हो हनुमान!" भक्त राज बोले—ऊहुँ; मैं आप सीता का भी भक्त नहीं हूँ। अतः आश्चर्य-चकित जानकी भी खिन्न मन से अपना पैर खींच लेती हैं। इससे भगवान सीता के पराभव पर मन में हँस पड़े। हनुमान इस सेवा से विरत हो, दोनों के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। किन्तु हनुमान के उत्तर से युगल मूर्ति चकित हो जाती हैं कि यह न राम का भक्त है और न सीता का, तो अन्ततः भक्त है किसका?

भगवान फिर पूछते हैं—"तो फिर तुम किसके सच्चे भक्त हो? और मेरी इतनी अथक सेवा किस लिए करते हो? यदि तुम किसी दूसरे के भक्त होकर सेवा मेरी करते हो तो उसके साथ विश्वासघात कर रहे हो। अतः सत्य-सत्य तुम आज बतला दो कि वास्तव में किसके भक्त हो?" मारुति हँस कर बोले—"प्रभो! मैं न राम का भक्त हूँ, न सीता का; अपितु युगल मूर्ति 'सीताराम' का परम सेवक हूँ।" भगवान प्रसन्न हो बोले—वत्स! तुममें जितना बल है उतनी बुद्धि भी है। तथापि आज तुम्हारी कठिन परीक्षा है, जिसमें हम दोनों ही एक फैसला करने वाले हैं। तभी

जानकी बोलीं—"हनुमान, प्यास लगी है, एक गिलास जल ले आओ। आज्ञा पालन के लिए जैसे ही आगे बढ़ते हैं कि भगवान बोल उठे—"हनुमान, ओह, बड़ी गर्मी है, जल्दी से पंखा झलो, नहीं तो में मूर्च्छित हो जाऊँगा।" दोनों महाविभुओं की एक साथ विपरीत आज्ञा सुनते ही वे तुरन्त समझ गये कि आज प्रेममयी सेवा की भगवान परीक्षा लेना चाहते हैं कि मैं दोनों में किसकी आज्ञा अधिक एवं पहले पालन करता हूँ। अतः रुकते हुए ही बोले—"प्रभो, माता को जल देकर तुरन्त आपको पंखा झलता हूँ। भगवान ने कहा—"अरे नहीं, तब तक तो व्याकुल हो जाऊँगा। पहले मुझे पंखा झल कर फिर पानी लाना। इस आज्ञा से प्रभावित हनुमान ने कहा—"माँ, कहिये तो पंखा लाके थोड़ी हवा प्रभु को कर दूँ, फिर आपको जल पिलाऊँ ?" माता सीता गले पर हाथ रख कर बोलीं—बेटा, प्यास से कण्ठ सूखा जा रहा है, अब एक क्षण भी अधिक नहीं रहा जाता; शीघ्र जल पिलाओ। हनुमान मधूर मुस्कान से-—'श्री सीता-राम' की जय का नारा लगाते हुए वहाँ ही खड़े-खड़े अपने दीर्घ बाहु बढ़ाने लगे। युगल मूर्ति के देखते-देखते स्वयं हनुमान हँसते हुए यथास्थान स्थित रहकर एक हाथ में जल भरे गिलास तथा दूसरे हाथ में पंखा ले आये। इस प्रकार एक साथ सीता माँ को जल पिलाने-—भगवान को पंखा झलने लगते हैं। भगवान राघवेन्द्र मारुति की दिव्य भावमयी सेवा से जहाँ आनन्द में मग्न हो रहे थे वहाँ मातेश्वरी सीता उठकर हनुमान के मस्तक पर वरद-हस्त से आशीष देती कहती हैं—"बेटा, संसार में समस्त भक्त एकमात्र तुम्हारी ही सेवा-भक्ति द्वारा हम दोनों की अनुकम्पा के अधिकारी होंगे।"

जनकपुर की पहुनाई में—राज्योत्सव के बाद छह मास तक वानर-भालु वीरों का आनन्द वास अयोध्या में रहा। इसी मध्यावधि में जनकपुर से विदेहराज द्वारा भेजा दूत एक आमन्त्रण-पत्र लेकर अवध में भगवान के सम्मुख उपस्थित हुआ। पत्र में समस्त वानर वीरों एवं सभी भाइयों के साथ जनकपुर की पहुनाई स्वीकार करने की विनम्र प्रार्थना भगवान राम से की गयी थी। पत्र राजदरबार में पढ़ा जाने के कारण मारुति सहित सारे वानर वीर तो महानन्द से भर उठे। भगवान तो दुविधा मग्न हो सोचने लगे कि—ससुराल जाना है; ये स्वतन्त्र-उद्धत स्वभाव वाले वानर-भालु वीर मानव-समाज के सुव्यवस्थित आचार-नियमादि से सर्वथा अपरिचित ठहरे। वहाँ यदि

आनन्द में कोई उत्पात कार्य कर वैठे तो बड़ी वदनामी की आशंका है। इनके विना जाना भी मेरा असम्भव है। किन्तु दूसरे ही क्षण वे हनुमान को पास बुलाकर बोले—"मारुति, तुम सभी वीरों के अधिपति हो। इसलिए जनकपुर पहुँचने पर सभी को किसी भी अशोभन कार्य से सँभालने का उत्तरदायित्व तुम पर होगा। कहीं ऐसा न हो कि दूसरे देश में तुम्हारे मित्रगण हमारी वदनामी कर दें। हनुमान हँस कर बोले—"प्रभो, आप किसी प्रकार से चिन्ता न करें। आपकी निकटता एवं अवधवासियों के साहचर्य से सभी युवक वीर सामाजिक व्यवहार कार्यों के अनुकूल वन गये हैं। मारुति के विचारों से आश्वस्त हो भगवान दूत को यथा समय जनकपुर पहुँचने की स्वीकृति का पत्र दे देते हैं। दूत सानन्द चला जाता है।

अयोध्या से सभी वीर जनकपुर पहुनाई करने चल पड़े। वीर सेना की पद-धूलि से आकाश धूमिल हो रहा था। सेना के साथ कौशल नरेश राजाराम को आते सुन मार्ग-प्रदेश के राजागण भयग्रस्त हुए से भगवान के सम्मुख आकर शांतिध्वज देखते तो प्रसन्नता होती थी। भगवान अपने जनकपुर गमन का कारण सूचित करते उन्हें भी अपने साथ सम्मिलित करते जाते थे। मिथिला पहुँचने ही वाले थे कि बीच पड़ाव पर हनुमान ने बिगुल बजाकर अपने सारे साथी वीरों को बुलाकर, गोलाकार वैठाल लिया। और उनके बीच वे वानरी भाषा में बोले—"भाइयो, आप सभी लोगों से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि मिथिला पहुँचने पर आप लोगों के द्वारा वहाँ कोई भी वानरी स्वभाव से ऐसा अशोभित कार्य न हो, जिससे भगवान की वदनामी हो। हमारी प्रकृति से आशंकित होकर ही प्रभु ने वहाँ पूर्ण शांति-स्थापना का उत्तरदायित्व मुझ पर ही डाला है। सबकी लाज आप लोगों के ही हाथ है। वीरों ने उन्हें पूर्ण आश्वासन दिया। उन्होंने कहा—"वायुकुमार, आप हम सभी के प्रधान नेता हैं। हम सब वहाँ समस्त कार्यों में आपका ही अनुसरण करेंगे। जब तक आप कहेंगे नहीं हम वहाँ बोलेंगे भी नहीं।" हनुमान हँस कर बोले—"भाई, इस मौन की आवश्यकता नहीं। अन्यथा वहाँ के जनवासी हम लोगों को गूँगा न समझ बैठें! हाँ। उचित अनुचित का विचार रखना चाहिए।

भगवान के साथ सब लोग मिथिला पुरी पहुँच गये। चरों द्वारा पहले ही समाचार

पाकर भगवान के स्वागत में लोग तैयार खड़े थे। विदेहराज के प्रेम सम्मान, नगर की रमणीकता एवं समस्त सुखों से युक्त व्यवस्था को देखकर सभी अतीव प्रसन्न हो रहे थे। नित्य नवीन आमोद-प्रमोद और यत्र-तत्र भ्रमण आदि के कार्यक्रम चल रहे थे। एक दिन जनक ने अपने महल में ही भगवान के साथ प्रीति-भोज का विशिष्ट आयोजन रखा। भगवान एकांत में हनुमान से सचेत करते हुए बोले—"कपिश्रेष्ठ, देखना, वानरों को सम्भालने का समय आ गया है।" हनुमान ने कहा—प्रभो, चिन्ता न करें, सभी वीर सानुकूल सुव्यवस्थित हैं। यथासमय एक विशाल चबूतरे पर सब के लिए सोने की थालियाँ लग गईं। भगवान सानुज राजागणों एवं समस्त वीर परिकरों के साथ यथा-विधि आसनों पर सुशोभित हो गये। अनेक प्रकार के स्वादिष्ट मिष्टान्न और पक्वान्न परोसे गये। विदेहराज की प्रार्थना से भगवान सहित सभी ने भोजन आरम्भ कर दिया। भोजन पदार्थों के साथ लिसोड़े का अचार भी था, जिसकी गुठली बड़ी ही चिकनी होती है। दैववशात् हनुमान उसे उठाकर जैसे ही दबाते हैं कि उसकी गुठली निकलकर ऊपर उछल जाती है। यह देख नासमझ एक वानर ने समझा कि हनुमान संप्रति इस देश के अनुसार गुठली उछालने की प्रथा सब को सूचित कर रहे हैं। बस तुरन्त उसने भी लिसोड़ा उठाकर कहा—"सेनाध्यक्ष जी, आपकी गुठली इतनी ही उछली, मेरी देखिये।" यह कहकर उसने जरा जोर से लिसोड़ा दबाया तो गुठली और ऊपर उछल गई। इस पर तीसरे को कुछ जोश आया, उसने कहा—तेरी क्या मेरी देख। फिर क्या था सभी वानर होड़ में अपनी-अपनी गुठली उछालने का करतव दिखाने लगे। इसी बीच एक दूसरे को पराभूत करने के लिए उन्होंने उछलती गुठलियों को, उछल-उछल कर पकड़ना शुरू कर दिया। कुछ लोगों ने समझा कि कौन कितना उछल सकता है, यही दिखाना है। लाख-लाख वानरों के अधिक से अधिक ऊपर उछलने और गिरने से नगर में भारी कोलाहल छा गया।

भोज-स्थल के पास यह वानरी लीला देखकर सभी हँसते-हँसते लोटपोट हो गये। उधर राम लज्जा से विवश हो रहे थे। लौटने पर उन्होंने हनुमान से कहा कि मुझे जो आशंका थी वह सत्य होकर रही। एक चतुर वानर ने का—भगवन्! इस अशोभनीय कार्य में हमारा कोई दोष नहीं। हम सभी मारुति की आज्ञा में वचन

बद्ध थे। सबसे पहले हमारे सेनापति ने ही पथ-प्रदर्शक रूप में गुठली उछालने का कार्य किया था। हनुमान ने कहा—"भाई, मैंने जान बूझ कर थोड़े उछाली थी। वह तो अचानक उछल गई।" भगवान हँस कर बोले—"अच्छा, जो हो गया सो गया। किन्तु आगे ध्यान रखना।" सभी के हृदय में प्रसन्नता छा गई। वे सानन्द मिथिला पुरी में और भी कुछ दिन निवास कर भगवान के साथ अयोध्या लौट आये।

चुटकी सेवा—एक दिन हनुमान की अनुपस्थिति में कुछ मनचले सेवा-कार्य-कर्त्ताओं ने उन्हें छकाने के लिए गुप्त रूप से आपस में परामर्श कर श्री रामभद्र की छोटी-बड़ी सारी सेवाएँ बाँट लीं। यथासमय वे जब श्री प्रभु चरण सेवा में बैठे ही थे कि उसी समय जिनके भाग में दोनों चरणों की सेवा आयी थी वे दौड़ आये। बोले—भाई हनुमान, श्री पद सेवा का भाग आज से हम दोनों को मिला हुआ है। मारुति तो भौचक्के हो गये, किन्तु सम्भलकर बोले—बन्धुओ, मुझे मालूम नहीं था कि आज आप लोगों ने मेरी अनुपस्थिति में श्री प्रभु सेवा का आपस में बँटवारा किया है। ठीक है, इससे मुझे जरा भी क्षोभ नहीं है। अपितु आप लोग प्रभु सेवा के सद्भागी बने, प्रसन्नता हो रही है। अब आप सभी से मेरी प्रार्थना है कि यदि कुछ सेवा रह गई हो तो उसे भी याद कर लें लें। जिससे मेरी नई सेवा पर पीछे झंझट न हो। यह सुन सब ने सोच-विचार कर दो एक और साधारण सी सेवा निकालकर ले ली। हनुमान ने फिर कहा अब तो समाप्त हो गई न? सभी के मौन पर एक बोला—"भाई, अब कोई सेवा नहीं दीखती।" हनुमान बोले—"ठीक है, मेरी सेवा यह होगी कि भगवान जब जम्हाई लेंगे तब मैं चुटकी बजाऊँगा। इस पर सभी हँस पड़े। एक बोला—"वाह भाई, यह भी सेवा में कोई सेवा है?" हनुमान ने कहा—"आप लोगों की धारणा से यह तुच्छ-सा प्रतीत होता है। किन्तु मैं इसे शास्त्र-विहित सर्वश्रेष्ठ सेवा मानता हूँ।"

दरबार में जिस समय भगवान जम्हाई लेते हनुमान चट चुटकी बजा दिया करते थे। किन्तु रात्रि शयन काल में सेवा-व्यवधान से चतुर-सुजान हनुमान प्रभु को शयन-भवन में जाते देख तुरन्त उछल कर उस महल के ऊपर कँगूरे पर जा बैठे। वहीं बैठ कर 'श्रीराम जय राम जय जय राम' के मधुर कीर्तन के साथ सानन्द चुटकी बजाने लग गये। उन्होंने सोचा कि भगवान जब जम्हाई लेंगे तभी चुटकी सेवा सहायक होती रहेगी।

भक्तवत्सल प्रभु को इधर सारा रहस्य पता लग गया था। उन्होंने अपने अनन्याश्रयी भक्त की मानरक्षा में शय्या पर पौढ़ते ही बारम्बार जम्हाई लेना आरम्भ कर दिया। पहले तो दो-चार बार की जम्हाई में मातेश्वरी ने कुछ विशेष ध्यान न दिया, पर दोपहर रात के समय आ जाने पर भी क्रम भंग न होने पर वे घबड़ा गयीं। उन्होंने दासी को भेजकर भरत-लक्ष्मण को बुलवाया। दोनों भाई भी आकर भगवान को आँख बन्द किये जम्हाई पर जम्हाई लेते देख चिन्तित हो उठे। सबने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु प्रभु ने न तो आँखें खोलीं और न जम्हाई ही बन्द की। धीरे-धीरे सारी माताएँ आ गयीं। गुरुदेव वशिष्ठ आ गये। वशिष्ठ ने हनुमान को अनुपस्थित देखकर उन्हें बुलाने का आदेश दिया। चारों ओर उनकी खोज कराने पर एक ने आकर सूचना दी कि वे तो इसी मन्दिर के कँगूरे पर बैठे चुटकी बजाते कीर्तन कर रहे हैं। इतना सुनते ही प्रभु-सेवा-ग्रहण-कर्त्ता सभी षड्यन्त्रकारी समझ गये कि यह हनुमान द्वारा चुटकी सेवा लेने का ही फल है। सभी सोचने लगे कि हमें पता नहीं था कि एक महान भक्त के प्रति द्वेषापराध के फल में आज ऐसा बड़ा भयनक काण्ड देखना होगा। उन्हें बुलाया गया। वे बोले—पवनकुमार! आज यह कौन-सी तुमने चुटकी लीला कर रखी है, जिससे कौशलेन्द्र को इतना बड़ा कष्ट भोगना पड़ रहा है। अपनी कष्टदायिनी चुटकी शीघ्र बन्द करो। हनुमान ने कहा—आचार्यवर! क्षमा करेंगे, यह लीला नहीं, मेरी सेवा है। जब तक प्रभु जम्हाई लेते रहेंगे, यह चुटकी-सेवा चलती रहेगी। स्वामी-सेवक दोनों को अपनी भावना में दृढ़ देखकर वशिष्ठ बोले—अच्छा, भाई, तुम्हीं अब इस संकट-निवारण का शीघ्र कोई उपाय बताओ। कपि ने कहा कि एकमात्र उपाय यही है कि पहले की मेरी सारी सेवाएँ पुनः मुझे वापस मिल जाँय? प्रसन्न गुरु वशिष्ठ ने कहा—एवमस्तु। उन्होंने हनुमान से कहा कि भक्तराज, तुम धन्य हो। आज मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ कि भगवान आप जैसे अनन्य प्रेमी भक्तों के प्रति कितने वशीभूत हैं। हनुमान द्वारा चुटकी बन्द होते ही राघवेन्द्र की जम्हाई बन्द हो गयी।

अयोध्या में लङ्का दहन—एक समय हनुमान अयोध्या के बाजार में झूमते हुए आ रहे थे। एक बड़ा मनचला बजाज तुरन्त आगे आकर प्रणाम-पूर्वक बोला—हनुमान जी, मेरी एक प्रार्थना है कि आपने लङ्का कैसे जलाई थी, जरा मुझे भी उसका हाल-चाल

बताइये। वे मन में हँसते हुए बोले—भाई, क्या कहूँ ! उस समय वहाँ का दृश्य तो देखते ही बनता था, कहने से वह आनन्द ही कहाँ है ? बजाज दुखी हो बोला—मेरा अभाग्य था जो मैं वह दृश्य देख न सका। अस्तु, कुछ सुना ही दें। मारुति ने कहा कि सुनने से क्या होगा ? यदि कहो तो उसका नमूना दिखा सकता हूँ। उसने हाथ जोड़कर कहा कि तब तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी; थोड़ा दिखा ही दें। मनचले से मनचले हनुमान ने कहा कि थोड़ा-सा कपड़ा लाकर मेरी पूँछ में बाँध दो और थोड़ा-सा तेल डाल कर आग लगा दो। हनुमान ने बाँधते समय कहा—सेठजी, इसी प्रकार राक्षसों ने भी बड़े प्रेम से कपड़ा बाँधा था। मैंने ज्यों-ज्यों पूँछ बढ़ाई, वे लोग नगर से दौड़-दौड़ कर इतना कपड़ा, तेल और घी ले आये कि वहाँ ये सारी चीजें समाप्त हो गईं, किन्तु यहाँ पूँछ बढ़ाने का काम ही क्या ? थोड़ा खेल ही तो दिखाना है। उसने भी सहानुभूति में यही कहा—"हाँ, यहाँ पूँछ बढ़ाकर क्या कीजियेगा ?" फिर मारुति की आज्ञा से उसने पूँछ में आग लगा दी। फिर क्या था ? मारुति ने कहा—देखो, इस तरह मैं कूद कर रावण के महल पर जा चढ़ा। यह कहते हुए वे बजाज की दूकान पर चढ़कर बोले—देखो, इस तरह पूँछ घुमाते हुए मैं सब जगह आग लगाता था और वे बजाज की दूकान को पूँछ घुमाकर जलाने लगे। अब बजाज की आँखें खुलीं। वह रोता हुआ, हाहाकार करता हुआ बोला—अरे, अब क्या कर रहे हैं हनुमान जी ? मेरी दूकान क्यों जला रहे हैं ? अरे, मैं तो मर गया, कोई बचाओ-बचाओ ! हँसते हुए हनुमान जी बोले—जैसे तुम चिल्ल पों मचा रहे हो ठीक उसी तरह लङ्का के सारे राक्षस, स्त्री-पुरुष रोते-चिल्लाते इधर-उधर भाग रहे थे। बजाज ने कहा—अरे मैं तो लुट गया। बाज आया लङ्का-दहन देखने से। कृपानिधान, आप शीघ्र नीचे उतर आवें। नीचे उतरकर हनुमान बोले—लङ्का जलाकर जब मैं थक गया था, तो इस तरह कूदकर मैंने अपनी पूँछ की आग बुझा ली थी। यह कहकर पास के एक तालाब में कूदकर आग बुझाते हुए राज-दरबार की ओर निकल गये।

शरणागत की रक्षा में सेवक-स्वामी युद्ध—किसी कारण वशात् राजा दुष्यंत द्वारा अपमानित विश्वामित्र के कथन पर भगवान श्री राम ने अपराधी दुष्यंत को संध्या काल के भीतर ही प्राण-दण्ड देने की प्रतिज्ञा कर ली। इस दुःखद समाचार से अतीव

भयाक्रांत राजा दौड़ता हुआ सभी मुनिगणों के पास जाकर उनसे अपनी प्राण रक्षा की प्रार्थना करने लगा, पर राजा राम से विरोध कौन करे ? अन्ततः असहाय दुष्यंत नारद की गुप्त प्रेरणा से माता अंजना के चरणों पर प्राण रक्षा की भीख माँगता गिर पड़ता है। माता ने शरणागत रक्षा की भावना से एवं प्रेमदैन्य के भावावेश में दुष्यंत को अभय दान दे दिया। रहस्य जानने पर वह चिन्तित हो गयी। एक ओर श्री राम से विरोध और दूसरी ओर शरणागत धर्म की रक्षा। अतः दूसरें को ही उसने श्रेष्ठ कर्त्तव्य समझा। उसी समय स्मरण मात्र से ही हनुमान के आ जाने पर उनसे सारी बातें कह सुनाईं। मातृ-वचनानुरागी एवं शरणागत धर्म के पूर्ण ज्ञाता हनुमान ने स्वामी की सम्मुखता होने की कठिन परिस्थिति में भी दुष्यंत को रक्षा का आश्वासन दे दिया। दूतों ने प्रभु से कहा कि दुष्यंत हनुमान की शरण में छिपे बैठे हैं। हनुमान को बुलाया गया। दुष्यंत को पीठ पर बाँध कर वे प्रभु के सम्मुख हुए। राम नै कहा कि इस अपराधी को शरण में लेने का निश्चयकर तुमने अच्छा नहीं किया। विश्वामित्र के अपमान के अपराध में इसे मैंने प्राण-दण्ड देने की प्रतिज्ञा की है। हनुमान ने कहा-- "प्रभो, मैं क्या जानूँ ? यह तो मेरी अनुपस्थिति में ही माता अंजना की शरण में जा चुका था। मातृ-शरण-भक्त-रक्षा का सारा उत्तरदायित्व मुझ पर आ गया है। इसे बचाने के लिए मैं भी कृतसंकल्प हो चुका हूँ।" भगवान बोले—"फिर तो तुम्हें भी इसके साथ मेरे वाणों के प्रहार में प्राण देना होगा।" मारुति ने कहा—"दीनबन्धो, यदि एक शरणागत की रक्षा में और अपने आराध्येश्वर के ही हाथों से युद्ध में प्राण देने का योग सेवक को प्राप्त होता है, तो मुझे इसमें रंचमात्र दुःख नहीं, वरन् परमानन्द का अनुभव होगा।"

सेवक-स्वामी दोनों ही विशाल मैदान में युद्ध के लिए आ खड़े हुए। देखने के लिए वशिष्ठ, विश्वामित्र, सामन्त और बन्धु गणों सहित सारी प्रजा उमड़ पड़ी। हनुमान को तो अपनी ओर से कोई पराक्रम पूर्ण युद्ध करना नहीं था। भगवान सचेत कर बाण-प्रहार आरम्भ करते हैं, वहाँ हनुमान चिन्तामुक्त होकर एकमात्र 'श्री राम जय राम जय-जय राम' की मधुर ध्वनि से कीर्तन करते हुए अपने पैंतरे नचाते हुए भक्त की रक्षा करते जा रहे हैं। वर्षा की झड़ी के समान भगवान के बाण उनपर बरस रहे थे, किन्तु

हनुमान के वज्रमय शरीर एवं लांगूल कवच से टकराते ही कुण्ठित हो पुष्प समान भूमि पर गिर पड़ते थे। संध्या का समय भी होने को आया, पर वीरता एवं सहनशीलता के रूप स्वामी सेवक में पारस्परिक भीषण युद्ध का निष्कर्ष नहीं हुआ। यह देख तुरन्त पश्चात्ताप से व्यथित विश्वामित्र रण-मध्य आ युद्ध बन्द करते बोले—रघुकुलेश, मुझे ऐसी आशा नहीं थी कि मेरे लिए आज आपको हनुमान जैसे अनन्य सेवक के साथ ऐसा घोर युद्ध करना पड़ेगा। मेरी भावना पूर्ण हो गई। मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि भक्त की ही सदैव विजय होती है। इसी प्रकार वे हनुमान से बोले—मरुतसुत, तुम धन्य हो जो मातृ-शरणागत भक्त की प्राणरक्षा में अपने आराध्य-देव के संग तुम्हें युद्धरत होना पड़ा। अपराधी दुष्यंत को मैं क्षमा दान देता हूँ। प्रसन्न होकर मारुति दुष्यंत को मुक्त कर देते हैं और दौड़कर भगवान के चरणों में भक्ति से लोट जाते हैं। प्रभु उन्हें चरणों से उठाकर प्रसन्नता से अपने हृदय से लगाते हैं और उन्हें अशीर्वाद देते हैं।

पूँछ वाला दाँव—अयोध्या में कुछ समय बाद हनुमान ने एक अखाड़ा भी खोला, जिसमें अयोध्या के बड़े-बड़े रईसों के लड़कों एवं राजकुमारों को शारीरिक व्यायाम, मल्लयुद्ध और मुष्टि युद्ध आदि की शिक्षा मिलती थी। हनुमान बड़े प्रेम से लड़ाते और अनेकानेक दाँव-पेंच सिखाते थे। जब सब लड़ चुकते तो अन्त में आप कहते कि सब मिल कर मुझ से जोर करो और मुझे गिराने का प्रयत्न करो। लड़कों का गोल हनु-मान के ऊपर टूट पड़ता था। कोई हाथ, कोई पैर, कोई कमर पकड़ता तो कोई गरदन में ही झूम जाता था। जब सभी को वे इधर-उधर झटक देते तो फिर वे सब उठकर चिपट कर जोर लगाया करते थे। कभी-कभी हनुमान सभी को अपनी पूँछ में लपेट लिया करते थे। पूँछ कड़ी करते ही जब उनके शरीर बन्धन से पीडित होते तो वे छोड़ दिया करते थे। इस प्रकार नित्य यही सब चलता रहता था। सभी खुशी से अखाड़े में भाग लेते थे। धीरे-धीरे मित्रमण्डल में इधर-उधर यह चर्चा होने लगी कि गुरु साहब सब दाँव सिखाते हैं, पर पूँछवाला दाँव नहीं बताते। इसे भी पूछना चाहिये। आपस में निश्चय कर सभी ने मिल कर प्रार्थना की कि गुरुजी, पूँछवाला दाँव भी हम लोगों को बताने की कृपा करें। हनुमान ने कहा—भाई! यह दाँव

सीख कर तुम लोगों को क्या करना है ? तुम्हें तो मनुष्यों से लड़ना है, बन्दरों या राक्षसों से तो लड़ना नहीं है ? लड़कों ने कहा कि यदि कभी ऐसे शक्तिशाली शत्रु आ गये तो यह दाँव बहुत काम आयगा। हनुमान ने कहा—अरे, मैं तो बैठा ही हूँ, तुम्हें इसकी आवश्यकता ही क्यों कर पड़ेगी ? तभी झट लक्ष्मण-कुमार बोले—मान लीजिये, समय पर आप न रहे तो फिर नमक-सत्तू लेकर आपको हम कहाँ ढूँढते फिरेंगे ? हनुमान हँसकर बोले—अच्छी बात है। कल सब लोग एक-एक नकली पूँछ लगाकर अखाड़े आना। इस पर भरत-कुमार बोले—क्या हम लोगों को भी पूँछ लगानी पड़ेगी ? हनुमान ने कहा—बिना पूँछ लगाये वह दाँव ही सीखने में कैसे आयेगा ? पूँछ ही से तो पूँछवाला दाँव कटेगा। सभी राजी हो गये और दूसरे दिन अपने-अपने घर से पूँछ लगाकर अखाड़े की ओर चले। मार्ग में चारों ओर से जो देखता था वही आश्चर्य करता और हँसता था। आज पूँछ लगाने की कौन-सी लीला करने की इन लोगों को सूझी। कुछ लोगों ने कहा—भाई, इन सब के गुरु हनुमान हैं। मालूम होता है, वे अपने जैसा एक मण्डल बना रहे हैं। देखा जाय तो इस समय सारे राज्य में इन्हीं का अधिक प्रभाव है। एक दिन सम्भव है कि हमलोगों को भी उनकी आज्ञा से पूँछ लगानी पड़े। किन्तु किसी को भी अखाड़े के वीरों से पूँछ लगाये जाने का मूल कारण पूछने की हिम्मत न पड़ सकी।

सभी युवक लँगोट बाँधे अखाड़े में उतरे तो उनमें से एक को बुलाकर हनुमान अपनी पूँछ से उसके शरीर को बाँध कर बोले कि अब तुम अपनी पूँछ को मेरी पूँछ में डालकर खींचो। तुम्हारे जोर लगाने पर हमारा बन्धन खुल जायेगा। वास्तव में नकली पूँछ का शरीर के अन्तर भाग से कोई सम्बन्ध तो था नहीं, जिससे वह इच्छा शक्ति से गुरु की आज्ञानुसार कार्य करे। उसने पूंछ को अत्यधिक प्रयत्न कर भी हिलाना-डुलना चाहा, किन्तु वह क्यों कर हिले। हार कर जब वह अपने हाथ से पकड़ कर पूँछ को बन्धन के भीतर डालने चला तो हनुमान बोले—भाई, हाथ से पकड़ कर नहीं। इस प्रकार हाथ से पकड़ कर जितने समय में तुम छोड़ोगे, उतने में तो विरोधी तुम्हें पटक देगा। उसने कहा कि आप जैसे तो यह हिलती-डुलती ही नहीं ? हनुमान बोले कि ठीक है, अभी तो पहला दिन है। इसमें चेतना आई नहीं है।

कम से कम एक महीने इसी तरह लगाये रहने पर पूँछ की जड़ जम जायेगी तो फिर मेरी तरह यह इच्छानुसार काम करने लग जायगी। इस बीच यदि कोई जरा भी खोल देगा तो एक महीना और उसे ठहरना पड़ेगा। अच्छा, अब सब जाओ। एक मास बाद पूँछवाला दाँव तुम्हें सिखाऊँगा। तुमलोगों का सारे अवध में नाम होगा। लड़के गुरु-आज्ञा मानकर सदैव की तरह दण्ड कसरत आदि जोर कर अपने-अपने घर चल पड़े। अखाड़े जानेवाले सैकड़ों लड़के पूँछ वाला असली जग प्रसिद्ध दाँव सीखने की प्रबल उमंग में चौबीसों घण्टे पूँछ लगाये रहने लगे। इसके अतिरिक्त सभी लड़के इस बात के प्रयत्न में रहते कि पिताजी इसे न जान पावें। दैवयोग से एक दिन लक्ष्मण की दृष्टि अपने कुमारों पर पड़ गई। देखा तो उसके पीछे एक लम्बी-सी पूँछ लगी थी। उन्होंने पास बुलाकर प्रेम से पूछा कि पूँछ लगाने का यह कौन-सा स्वांग रच रखा है। उसने सारी कथा सुना दी कि वे लोग अखाड़े में हनुमान गुरु से पूँछ वाला दाँव सीखने वाले हैं। अतः पूँछ की जड़ जम जाने के लिए उन्होंने एक मास बराबर लगाये रहने की आज्ञा दी है।

लक्ष्मण हनुमान के इस विनोद से खूब हँसकर राजकुमार से बोले—अच्छा जाओ। वह चला गया। लक्ष्मण यथावसर भगवान के पास जाकर बोले कि आप किसी सेवक को भेजकर हनुमान के अखाड़े में लड़नेवाले सभी शिष्य बालकों को अपने सामने बुलवाइये तो सब रहस्य मालूम हो जायेगा। भगवान ने उसी समय आज्ञा दे दो चार सेवकों को भेज दिया। बात की बात में हनुमान के साथ सभी शिष्य प्रभु सम्मुख पुरस्कार लेने आ गये। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के भी राजकुमार थे। सभी के पीछे पूँछ लगी थी। इस अद्‌भुत दृश्य से भगवान हँस पड़े। हनुमान से बोले कि आप मानव जाति को भी अपने ही वर्ग में ढालने का प्रयोग कर रहे हैं। हनुमान हँसते हुए बोले—प्रभु अपने वर्ग में मिलाने के लिए तो नहीं, पर क्या करूँ? आप जानते ही हैं कि बालकों का स्वाभाव कैसा होता है। सभी हमारे प्यारे चेले हैं। अखाड़े में मेरे द्वारा लड़ने के अनेक दाँव सीखे। इसी बीच जब मैंने खेल में पूँछ का अपना एक स्वाभाविक दाँव दिखाया तो सभी मुझे कहने लगे कि हमें पूँछ वाला दाँव भी बता दो। किसी तरह समझाने पर भी जब काम न चला तो मुझे विवश हो यह पूँछ लगाने की लीला करनी

पड़ी। यह सुनते ही सभी बालक समझ गये कि हनुमान जैसी पूँछ हमलोग कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते। अतः सभी ने भगवान के सामने ही पूँछ निकाल कर धर दी। आगे उन्होंने कभी वह दाँव सीखने का नाम भी नहीं लिया।

रामाश्वमेध—भगवान राम ने वशिष्ठ की आज्ञा से अश्वमेध यज्ञ का निश्चय किया। यज्ञ में सेवा-कार्यादि में भाग लेने के लिए वीरों में विशिष्ट जाम्बवन्त, सुग्रीव, अंगद, नल-नील आदि सभी प्रमुख वानर वीर आये थे। विश्व विजय प्रतीक अश्व के परिभ्रमण, रक्षा एवं दुष्ट राजाओं पर आधिपत्य आदि के लिए शत्रुघ्न, भरतपुत्र पुष्कल आदि कितने ही वीरों को अक्षौहिणी सेना के साथ भगवान ने भेजा था। सभी के अधिनायक एकमात्र हनुमान थे। प्रस्थानपूर्व आदेश देते प्रभु ने कहा था कि हे महावीर, सभी तुम्हारे विक्रमपूर्ण चरित जानते हैं। वीर शत्रुघ्न यद्यपि महान बलशाली और गुणवान हैं, तथापि तुम्हारी समता में ये बालक ही हैं। अश्व के साथ परिभ्रमण भी एक असाधारण कार्य है। मेरे प्रतीक स्वरूप शत्रुघ्न की रक्षा तथा जहाँ कहीं मतिभ्रंश का योग आवे वहाँ-वहाँ अधीक्षक रूप से तुम मेरे भाई को अपने सत् परामर्श से विजय कार्य में सहायक होना :—

प्रबोधितव्यो भ्राता मम महामते।

इस महान उत्तरदायित्व को हनुमान ने सहर्ष शिरोधार्य किया था। कई महाभिमानी, वीर एवं देव-वर-प्रसादी राजाओं को हनुमान ने ही पराभूत किया। 'सुबाहु', शिव-संरक्षित वीरमणि एवं सुरथ जैसे राजा प्रधान थे। वीरमणि के ही संयोग में हनुमान और शिव का घोर युद्ध हुआ था, जिसमें हनुमान ने स्वामी कार्तिकेय, वीरभद्र, नन्दीश्वर आदि भूतगणों के साथ शिव को परास्त किया था। अश्व-विजय यात्रा का पद्मपुराण पाताल खण्ड में विस्तार से वर्णन है। इस भ्रमण काल में ही महामुनि च्यवन महर्षि के आश्रम में अश्व पहुँचा। च्यवन के महान् गुणों, तपश्चर्या एवं परमानुरागमयी राम-भक्ति से शत्रुघ्न आदि सारा मण्डल आनन्दमुग्ध हो जाता है। रामाश्वमेध समाचार सुनते ही तथा शत्रुघ्न की प्रार्थना पर परमानन्दमग्न मुनीश्वर च्यवन अपनी पत्नी सुकन्या एवं सारे शिष्यों के साथ वहाँ से अयोध्या के लिए पैदल ही चल पड़े। उन्हें इस प्रकार पैदल जाते देख राम सेवक हनुमान ने शत्रुघ्न की आज्ञा से सकुटुम्ब मुनिवर को अपनी

पीठ पर बिठाकर पल भर में वायुगति से अयोध्या पहुँचा दिया।

भीम-गर्व हरण—महाभारत की कथा है। उत्तराखण्ड की यात्रा में गये पंच पाण्डवों के समय की बात है। एक दिन भीम द्रौपदी के साथ एकांत में थे। अकस्मात् ईशानकोण से प्रबल वायु का झोंका आया, जिससे एक परम दिव्य लाल रंग का कमल दोनों के पास आ गिरा। दृष्टि पड़ते ही द्रौपदी ने तुरन्त दौड़ कर सौगन्धित कमल उठा लिया। जीवन में अप्राप्त ऐसे सुमधुर अनुपम कमल से प्रभावित द्रौपदी बोलीं—आर्य-वीर, आज तुम्हारे सान्निध्य में ऐसे दिव्य कमल की प्राप्ति से मेरा आनन्दमय जीवन सुगन्ध से भर कर धन्य हो गया। इस अप्राकृत पद्म को तो मैं धर्मराज को भेंट करूँगी। किन्तु इसके अतिरिक्त मेरे प्रति अपने हार्दिक प्रेम प्रकाश में अब आप मेरे लिए ऐसे ही शत कमल पुष्प खोजकर मूल सरोवर स्थान से ले आवें, जिसे मैं अपने आश्रम काम्यक वन में ले जाऊँगी। भीम तुरन्त धनुष-बाण लेकर, बद्रिकाश्रम से ईशान कोण की ओर सहस्रदल-सौगन्धिक लाल कमल लाने चले गये। मार्ग में भीषण वनों, गिरि शिखरों को पार करते तथा अपने सिंहनाद से चारों ओर कम्पायमान करते विशाल गन्धमादन-पर्वत स्थित केले के वन में वे जा पहुँचे। वह परमैकांतिक महावीर हनुमान का स्थायी शांति निवास स्थल था। उन्होंने पवनांश अनुज भीम को अपनी ओर आते देखा। अनुज की कल्याण-कामना से मार्ग रोक कर एक बड़ी शिला पर वे लेट गये थे। वहाँ लेटे-लेटे जँभाई लेते हुए जब वे अपनी पूँछ फटकारते तो उसकी प्रतिध्वनि से ही महापर्वत हिल उठता था। उस महाशब्द से भीम का भी कलेजा काँप उठा। अपने से दस गुणा अधिक भयङ्कर शब्द सुनने का पहला अवसर भीम के जीवन में आया था। सारे रोयें खड़े हो गये थे। भय से आक्रांत वे इधर-उधर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बीच मार्ग में अकेले लेटे पवनकुमार के पास जा पहुँचे। वानरराज हनुमान महावृद्ध और जर्जर रूप में लेटे थे। उनके ओठ पतले और जीभ, मुख, कान आदि सभी लाल थे। चंचल भृकुटि, खुले मुख में सफेद भयङ्कर नुकीले दाँत और दाढ़ों की दिव्य प्रभा से उनका बदन पूर्ण चन्द्र सा देदीप्यमान हो रहा था। पीली आँखों से वे बीच-बीच में इधर-उधर देख लेते थे। भीम पूर्व शब्द का तो पता पा न सके, किन्तु पुनः गर्जते आगे जब वे उनके पास पहुँचे तो स्वयं हतप्रभ हो गये।

वृद्ध वानर ने भीम की उपेक्षा करते हुए कहा कि मैं शरीर से रोगी, आनन्द से सो रहा था। अपने गर्जन शब्द से तुमने मुझे क्यों जगा दिया ? तुम्हें जीवों पर दया करनी चाहिये। तुम्हारी धर्म प्रवृत्ति क्रूर कर्मों में क्यों होती है ? मालूम होता है तुमने विद्वज्जनों की सेवा नहीं की है। तुम हो कौन, और यहाँ क्यों आये हो ? यह पर्वत आगे अगम्य है। तुम यहीं से वापस लौट जाओ। भीमसेन ने अपना परिचय दिया। वृद्ध वानर बोला—भीम, तुम वीर कुरुवंशी हो और स्वयं को वायु पुत्र भी बताते हो। तथापि तुम मानव हो, मैं तो बन्दर हूँ। इस मार्ग से मैं तुम्हे आगे न जाने दूँगा। भला इसी में है कि यहाँ तुम कुछ फल खाकर वापस लौट जाओ, अन्यथा मारे जाओगे। भीम ने कहा—मैं मरूँ या जीऊँ, तुमसे इस विषय में कुछ पूछना नहीं। तुम थोड़ा उठकर मुझे मार्ग दे दो। हनुमान बोले—मैं रोग-से पीड़ित हूँ, उठना दूभर हो रहा है। यदि तुम्हें जाना ही है तो मुझे लाँघकर चले जाओ। भीम ने कहा—भगवान सब शरीर में व्याप्त हैं। इसलिए लाँघकर मैं नहीं जाऊँगा। यदि मुझे शास्त्र-ज्ञान न होता तो मैं तुम्हें क्या, इस पर्वत को भी लाँघ जाता, जैसे हनुमान सिंधु लाँघ गये थे। मैं भी बल-पराक्रम और तेज में उन्हीं के समान हूँ। इसलिए तुम खड़े हो जाओ और मार्ग दे दो, अन्यथा अवहेलना में तुम्हें मैं यमालय भेज दूँगा। वायुनन्दन बोले—भाई, बुढ़ापे के कारण मुझ में उठने की अत्र शक्ति ही नहीं है। इसलिए कृपा कर मेरी पूँछ हटाकर निकल जाओ। यह सुनकर भीमसेन अवज्ञा से हँसकर बायें हाथ से पूँछ उठाने लगे, किन्तु तिल मात्र भी वह टस से मस न हुई। तब उन्होंने दोनों हाथ लगा दिये, फिर भी वे पूर्णतः असमर्थ रहे। लज्जा से हतप्रभ और नत-मस्तक हो वे हाथ जोड़े बोले—वानरराज ! आप मेरे अवज्ञा-जनित सारे अपराधों को क्षमा करें। मुझे अपना दीन दास समझकर प्रसन्न हो आप अपने सत्यस्वरूप का ज्ञान प्रकाश दें। मैं शरणागत हूँ। इस वानर रूप में—आप सिद्ध, देव, गंधर्व, गुह्यक आदि में से कौन हैं ? गर्व विगलित भीमसेन की विनम्र वाणी से प्रसन्न मारुति ने कहा—"मारुत सुत मैं कपि हनुमाना।" उन्होंने कहा कि—वीर, तुम्हारे कल्याण के लिए ही मैंने जान कर मार्ग रोक रखा था। इस मार्ग से आगे मानवों के लिए अगम देवगणों का निवास मार्ग है। आगे तुम्हें अपमानित होना पड़ता या किसी से शाप मिल जाता तो मुझे

क्षोभ होता। जिस भावना से तुम चले हो वह सौगंधिक स्वर्ण कमल का सरोवर तो पास में ही है।

जीवन धन्य होने की भावना से परमानन्दित भीम बारम्बार मारुति के चरणों में प्रणाम करते बोले—परमादरणीय ज्येष्ठ बन्धुवर, अब कृपया आप अपने समुद्रोल्लंघन के वास्तविक स्वरूप का दर्शन भी करा दें। मारुति ने कहा—वत्स, उस रूप के देखने में न तुम समर्थ हो और न उस रूप प्रदर्शन का युग ही है। दूसरे युगयुगान्तर से बल, विक्रम, प्रभाव आदि में भी न्यूनाधिकता होती रहती है। मैं भी काल-धर्म का आदर करता हूँ। इन कारणों से व्यर्थ आग्रह तुम छोड़ दो। अन्ततः भीम के हठाग्रह से विवश हो मुस्कुराते हुए बोले—अच्छा तो देखो। कनक भूधराकार महाविकराल करोड़ों सूर्य-सम तेजवान स्वरूप उन्होंने बढ़ाना आरम्भ ही किया था कि एक क्षण से अधिक भीम की आँखें ठहर नहीं सकीं। वे अतीव विस्मित और रोमांचित हो आँखें बन्द किये हुए हाथ जोड़ कर बोले—समर्थ हनुमन्त महावीर, अपराध क्षमा हो; वास्तव में मैं आपके सत्य स्वरूप के दर्शन में सर्वथा असमर्थ हूँ। अब आप अपने विराट विग्रह को यथाविधि लघु रूप में समेट लें। भक्तानुज भीम की प्रार्थना सुनते ही तुरन्त स्वेच्छा से दीर्घ रूप संकुचित कर उन्होंने दोनों भुजाओं से भीम को उठाकर हृदय से लगा लिया। इस समय प्रेमाश्रु-भरे गद-गद कण्ठ से पवन कुमार बोले—भैया, अब तुम जाओ। जहाँ कहीं आवश्यकता पड़े, मेरा स्मरण कर लेना। यहाँ का उल्लेख लोगों से नहीं करना। स्थान, निवास, मिलन आदि की बात किसी से भी न कहना। पांडुनन्दन! तुम्हारे मानवी अङ्ग स्पर्श से आज मुझे भी विश्वानन्द प्रकाशक भगवान कौशलेन्द्र श्री रामभद्र का मिलन आनन्द स्मरण हो आया।

कृपा प्रकाश—मुझसे मिलने का तुम्हें भी कुछ फल प्राप्त होना चाहिये। भाई के नाते मुझ से तुम कोई वर माँग लो। यदि तुम चाहो तो मैं हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र के पुत्रों को भी कीटों की तरह मसल दे सकता हूँ। नगर को शिला वर्षा द्वारा नष्ट कर सकता हूँ, या दुष्ट दुर्योधन को अपने लांगूल में बाँध कर अभी शरणागत करा दे सकता हूँ। महाबाहो, जैसी तुम्हारी कामना हो उसे पूर्ण कर सकता हूँ। ज्येष्ठ बन्धु मारुति की परमानुकम्पा से भीम का हृदय आनन्द विभोर हो गया। उन्होंने कहा

कि आपकी महानुकम्पा का मैं पूर्ण आभारी हूँ। आपका मंगल हो। रावण जैसे निशाचर के सम्मुख ससैन्य कौरवों की हस्ती ही क्या है ? बस ; आपकी एक मात्र कृपा-दृष्टि की ही मैं कामना करता हूँ। प्रसन्न मारुति बोले—वत्स, भाई एवं सुहृद होने के सम्बन्ध से मैं भविष्य में तुम्हारी सहायता करूँगा। अब तुम शीघ्र यहाँ से प्रस्थान करो। धनराज कुबेर के यहाँ से नित्य नियमानुसार किन्नर-गंधर्व-कन्याएँ हमें श्री रामगुणगान सुनाने आ रही होंगी। इतना कहकर भीम को सरोवर का मार्ग दिखाकर हनुमान अन्तर्धान हो गये।

अर्जुन गर्व-हरण—यह कथा भी महाभारत तथा अध्यात्म रामायण में लिखित है। यह कथा दो विभिन्न रूपों में एवं दो युद्ध-स्थलों के सन्दर्भ में वर्णित है।

१—अर्जुन को अपने गांडीव धनुष-बाणों का महान् गर्व था। भक्त गर्वापहारक भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें एक दिन मारुति-संरक्षित गन्धमादन पर्वत स्थित सौगन्ध सर से एक हजार कमल ले आने की आज्ञा दी। अर्जुन सरोवर पर पहुँचकर कमल लेने के लिए उद्यत होते हैं कि वहाँ के अधीश्वर हनुमान उनके पास आकर बोले—वीर! यह कमल-वन भगवान श्री राम की पूजा में संकल्पित है। अतः अभिलषित कमल पुष्प तुम किसी अन्य स्थल से ले लो। स्वभुजबलदर्पित अर्जुन आंजनेय के शब्दों की अवहेलना करते हुए बोले कि तूने जिसका नाम लिया वह तो मेरी दृष्टि से एक साधारण मनुष्य था। यदि वह वीर होता तो अपने बाणों द्वारा ही सेतु बाँध कर सेना को पार ले जाता। कपि ने कहा कि यदि तू ही ऐसा वीर श्रेष्ठ है तो बाणों का सेतु बनाकर मुझे ही समुद्र पार उतार दे। अर्जुन की स्वीकृति पर दोनों ही वीर समुद्र. तट पर जा पहुँचते हैं। अर्जुन एक मुहूर्त में अपने गांडीव धनुष से प्रसूत असंख्य बाणों द्वारा समुद्र पर जाल बाँध देते हैं। यह देख हनुमान हँसकर बोले—पार्थ, एक क्षण में मैं आ रहा हूँ। ऐसा कह वे अन्तर्धान हो उत्तर दिशा से पल मात्र में विशाल शरीर धारण किए रोम-रोम में महागिरि बाँधे आ गये। प्रखर तेजमयी मूर्ति के दर्शन से ही अर्जुन की आँखें भय से बन्द हो गयीं। उनके सारे गर्व चूर-चूर हो गये। इसी अवस्था में उन्होंने आर्त्त भाव से हरि का स्मरण किया। भगवान तत्क्षण कच्छप रूप से सेतु के नीचे आ गये। हनुमान ने सेतु पर प्रथम पद रखा और दूसरा रखना ही चाहते थे कि

उनकी दृष्टि समुद्र के जल पर पड़ी। पुल चर मरा कर टूटा तो नहीं, पर सारा सागर रक्त से लाल हो गया था। चकित हनुमान ने ध्यान कर सारा रहस्य जान लिया और कच्छप भगवान से क्षमा-याचना करने लगे। तभी वहाँ भगवान वासुदेव प्रकट होकर बोले—हनुमान, वास्तव में तुम्हारे भार को सम्हालने की क्षमता किस देव में है? अर्जुन तुम्हारे वास्तविक स्वरूप को विमोहवश न जान कर ही ऐसा कार्य कर बैठा। इसकी प्रार्थना के कारण मुझे कच्छप रूप से शर-सेतु को अपने पृष्ठ पर धारण करना पड़ा। किन्तु तुम्हारे पदके असह्य भार से मेरे मुख से रक्त वमन के कारण ही समुद्र जल लाल हो गया। अतः इसमें तुम्हें अपराध की आशंका से किसी प्रकार क्षोभ नहीं करना चाहिये

२—अध्यात्म रामायण में यह कथा इस प्रकार है। एक बार अर्जुन अकेले ही रथारूढ़ हो शिकार खेलते हुए, दक्षिण सिंधु तट के धनुष्कोटि तीर्थ पर जा पहुँचे। जहाँ वे स्वभावतः कुछ गर्वित भाव से समुद्र किनारे घूम रहे थे। इसी बीच वन में हनुमान को राम नाम स्मरण, कीर्तन करते देख आश्चर्य चकित हो बोले—"कपीश, तुम कौन हो? तुम्हारा क्या नाम है?" मन्दस्मिति से मारुति बोले—"मैं वही हूँ, जिसने राम प्रताप से सिंधु पर वानर सेना के पार होने के लिए सेतु का निर्माण किया था। वायु का पुत्र हनुमान मेरा नाम है।" यह सुन अर्जुन उपेक्षा से हँसते हुए बोले—"वानरराज, क्या भगवान राम अपने बाणों से सेतु का निर्माण नहीं कर सकते थे?" हनुमान ने कहा—"ऐसी बात नहीं, प्रभु बाणों द्वारा सेतु बना देने में सर्व-समर्थ थे। किन्तु, उन्हें आशंका थी कि हम जैसे वानरों के भार से वह डूब या टूट न जाय? इसी से उन्हें हम सब वानरों की सहायता से पत्थरों द्वारा सेतु का निर्माण करना पड़ा था।"

अर्जुन ने कहा—"खूब! यदि वानरों के भार से बाण का सेतु डूब या टूट जाय तो धनुर्विद्या ही व्यर्थ है।" मैं अभी अपने बाणों से एक सेतु का निर्माण किये देता हूँ। तुम उस पर विहार करो, देखूँ कैसे टूटता है वह। इस पर आंजनेय मुस्करा कर बोले—"भाई, आपके बाणों का सेतु केवल मेरे अगूँठे के भार से टूट या डूब जायेगा।" अर्जुनने कहा—"यदि मेरे बाण का सेतु आपके अगूँठे के भार से डूब जायेगा तो मैं तुरन्त चिता में जल कर भस्म हो जाऊँगा।" यह सुन मारुति को भी रोष आ गया, जिससे वे

बोले—"यदि आपका सेतु टूट या डूब न जाय तो समझ लीजिए, मैं सदा के लिए आपकी ध्वजा पर अवस्थित रह कर आपकी सहायता करता रहूँगा।" फिर क्या ? दोनों महान् योद्धाओं में ठन गयी। अर्जुन ने तुरन्त बाणों का एक विशाल सेतु समुद्र पर बना दिया। ज्यों ही हनुमान उसे अपने पादांगुष्ठ की नोक से दबाते हैं कि वह टूट कर समुद्र में डूब गया। लज्जित अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तुरन्त हनुमान के रोकने पर भी चिता लगाकर भस्म होने पर तैयार हो गये। ठीक उसी समय भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मचारी वटु रूप से प्रकट हो गये। वटु द्वारा चिता में भस्म हो जाने का कारण पूछने पर अर्जुन ने सारी बातें बता दीं। वटु ने कहा—"भाई ! तुम दोनों के बीच कोई साक्षी भी था या नहीं ?"

अर्जुन बोले—"कोई नहीं।" वटु ने कहा—"ऐसी स्थिति में अब मेरी साक्षी में आप लोग फिर से अपना-अपना पराक्रम दिखावें, मैं न्यायाधीश का कार्य करूँगा जिससे साक्षी रूप में सत्यासत्य का ज्ञान हो जायेगा।" वटु की आज्ञा से अर्जुन ने पुनः ध्वस्त भाग को अपनी बाण-वृष्टि से ठीक कर दिया। भगवान कृष्ण ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा देकर सेतु की रक्षा में उसके नीचे भेज दिया। पूर्व की भाँति पहले पैर के अँगूठे और फिर पूरे पैर से भी दबाने पर जब बाण-सेतु को हनुमान तोड़ नहीं सके और दृढ़ देखा तो समझ गये कि इस कार्य के एक मात्र कारण ये वटु ही प्रतीत होते हैं। ध्यान करते ही वटु रूप में उन्होंने स्वयं भगवान को देखा। अतः वे बोले—"वीर अर्जुन ! वास्तव में इस बार तुम साक्षी रूप इन वटुदेव के माध्यम से विजयी हुए हो। ये वटु स्वयं वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण हैं, जिन्होंने तुम्हारी लाज की रक्षा में सुदर्शन चक्र को सेतु के नीचे रख छोड़ा है। ये ही त्रेता के मेरे आराध्य देव भगवान श्री राम हैं। इन्होंने मुझे द्वापर में श्रीकृष्ण रूप से दर्शन देने का आशीर्वाद दिया था। अतः इन्हीं के इच्छानुसार अपनी वाणी की रक्षा में तुम्हारे रथ की ध्वजा पर स्थित होकर मैं युद्धकाल में सहायक हूँगा। विश्व में तुम कपिध्वज नाम से प्रसिद्ध होगे। अर्जुन का गर्व चूर हो गया। कृष्ण सहायक न होते तो प्रण के अनुसार उनका शरीरान्त हो जाता।

पार्थ की रथ-ध्वजा के रक्षक—वीर हनुमान महाभारत के युद्ध में पार्थ की ध्वजा के रक्षक थे। आप सदैव उनकी ध्वजा पर ही विराजमान रहते थे। यह अर्जुन के

लिए अतिशय गौरव और सौभाग्य का विषय था। रथी और महारथी के विजय-यश का प्रतीक उनकी ध्वजा को ही माना जाता था। युद्ध में वीर लोग सबसे पहले रथी की ध्वजा ही काट कर गिरा देना चाहते थे। ध्वजा के काटते ही अनुयायी लोग भ्रम में पड़ जाते थे। बहुधा लोग समझते थे कि रथी मारा गया। अतएव ध्वजा की रक्षा को बहुत अधिक महत्त्व था।

महाभारत युद्ध में भीष्म, द्रोण, कर्णादि सभी वीर पहले अर्जुन की ध्वजा ही काटने की उत्कट चेष्टा करते थे। अर्जुन के अतिरिक्त युद्ध में पांडव पक्ष का ऐसा एक भी रथ न था, जिसकी ध्वजा दो-चार बार कट कर न गिरी हो? नन्दिघोष (अर्जुन) रथ-ध्वजा पर तो केशरी-किशोर विराजमान थे, जिसे काटने की क्षमता विश्व में किसी वीर महापुरुष में नहीं थी। पता नहीं कितने सहस्र बाण विपक्षियों द्वारा युद्ध में कपिराज को आकर लगे होंगे, किन्तु जिसके शरीर पर इन्द्र का अक्षय वज्र भी कुण्ठित हो गया था वहाँ मानव द्वारा प्रक्षिप्त अस्त्र शस्त्रादि की हस्ती ही क्या थी? कपीश के वज्र तन पर लगते ही बाण स्वयं दो टुकड़े हो फूल की भाँति गिर जाया करते थे। उन्हें बाणों के आघात का कोई आभास भी नहीं हो पाता था। वे तो स्वात्म-निर्भय प्रभु से मन मिलाये दर्शनानन्द विभोर थे।

कर्ण ने युद्ध में अपने बाणों से अर्जुन के रथ को सात पद पीछे हटा दिया। यह देखकर भगवान केशव कर्ण के पराक्रम की प्रशंसा करते धन्य-धन्य कह उठते हैं। शत्रु की इस प्रकार प्रशंसा सुनते ही चकित अर्जुन भगवान से उपालम्भ में पूछ बैठे—यादवेश, कर्ण के रथ को कितनी ही बार मैं योजनों पीछे फेंक चुका हूँ। एक बार भी आप इतने चकित नहीं हुए। किन्तु उसने जब मेरे रथ को केवल सात पद पीछे हटा दिया तो आप उसे धन्य-धन्य कहने लगे। इसका कारण क्या है? मधुसूदन बोले—मेरा उद्देश्य कर्ण की प्रशंसा कर तुम्हें हतोत्साह करना नहीं है। वास्तव में उसके आश्चर्य-जनक शौर्य से प्रभावित होकर ही मेरे मुख से प्रशंसात्मक शब्द स्वभावतः निकल पड़े हैं। गुणवान वीर प्रकृति नियमानुसार यथावसर शत्रु के पराक्रम का आदर करते ही हैं। कर्ण के जिस रथ को तुम अपने बाणों से योजनों पीछे हटा देते हो वह एक साधारण रथ मात्र है। उसके और तुम्हारे रथ में महान अन्तर है। तुम्हारा रथ असाधारण है।

इस रथ की ध्वजा पर अतुल भारवाही महावीर हनुमान बैठे हैं। इस रथ को तो हिलना भी नहीं चाहिये। मेरी बातों पर विश्वास न हो तो अवसर आने पर तुम प्रत्यक्ष देख लेना। दूसरे दिन ही पुनः कर्ण से युद्ध होने वाला था। प्रभु-संकेत मिलते ही कपीश कुछ देर के लिए ध्वजा छोड़ कर चले गये। ऐसी ही स्थिति में कर्ण का अमोघ बाण अर्जुन के रथ पर आ लगा। अनेक प्रयत्न करने पर भी वायु-झकोरे की भाँति रथ पचासों पद पीछे जा गिरा। अर्जुन के दुःख से आहत होकर भगवान बोले—"मालूम होता है रथ-ध्वजा छोड़ कर हनुमान कहीं चले गये हैं।" अर्जुन ने जब आँखें उठाकर ध्वजा की ओर देखा तो सत्यतः मारुति गगन में वायु-हिलोरे ले रहे थे। अर्जुन का मोहभंग हुआ। वे अतीव विह्वल होकर माधव के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगे।

द्रोण के नारायणास्त्र से रक्षा—अर्जुन के साथ हो रहे भीषण युद्ध में सेनापति गुरु द्रोण ने खीझकर अमोघ नारायणास्त्र छोड़ने का निश्चय किया। यह देख सारे पांडव दल में घोर हाहाकार मच गया। उसकी निरस्तता का कोई भी उपाय विश्व में नहीं दीखता था। अर्जुन के जीवन की आशा क्षीण हो रही थी। ऐसी कठिन परिस्थिति में अर्जुन ने कृष्ण की ओर दीन भाव से देखा। श्रीकृष्ण बोले—"घबड़ाओ नहीं।" द्रोण द्वारा छोड़ा नारायणमहास्त्र अर्जुन की ओर चल पड़ा। उसके तेज से दोनो ओर के वीरों की आँखें चकाचौंध से बन्द हो गईं। इसी बीच ध्वजा से ही उछल कर महावीर हनुमान ने अपने कालमुख में लेकर नारायणास्त्र को उदरस्थ कर लिया। इस अघटित घटना के रहस्य को प्रभु के अतिरिक्त कोई भी न जान सका। द्रोणाचार्य स्वयं स्तम्भित हो गये। कौरव दल पर शोक का पहाड़-सा टूट पड़ा। पांडव दल तो अतीवानन्द के उल्लास से भर गया। आश्चर्य चकित अर्जुन श्रद्धा-भक्ति-विभोर होकर हनुमान को देखने लगे और उन्हें शतशः प्रणाम किया।

भगदत्त-गज-गर्व-निहंता—कौरव कुल को एकछत्र राज दिलाने की प्रबल भावना ले, बलशाली भगदत्त इन्द्र द्वारा प्राप्त ऐरावत-पुत्र गज के बल से पांडव-दल का घोर विनाश करने लग गया था। दल को अशांत देख शीघ्र भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन रण में आ पहुँचे। घोर युद्ध छिड़ गया। दोनो ओर से भयङ्कर

शस्त्रास्त्र चलने लगा। पार्थ का अप्रत्याशित रूप से विकट परिस्थिति में मूर्च्छित हो जाना बड़ा ही भयङ्कर था। हरि भी बाण-प्रहारों से अपने शरीर की अनुकूल स्थिति न देख तुरन्त अपने मूर्च्छित होने से पूर्व कपिध्वज से बोल उठे—हनुमान, अब अश्व, रथ, पार्थ तथा मेरे सहित सब का एकमात्र रक्षाभार तुम पर है :—

हम पारथ अरु रथ सहित, तुम रक्षक हनुमान।
यह कहिकै मोहित भये, भक्त हेतु भगवान॥

दोनो को विमोहित होते देख प्रसन्न भगदत्त हनुमान पर हजारों बाणों की वर्षा करने लगा और बोला—अर्जुन, आज इस ऐरावत गजराज के पैर की ठोकरों से तेरे सिर को फोड़कर रथ को चूर-चूर किये दे रहा हूँ। हनुमान ने शीघ्र ही उन सब को अपने दीर्घ लांगूल के कोट में पूर्ण सुरक्षित कर लिया और एक सिरे पर बैठ गये। चक्रवर्ती अदर्शित रूप से बोले—भगदत्त, सावधान, तुम्हारी कलुषित भावना मैं समझ गया। प्रभु के सचेत होने पर ही तुम कुछ करने में स्वतन्त्र हो सकते हो? इस समय नन्दिघोष की रक्षा का पूरा भार मुझ पर है। यदि मेरे अधिनायकत्व में तुमने कुछ भी छेड़-छाड़ की तो तुम्हारा कल्याण नहीं है? ऐरावत की तो बात ही क्या, इन्द्र और यम की सहायता से भी तुम इस समय कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि अभी रक्षा का भार हनुमान पर है। इन सचेतनात्मक बातों को उपेक्षा दृष्टि से सुनी-अनसुनी कर भगदत्त आगे बढ़ता ही आया। दुष्टात्माओं की न कोई नीति होती है और न धर्म। धर्म-नीति से प्लावित, मूर्च्छित या शस्त्र-विहीन वीर पर हाथ उठाना घोर पाप है। किन्तु भगदत्त नीच था। अपने लिए विजय श्री का स्वर्ण सुयोग जान कर अपने गज ऐरावत को अंकुश से प्रेरित करने लगा कि देर न कर रथ, रथी, सारथी तथा अश्वादि सभी को पैरों के आघात से और कुचलकर चूरकर डालो और इस प्रतापी वानर को भी गिराकर मार डालो। वास्तव में मूढ़ भगदत्त को महावीर हनुमान की महाशक्ति का पता ही नहीं था। पास आते ही रथ के स्थान में वानर-पुच्छ-कोट था, जिसमें कहीं से भी वायु का संचार होना कठिन था। अतः महागर्वी गजराज ने अपने दीर्घ दाँतों से लांगूल-दुर्ग पर प्रबल वेग से प्रहार कर ही दिया। लीला-विहारी हनुमान ने गजराज के गर्व-परितोष के लिए मुस्कुरा कर ठीक दन्तप्रहार के समय पुच्छ को कुछ ढीला कर

दिया था। अतएव ऐरावत के सभी विशाल दाँत पुच्छ-सन्धि से भीतर जा घुसे। कपिराज ने पुच्छ को पुनः कुछ कस दिया। उसी क्षण पुच्छ वज्रमय हो गया और चतुर्दन्ती ऐरावत स्वयं फँस गया। इस कठिन परिस्थिति से भगदत्त भी घबड़ा गया। एक ओर अंकुशप्रहार और दूसरी ओर भीतर धँसे सारे दाँत। असह्य प्राणसंकट से गजराज चिंघाड़ने लगा। लांगूलनायक चुपचाप सारा खेल देखते हँस रहे थे। अंकुश-प्रहार से कार्य सधता न देख, भगदत्त ने गज की कमजोरी समझ कर तीक्ष्ण भाले का प्रबल-प्रहार कर दिया। महान कष्ट से व्यथित गज ने जब अन्तिम शक्ति लगाई तो चारों दाँत अपनी जड़ से ही उखड़ गये। मुख से रक्त उगलते चिंघाड़ मारते व्याकुल गजराज स्वामी को लिए कुछ दूर पीछे हटकर गिरते-गिरते बचा। फिर तो ढीले लांगूल से बाहर गिरे दाँतों को देख हनुमान बोले—"भगदत्त, यदि चाहो तो अब अपने गज दन्तों को यहाँ से उठा ले जा सकते हो।" भगदत्त स्वयं हनुमान से पराजित और लज्जित हो विमूढ़ हो गया था। उसने भय से कोई उत्तर भी न दिया।

इसी समय केशव-पार्थ भी स्वस्थ हो उठे। हनुमान ने कोट को लपेट कर रथ को बाहर प्रकट कर दिया। शत्रु-सम्मुख होते ही क्रुद्ध पार्थ बोले—भगदत्त, एक बाण से तेरे गज को आज न मारूँ तो भविष्य में गांडीव हाथ में न लूँगा। भगदत ने अवहेलना के स्वर में कहा कि अनर्गल प्रलाप मत करो। एक दिव्य बाण-प्रहार से गजमस्तक को पार्थ ने वेध दिया। प्रतिज्ञा सत्य हुई। किन्तु भगदत्त ने गिरते गज को अपने जाँघ से छल से ऐसा दबा रखा कि वह भूमिसात न हो सका। अपनी असफलता की आशंका से अर्जुन गांडीव त्यागने जा ही रहे थे कि भगवान बोले—पार्थ, तुम यह क्या करने जा रहे हो ? अपनी प्रतिज्ञा से तुम गज को मारकर विजयी हो चुके हो। अब इस छली भगदत्त को मारो। यह सुनते ही पार्थ ने एक अर्ध-चन्द्र बाण से भगदत्त के मस्तक को क्षण मात्र में काट गिराया। भगदत्त के साथ ही विशाल देही गजराज भी तीन योजन का घेरा लेकर गिर पड़ा। जय शंखध्वनि से भगवान पार्थ को लिये धर्म-राज के पास लौट आये। युधिष्ठिर ने नतमस्तक हो सपरिवार हनुमान की विशेष वन्दना की।

नागराज अश्वसेन से रथ की रक्षा— खांडववन-दाह के समय अग्नि में बहुत

पशु-पक्षीगण जलकर मारे गये थे। उसी में तक्षक की स्त्री अपने बेटे अश्वसेन नाग को मुख में रख प्राणभय से उड़कर भाग निकली। भागते समय अर्जुन के बाण से उसकी पूँछ कुछ कट गई थी। माँ तो पाताल चली गयी, पर बेटा माँ का बदला लेने की ताक में कर्ण के तरकस में यथासमय छिप बैठा था। अर्जुन के साथ हो रहे युद्ध में अवसर आते ही उसने कर्ण से आग्रह किया कि वह बाण से उसे कुछ दूर आगे पहुँचा दे। पहले तो कर्ण ने सहायता लेना अस्वीकृत कर दिया। पुनः उसने सोचा कि इसे आगे भेजने में यदि मैं सहायक होता हूँ तो इसमें क्या बुरा है? यह ललकार कर अर्जुन से भिड़े और अर्जुन मुझ से लड़ना छोड़कर इससे जूझ पड़े। यह तो रणनीति के प्रतिकूल नहीं है। यह सोचकर उसने उसे आगे बढ़ा दिया। आये आते ही भयावह फूत्कार के साथ इसने महाविशाल रूप धारण कर लिया। जबड़े का निचला भाग भूमि पर लगा तो ऊपर का भाग आकाश में। प्रबल वेग से वह रथ को निगल लेने के लिए पहुँच रहा था। भौंचक्के से पार्थ देख रहे थे कि यह कौन-सा शस्त्र है। वे सचेत भी नहीं हो पाये थे कि अश्वसेन रथ के निकट आ गया। हनुमान ने देखा कि पार्थ और कृष्ण के साथ ही यह सारा रथ सर्प के मुख में चला जायगा। तभी उन्होंने एक उपाय सोच लिया। उन्होंने तत्काल पद के अँगूठे से दबा कर धरती में खाई बना दी। अश्व सहित सारा रथ विद्युद्गति से भूमि के भीतर अदृश्य हो गया। केवल पीत ध्वजा का वस्त्र मदांध सर्पराज के अधरों से छू गया। उसने समझा कि रथ सहित पार्थ को निगल लिया गया। यह जानकर वह सानन्द पुनः कर्ण के पास जाकर अपने विजय की प्रलापभरी बातें सुना बैठा।

उधर दोनों ही दलों में यह आभास हो गया कि रथ सर्प के विशाल मुख में समा गया। कौरव दल में आनन्द और पांडव दल में हाहाकार छा गया। विजय की आशा ही धूमिल हो गई। किन्तु युधिष्ठिर जैसे विशिष्ट ज्ञानी महापुरुषों के ही हृदय में दृढ़ विश्वास था कि अर्जुन के साथ भगवान श्रीकृष्ण हैं। उसका नाश कैसे हो सकता है।

उधर आश्चर्य चकित कर्ण सर्प की बातों पर विश्वास करने लगा। किन्तु शल्य बोला कि भला, इस सर्प की अनर्गल बातें विश्वास करने योग्य हैं? विश्व में ऐसी कौन-सी

शक्ति है जो यदुनन्दन श्रीकृष्ण के संरक्षण में पांडवों की क्षति कर सके ? वास्तव में मेरी दृढ़ धारणा है कि अपनी माया से सतर्क केशव इसके मुख से रथ को कहीं बचा ले गये होंगे। थोड़ी देर के लिए इसकी बात यदि मान भी लें तो अपने दुष्कृत्य से इसने स्वयं ही अपना काल बुला लिया है। उदरस्थ मधुसूदन अपने सुदर्शन चक्र द्वारा इसके उदर को विदीर्ण कर शीघ्र बाहर निकल आयेंगे। शल्य की बातों पर किसी कारण वश कर्ण को विश्वास नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि अर्जुन का रथ नीचे धँस जाने के कारण देर तक दिखाई ही नहीं पड़ा। कर्ण विजय-शंख बजाने ही जा रहा था कि शल्य तुरन्त बोल उठा—"वीर कर्ण, वह सामने देखो, सूर्योदय के समान वह कपिध्वजी रथ पार्थ श्रीकृष्ण सहित पुनः प्रकट हो आया। मेरी वाणी सत्य हुई।" कर्ण के हाथ से विजय शंख भूमि पर गिर पड़ा। यह देख, सर्पराज आश्चर्य चकित होकर बोला—"वीर, वास्तव में मैं ठगा गया। मेरी प्रार्थना है कि पुनः मुझे भेजो तो इस बार मैं निश्चय पार्थ को मार कर अपना ऋण चुका लूँ।" कर्ण बोले—दुष्ट, तूने असत्य बोलकर विश्वासघात किया, जिससे तू नरक जायेगा। कर्ण एक बाण का दुबारा प्रयोग नहीं करता और न दूसरे के बल से शत्रुसंहार ही करता है। यह सुन क्षुब्ध सर्प ने भी शाप दिया कि तू भी अर्जुन के हाथों ही मारा जायेगा। यह शाप दे वह वहाँ से पलायमान हो गया।

रथ-रक्षक—कौरव-पांडव-युद्ध-समापन तक कपिराज ने अपनी महिमा से महाबल शाली भीष्म, द्रोण, कर्णादि के दिव्य शक्ति शाली बाणों के महाप्रहार से रथ को स्थिर रख लिया था तथा भस्म होने से भी बचा रखा था। दुर्योधन वध हो गया। युद्ध समाप्त हो गया। सारा पांडव दल कौरव शिविर में संवेदना के लिए जाने लगा। सभी अपने-अपने रथों से उतर कर जाने लगे। तभी भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा—विजय, तुम स्वयं रथ से पहले उतर कर अपने सारे आयुधों को एक साथ इस पर से उतार लो, बाद में फिर मैं उतरूँगा। इस कार्यक्रम से तुम्हारा कल्याण होगा। आज्ञानुसार पार्थ ने वैसा ही किया। अर्जुन ने उतर कर सर्वप्रथम भगवान कृष्ण और हनुमान को प्रणाम किया। अन्त में घोड़ों की बागडोर छोड़ भगवान के रथ से उतरने के साथ ही ध्वजा से कपि केशरी अन्तर्धान हो गये। तभी पार्थ के सम्मुख वह विशाल

दिव्य रथ भी अग्नि प्रज्वलित हुए विना ही अपने सारे उपकरणों के साथ भस्म का ढेर हो गया। आश्चर्य चकित विनम्र अर्जुन द्वारा-कारण पूछने पर भगवान ने कहा—विजय ! तुम्हें पता नहीं, वास्तव में ध्वजा स्थित कपिराज हनुमान के ही कारण यह रथ अब तक तुम्हारी विजय में पूर्ण सहायक रहा। वास्तव में यह-नंदि घोष-रथ तो भीष्म-द्रोण-कर्णादि के दिव्य ब्रह्मास्त्रों के तेज से पहले ही दग्ध हो चुका था। अन्त में मेरे उतरते एवं कपिराज के रथ छोड़ जाते ही भस्म हो गया !

नल-नील के वंशजों से-प्रद्युम्न की रक्षा—द्वारका में अश्वमेध यज्ञ के आयोजन में दिग्विजय के लिए [छोड़े-अश्व के सहयोग में] रथारूढ़ यदु परिवार के अन्यान्य सहस्त्रों नवयुवक वीरों के साथ प्रधान अधिपति-प्रद्युम्न थे। इस अश्व दिग्विजय यात्रा में अर्जुन की रथ ध्वजा पर कपिराज भी थे। अनेकानेक स्थलों में विजय धन-दान प्राप्त करके अन्ततः वे हिरण्यमय-खण्ड में जा पहुँचे। वहाँ नल-नील के वंश-धर वीरों के साथ घोर युद्ध हुआ। अर्जुन भी युद्ध-रत हो गये थे। इन महायोद्धाओं की जयसिद्धि में कठिनाई थी। वहाँ के असाधारण वीर वानरगण दूर से ही शस्त्राघात से अपने को बचा लेते थे। वे अर्जुन-प्रद्युम्नादि सहित सारे वीरों को अपनी लम्बी पूँछ में लपेट कर रणभूमि से उठाकर इधर-उधर उलट-पटक दिया करते थे। इस घोर संग्राम में असफलता की अवस्था में हनुमान प्रकट हो गये और अपने दीर्घ लांगूल-पाश में वहाँ के सारे बानर वीरों को बांध लिया। उस समय सभी को ज्ञान हुआ कि-अरे ! ये तो साक्षात्-वानर जाति के अधीश्वर राम दूत हनुमान हैं जो सहायक रूप से साथ दिग्विजय में भ्रमण कर रहे हैं ! फिर तो सभी ने विनम्र हो मारुति-चरणों में प्रणाम कर अपने अज्ञानापराध पर क्षमा मांगी। इस प्रकार प्रद्युम्न आदि की जीवन-रक्षा कर एवं उन्हें सर्वत्र विजय-श्री दिलाकर हनुमान पुनः द्वारका आ अश्वमेध यज्ञोत्सव में सम्मिलित हो गये।

गरुड़ गर्व हरण—गरुड़ को अपने बल और बुद्धि के अतिरिक्त अपनी गति का बड़ा घमण्ड था। गर्व-हरण-कर्ता भगवान श्री कृष्ण ने एक बार गरुड़ को आज्ञा दी कि सम्प्रति किम्पुरुष-खण्ड के कदली-वन में निवास करने वाले भक्त हनुमान के पास जाकर उन्हें शीघ्र अपने साथ ही ले आओ। हनुमान राम के ध्यान में लीन थे। गरुड़ ने उनका ध्यान भंग कर उन्हें सन्देश सुनाना चाहा। बाधा पाकर कपि ने वाम कर

से ही उन्हें पकड़ कर उछाल फेंका। गरुड़ सीधे द्वारका जाकर ही गिरे। मूर्च्छा से उठने पर उन्होंने लज्जित होकर प्रभु से सब कह सुनाया। कृष्ण ने उन्हें दुबारा यह कह कर भेजा कि तुम जाते ही 'जय राम' कहकर उनसे मिलो और कहो कि रघुवर ने द्वारका में बुलाया है, शीघ्र चलिए। इस बार कपि बड़े हर्षित हुए। उन्होंने कहा कि पक्षिराज, तुम शीघ्र वापस होकर भगवान को कहो कि हनुमान आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर, शीघ्र दर्शन के लिए द्वारका पहुँच रहा है। गरुड़ बोले—भक्तराज! प्रभु की आज्ञा विशेष तो यही है कि अपने साथ लिवाते आना। हनुमान ने कहा—भाई! तुम चिंता न करो। तुम मेरे पहुंचने के पहले जाकर उन्हें पूर्ण आश्वस्त कर दो। जरा तेजी से जाना। मैं श्री राम हृदय स्तोत्र का दैनिक पाठ पूर्ण कर शीघ्र आ रहा हूँ।। कपि-प्रकृति से परिचित गरुड़ को दुबारा कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। कपि के वज्रमय हाथ की पकड़ और फेंक दिए जाने वाले दृश्य के साथ शरीर की चोट की पीड़ा आदि वे भूले न थे। इस बार-'प्राण बचे लाखों पाये'-की धारणा से वे धीरे से उठे और विवश हो द्वारका वापस हो गये। वे वेग से चलकर भगवान के पास पहुंचे। किन्तु वे वहाँ देखते क्या हैं—हनुमान् पहले से ही बैठे हैं।

गरुड़ को आश्चर्य चकित दिग्मूढ़ देख भगवान स्वतः बोले—खगराज! तुम कहां रह गए थे, जबकि हनुमान ने तुम्हें अपने आने से पहले ही भेज दिया था। ये तो कभी के यहां आ पहुँचे हैं, और जाने की तैयारी मे हैं। तुम्हारे यहां न आने की चिंता में ही वे तुम्हारे सकुशल आगमन-मिलन की चिंता से बैठे हैं। यह सुनते ही हतप्रभ एवं गर्व विगलित निरुत्तर गरुड़ घबड़ा कर भगवान के चरणों में पड़े। कपि के सम्मुख उन्हें अपनी तुच्छता का ज्ञान हो गया। उन्होंने प्रभु से कपि की प्रभुता वर्णन करने के साथ अपनी सारी दु:ख कथा भगवान से कह सुनायी। सारी बातें सुनकर वे हँसते हुए बोले—पक्षिराज! मैं तो समझता था कि त्रिभुवन में अमितबलशाली एकमात्र तुम्ही मेरे परम प्रिय वाहन रूप सेवक हो। सलज्ज गरुड़ नतमस्तक हो गये और फिर भगवान से एक शब्द भी न बोल सके। उनका अहंकार धूल में मिल चुका था।

इतने पर भी गरुड़ का अहंकार दूर नहीं हुआ। अतएव पुनः अवसर देने के लिए उन्हें भगवान ने आज्ञा दी कि—खगेश एक बलशाली वानर सारे द्वारका के फल बनों

को उजाड़ रहा है। वह किसी कि पकड़ में नहीं आ रहा है। अतः इस समय एकमात्र तुम्हीं उसे पकड़ लाने में समर्थ दीख रहे हो। कारण तुम्हारे समान त्रिभुवन में हमें कोई बलशाली नहीं दीखता। यदि साथ में सेना ले जाना चाहो तो वह भी सुन्दर ही होगा। तुच्छ एक वानर को पकड़ लाने में सैन्य सहाय की भगवान द्वारा परामर्श सुनते ही गर्व से गरुड़ हंसते हुए बोले—प्रभो ! मैं तो गिरते आकाश को भी अपने पराक्रम से बाहु पर ले सकता हूं। वहां आप एक उपद्रवी साधारण से वानर को पकड़ लाने के लिए सेना ले जाने की बात कर रहे हैं ? आप मेरा उपहास कर रहे हैं ? मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है ? आपकी आज्ञा से मैं पल भर में ही उसे पकड़ लाता हूँ, यह कह गरुड़ शीघ्र वन में पहुँचे। वहाँ वृद्ध वेष धारी मारुति को अपनी ओर पीठ दिए कौतुकानन्द से बैठे, फल खाते, तथा श्री रामगुण कीर्तन कर रहे थे। शांत स्थित देख गरुड़ तीव्र शब्दों में बोले—रे वानर, फल खाने के साथ तूने सारे वन को उजाड़ डाला है और रक्षकों को मारा है, वह अक्षम्य है। इसका दंड भोगने के लिए तू तैयार हो जा। यह सुनते ही मुस्कराते कपीश बोले—"भाई, तुम हो कौन, और नाम क्या है ? इसके अतिरिक्त तुम्हें यहां भेजा किसने ? अकड़ते गरुड़ बोले—अरे, क्या तू मुझे जानता नहीं ? मैं कश्यप पुत्र श्री हरिदूत-पक्षिराज-गरुढ़ नाम से त्रिभुवन प्रसिद्ध हूँ।

इस आत्मप्रशंसा पर पवन कुमार बोले—"पक्षिराज, अपनी प्रशंसा करने वाला वस्तुतः वीर नहीं होता। ऐसे पुरुष संतगणों द्वारा सैकड़ों मूर्खों से बढ़ कर अज्ञानी माने जाते हैं। घोर अपमान प्राप्त होते ही गरुड़ क्रोध से बोले—"रे वानर, तू निश्चित मरण हार है तभी ऐसी बातें कर रहा है। ठहर, मैं अभी तेरे इस महाज्ञान की समुचित दक्षिणा देता हूँ। इतना कह सहसा आकाश में उछल कर गरजते हुए वे वज्र की भांति फिर कपिराज पर टूटकर चोचों से भीषण प्रहार करने लगे। पर ये चंचु भार प्रहार तो कपि के वज्रतनु पर ऐसे प्रतीत हो रहे थे, जैसे पर्वत शिखर पर भ्रमर का, बड़े वृक्षों पर-मक्खियों का या गज के कंधे चींतियों का भार-प्रहार हो। कुछ देर गरुड़ की पराक्रम-लीला का आनन्द लेने के बाद, तुरत कपिराज ने अपने पदांगुल से ही गरुड़ को धर दबाया और फिर गर्दन पकड़ कर ऊपर उठा लिया। व्याकुलता से जब गरुड़ की आंखें उलटने लगीं तो मारुति ने उन्हें द्वारका वन से साठ हजार योजन दूर समुद्र में उछाल

फेंका। वहाँ प्रबल समुद्री तूफान में छटपटाते निसहाय डूबते-उतराते ही बेहोश हो गये। सचेत होने पर उन्होंने देखा कि वे द्वारका-किनारे रेत पर पड़े हैं। मतिभ्रम से सांप-छछूंदर की सी गति में पड़कर वे भगवान के पास जाने में लजाने लगे। इतनी दुर्दशा होने पर भी फिर किंचित सजीवित गर्व वशीभूत हो वे सोचने लग जाते हैं। यदि मैं पकड़ा न गया होता तो उस वानर को अपने पंजे से ही पकड़ कर उठा ले आता। संप्रति प्रयत्न बुद्धि से इस बार मैं सफल हो जाऊँ तो उत्तम। इस धारणा से वे अन्तिम बल से उड़कर बाग में विराजित मारुति को पुनः ऊपर से अपने पंजे से ही पकड़ने की चेष्टा करते हैं। किन्तु सयाने कपीश भी इनके आने के साथ ही झपटकर गरुड़ के पैर को पकड़ कर, उपवन में बैठे द्वारकाधीश के सामने ही गिरा देते हैं। मूर्छित खगेश को देख कर भगवान तुरत उठकर अपने कर-कमल-स्पर्श से उन्हें सचेत करते हैं। गर्व विगलित गरुड़ भगवान के चरणों में गिरकर परमाद्‌भुत—अमित बलशाली वानर की प्रशंसा करते हैं और अपनी भ्रान्ति स्वीकार कर क्षमा याचना करते हैं।

द्वारका के रक्षा-पति बने—सुदर्शन चक्र को भी अपनी शक्ति का महान गर्व था। गर्व-भंजन के लिए भगवान ने उन्हें प्रधान पूर्व द्वार का रक्षक नियुक्त कर हनुमान के आगमन समय आज्ञा दी कि मेरी आज्ञा-बिना किसी को भीतर प्रविष्ठ होने न देना। श्री राम रूप-प्रभु के दर्शनार्थ आगत् हनुमान को तो द्वारका अवध रूप में ही दर्शित हो रही थी। महाद्वार पर पहुंचते ही चक्र द्वारा रोके जाने पर आवेषित मारुति बोले—महाश्चर्य! प्रभु दर्शन या दरबार में जाने के समय मुझे रोकने वाला विश्व में कोई सम्मुख नहीं हुआ। धर्मनीति से प्रभु-दर्शन बाधक महान् अपराधी दंड-पात्र माना गया है। यह कहने के साथ पवन कुमार चक्र को पकड़ कर मुख में रख, भगवान के सम्मुख पहुंच कर श्री चरणों में प्रणाम कर भेंट रूप में चक्र को मुख से उगल देते हैं। चक्र की दीन-दशा देखने के साथ हँसते हुए भगवान ने आशीर्वाद देकर हनुमान को उसी दिन से द्वारका के पूर्व महाद्वार का प्रधान रक्षाधिपति बना दिया।

—:o:—